A COMPARATIVE STUDY OF

SOORSAGAR AND KRISHNA GATHA

सूरसागर और कृष्णगाथा—एक तुलनात्मक अध्ययन

Thesis Submitted to

THE UNIVERSITY OF COCHIN

for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

CHERIAN GEORGE

Under the supervision of

PROF. (DR.) A. RAMACHANDRA DEV

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN-22, KERALA

1983

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by SHRI. CHERIAN GEORGE, under my supervision and guidance for Ph.D., and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. A. RAMACHANDRA DEV
(Supervising teacher).

Department of Hindi,
University of Cochin,
Cochin Pin 682022.

Date : 31 10 1983.

ACKNOWLEDGEMENTS

The work was carried out in the Department of Hindi, University of Cochin, Cochin-22 during the tenure of scholarship awarded to me by the University Grants Commission. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin and University Grants Commission for this kind help and encouragements.

Department of Hindi,
University of Cochin,
Cochin Pin 6820 22,

Date : 31 10 1983

CHERIAN GEORGE

प्राक्कथन

कृष्णचरित

कृष्ण-चरित भारतीय सृजन प्रतिभा का अत्यन्त सुषमामय गौरवपूर्ण विषय रहा है। भारतीय साहित्य का सर्वोत्तम अंश कृष्ण चरित्र को आधार बनाकर निर्मित हुआ है।

कृष्ण कथा की सुदीर्घ परम्परा ने भारतीय वाङ्मय को असंख्य अमर काव्य प्रदान किये हैं। श्रीमद् भागवत्, गीतगोविन्द, विद्यापति पदावली, सूरसागर, परमानन्द सागर, सुदामा चरित, कृष्णगाथा, श्रीकृष्ण कर्णामृतम आदि उसी गौरवमयी शृंखला की कतिपय कड़ियाँ हैं। जिस प्रकार एक ही पवन और एक ही जल विभिन्न भूमि भागों और ऋतुओं में विभिन्न रूप धारण करता है, उसी प्रकार हमारे देश की इस शक्तिशाली प्राणधारा कृष्णकथा ने विभिन्न प्रान्तों और युगों में अभिनव रूप धारण किए हैं। कथा वही है, पात्र भी अधिकांशतः वही है, परन्तु गायक के भावलोक की नवीनता और उसके कंठ की भिन्नता ने उसी कृष्णकथा और उसके परिकर में नवीन स्वर उत्पन्न कर दिये हैं और साथ ही उसमें नवीन संदेश एवं संकेत जागृत हो उठे हैं। इस एकता में विविधता के दर्शन और अन्वेषण की लालसा का, विशेषतः साहित्य समीक्षक एवं अनुसंधाता के मन में उठना स्वाभाविक है।

भारतवर्ष की प्राय: सभी भाषाओं के साहित्य में कृष्ण काव्य प्रमुख स्थान रखता है। कृष्ण के प्रति युग युग से हमारे देश में जो भक्ति भाव प्रचलित रहा, उसने कृष्ण सम्बन्धी अनेक उत्कृष्ट काव्यों को जन्म दिया। इस कारण हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषाओं में कृष्ण काव्य की एक विशद परंपरा उपलब्ध होती है, जिसका सम्यक् अनुसंधान और मूल्यांकन हमारे साहित्य वैभव के परिचय केलिए अत्यन्त आवश्यक है।

कृष्ण कथा की अमृतझरी से वेदव्यास ने संस्कृत में काव्य पाठकों केलिए अक्षय कोष खोल दिया। उनके पथ पर चलते अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने उन्हीं की दीपज्योति से तेज ग्रहण कर लोगों को पथ दिखाया। जिस प्रकार अमृत किसी भी पात्र में मधुर होता है उसी प्रकार कृष्णकथा किसी भी भाषा में मधुर होती है। भक्ति आनंद-प्रदायिनी कृष्णकथा संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांधने में भी समर्थ हो गयी है। भगवान के भक्त भाषा व प्रान्त का भेद नहीं मानते। सब उनके सामने एक से हैं, भक्त नाम से पहचाने जाते हैं। अत: यह स्वाभाविक ही है कि उत्तर भारत की भाषा हिन्दी (ब्रज) में जो कृष्णगाथा है वह मलयालम में भी लोकप्रिय हो रही है कन्याकुमारी के घर में गोपाल कृष्ण के चित्र के सामने आरती जिस तरह चलती है उसी तरह पंजाब के निवासी के घर में भी। प्रत्येक भारतीय भाषा के वाङ्मय में अनेक कृष्णकाव्यों के प्राप्त होने का कारण यही है। भारतीय साहित्य में कृष्णकथा की व्यापकता हमारे सांस्कृतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है[1]।

श्री कृष्ण का बाल एवं किशोर रूप युग युग से भारतीय जनता को अनुप्राणित करता आ रहा है। पर ब्रह्म कृष्ण का स्वरूप ऐसा ही है जिसके प्रकाश से आलोकित वेदव्यास शताब्दियों पहले ही काव्य-जगत में अवतरित हो गये हैं। श्रीमद् भागवत् भारतीय जनता केलिए वेद पुराण और उपनिषद् है। श्रीमद् भागवत् का आधार लेकर सूरदास और चेरुश्शेरी दोनों ने कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया

1• सम्मेलन पत्रिका - भाग - 63 संख्या - 4, शक 1899 - पृ•55

तुलनात्मक अनुसंधान

साधारण अनुसंधान की अपेक्षा तुलनात्मक अनुसंधान से विशेष लाभ यह होता है कि इसमें अनुसंधाता की दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होकर सांस्कृतिक एवं सौन्दर्य तत्वों का अनावरण कर सकती है । इससे मूल्यवान निष्कर्ष भी सामने आते हैं । अतः इस पद्धति से किसी भी काव्य के सच्चे मूल्यांकन में विशेष सहायता प्राप्त होती है[1] । इतना ही नहीं किसी विषय के एकांकी अध्ययन की अपेक्षा तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञान की अनुपम वृद्धि भी हो जाती है[2] ।

सूरसागर और कृष्णगाथा क्रमशः हिन्दी-मलयालम भाषियों के अत्यंत प्रिय काव्य हैं । इनकी लोकप्रियता का एक कारण कृष्णचरित की नैसर्गिक चारुता है । मगर कितने ही अन्य कृष्णकाव्य समय के फेर में लुप्त हो चुके हैं । पर इनकी जनप्रियता अब भी अक्षुण्ण बनी रहती है । इसका प्रमुख श्रेय इन कवियों की अनुपम काव्यकला है । तुच्छ भावों को भी अमृतमय बनाने की शक्ति कवि की कलम में निहित है । भाव उदात्त एवं उत्तम अगर ठहरें तो फिर कहना ही क्या । काव्य सौन्दर्य के सभी उपादान इन में वर्तमान हैं । इनकी मधुरिमा और प्रसाद गुणयुक्तता का विशेष उल्लेख होना चाहिए । इनकी जनप्रियता का रहस्य इन्हीं गुणों में निहित है ।

---

1. Professor Oppel conjectures on the potential ability of the comparatist achieve 'deeper in-sight into the nature and function of literary art' in order to arrive at broader aesthetic criteria than can be obtained through the single discipline.—Comparative Literature – Vol.I, Essay by Anna Balkian, p.237

2. The study of a single literature would remain the apex and comparative literature would serve as a source of enrichment to the specialization – Comparative literature, vol.I Essay by Anna Balkin, p.236

हिन्दी में कृष्णकाव्य पर अध्ययन-

सूरदास और उनकी रचनाओं पर अनेक अध्ययन हो चुके हैं। मिश्र बंधु, रामचन्द्र शुक्ल, डॉ॰ जनार्दन मिश्र, नलिनी मोहन सान्याल प्रभृति विद्वानों के प्रयत्न यद्यपि अपने अपने ढंग से महत्वपूर्ण है, फिर भी सूरदास के सम्पूर्ण अध्ययन के इच्छुक को उनसे सन्तोष नहीं होता। ब्रजेश्वर वर्मा का सूरदास इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य है। उन्होंने सूर के जीवन और काव्य का विस्तृत अध्ययन अपने शोध प्रबन्ध "सूरदास" में किया है। सूर और उनकी रचनाओं पर यह ग्रन्थ प्रामाणिक होने पर भी ब्रज भाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के कृष्ण काव्यों के बारे में इसमें प्रतिपादन तक नहीं हुआ। पहले हमने बताया है कि प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य की अमृतधारी प्रवाहित हुई है। भारत की भावात्मक एकता के ये सूत्र विभिन्न भाषाओं के कृष्ण काव्य - सदा अव्याहत एवं अखण्ड रहे हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का "सूर साहित्य" एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें माधुर्य भक्ति, राधा का विकास आदि पर गहरा अध्ययन है। लेखक की दृष्टि भी नवीन है। लेकिन इसमें भी हिन्दीतर कृष्णकाव्यों के बारे में लेखक मौन है। डॉ॰ दीनदयालु गुप्त के "अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय" में सूरदास के जीवन पर व्यापक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। इसमें मुख्यतया अष्टछाप के कवियों और वल्लभ के सिद्धान्तों की चर्चा है। साहित्यिक विषयों की छानबीन की अपेक्षा सैद्धान्तिक विषयों का प्रतिपादन अधिक है। सूरसागर पर वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रस्तुत है। लेकिन इस ग्रन्थ में भी दक्षिण के कृष्णकाव्य के बारे में कोई उल्लेख नहीं।

डॉ॰ मुंशीराम शर्मा के "सूर सौरभ" में भक्ति के विवेचन के साथ सूर साहित्य का अध्ययन भी उपलब्ध है। द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल का "सूर निर्णय" एक विशिष्ट ग्रन्थ है जिसमें सूर काव्य के विभिन्न पहलुओं का

विस्तृत विवेचन वैज्ञानिक ढंग से हुआ है । इन सभी ग्रन्थों में खटकनेवाली बात यह है कि हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के विशेषकर दक्षिणी भाषाओं के कृष्णकाव्यों की सूचना तक इनमें नहीं । यह स्मरण रखना चाहिए कि दक्षिणी भाषाओं के कृष्णकाव्य भी हिन्दी केलिए प्रेरणाशील रहे हैं ।

मलयालम में कृष्ण काव्य पर अध्ययन

मलयालम में कृष्ण काव्य पर अभी तक उतना अध्ययन नहीं हुआ जितना होना चाहिए था । इस दिशा में प्रथम कार्य महाकवि उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर का है । इस विषय पर चर्चा उनके साहित्य इतिहास में बिखरी पड़ी है वह परस्पर सम्बन्ध नहीं है । महाकवि का लक्ष्य भी कृष्ण काव्य का विस्तृत अध्ययन नहीं था । प्रसंगानुसार ही उन्होंने इसका उल्लेख किया । फिर भी उनके कार्यों का महत्व कम नहीं है । आगे के सभी विद्वानों ने उन्हीं को अपना आधार बना लिया है । डॉ॰ के॰एम॰ जार्ज, प्रो॰एन्॰ कृष्णपिल्ले जैसे इतिहासकारों ने उल्लूर की सामग्रियों का समुचित उपयोग अपने अपने ग्रन्थों में किया है ।

मलयालम के प्रसिद्ध समालोचक साहित्य पंचानन पी॰के॰ नारायण पिल्ले ने कृष्णगाथा के अध्ययन की प्रथम बार विस्तृत भूमिका प्रस्तुत की । दो अन्य उल्लेख योग्य ग्रन्थ हैं डॉ॰ प्रबोध चन्द्रन नायर का "कृष्णगाथा" और डॉ॰ टी॰ भास्करन द्वारा रचित "कृष्णगाथा अध्ययन" । प्रथम ग्रन्थ में कृष्णगाथा का भाषा वैज्ञानिक विवेचन है जिसका साहित्यिक अध्ययन से कोई सम्बन्ध नहीं है । "कृष्ण गाथा अध्ययन" में साहित्यिक विशेषताओं और सांस्कृतिक प्रेरणाओं का विवेचन है

इनमें साहित्य पंचानन की रचना सभी दृष्टियों से उच्च कोटि की उतरती है । इसमें कवि की अन्तरंग वृत्तियों के अनावरण की चेष्टा की गई है ।

तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का रचना पर प्रभाव भी निर्धारित किया गया है। सबसे बढ़कर काव्य से प्राप्त होनेवाली सौन्दर्यानुभूति की विशिष्टता पर दृष्टि डाली गई है। लेखक का दृष्टिकोण भारत के प्राचीन साहित्य आचार्यों से प्रभावित है। फिर भी आधुनिक युग में भी एक हद तक उससे सहायता ली जा सकती है'।

जितना कार्य कृष्णगाथा पर मलयालम में हुआ है उससे हमें सन्तोष प्राप्त नहीं। हिन्दी में सूर की जीवनी तथा रचना पर न जाने कितनी गहराई से विद्वानों ने मनन चिन्तन किया है। यह प्रवृत्ति जहाँ तक कृष्णगाथा की बात है, मलयालम में प्राप्त नहीं होती। हम विश्वास रखते हैं कि इस विषय पर यथा समय और भी कार्य किये जायेंगे।

कृष्णगाथा पर प्राप्त ये सभी अध्ययन एकांगी है। मलयालम कृष्णकाव्य के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के कृष्णकाव्यों के बारे में इनमें सूचना तक नहीं। कृष्णकथा संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांधती है। इस दृष्टि से उसका अद्यावधि अध्ययन नहीं हुआ है।

हिन्दी और मलयालम में कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. के. भास्करन नायर ने "हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य" नामक शोध प्रबन्ध में दक्षिण तथा उत्तर की भाषाओं की कृतियों का एक साथ विवेचन किया है। सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, मीराबाई आदि हिन्दी कवियों के साथ एजुत्तच्छन, चेरुशेरी, कुंचन नम्प्यार जैसे मलयालम के कवियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न कवि और विभिन्न काव्यों का एक साथ अध्ययन होने के कारण उसकी कृष्णगाथा संबन्धी चर्चा अधूरी ही रह गई है। साधारण इतिहास लेखक के समान लेखकों और कवियों का नाम गिनते हुए लेखक आगे बढ़ते हैं। थोड़ी सी चर्चा भी बीच बीच में उपलब्ध होती है।

डॉ॰ एम॰ रामन नायर का हिन्दी और मलयालम भक्ति काव्य में वात्सल्य रस एक महत्वपूर्ण तुलनात्मक अध्ययन है । इस प्रबन्ध के दो खण्ड हैं । प्रथम में वात्सल्य रस की चर्चा है और द्वितीय में तुलनात्मक अध्ययन । सूर, तुलसी और परमानन्द के प्राय: सभी वात्सल्य प्रकरणों के विवेचन के साथ मलयालम कवि चेरुश्शेरी, पूंतानम्, एषुत्तच्छन और गिरिजाकल्याणकार के वात्सल्य प्रकरणों का अध्ययन किया है । वात्सल्य रस की दृष्टि से मात्र तुलना किये गये हैं । रसराज शृंगार, हास्य जैसे अन्य रसों के बारे में लेखक मौन रहते हैं ।

मलयालम का कृष्ण काव्य अपने में महत्वपूर्ण है और व्यापक भी है । हिन्दी कृष्णकाव्यों के साथ उसकी तुलना अनेक दृष्टियों से आवश्यक है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सूरसागर एवं कृष्णगाथा का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है दोनों अत्यंत जनप्रिय काव्य हैं । दोनों काव्यों का क्षेत्र इतना विस्तृत एवं गहन है, उनमें इतने अमूल्य रत्न निहित हैं, जिनके उद्घाटन केलिए अनेक विदग्ध हस्तों का समवेत प्रणयन आवश्यक है ।

इस प्रबन्ध का प्रमुख लक्ष्य दोनों काव्यों की प्रमुख विशेषताओं की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन है ।

प्रत्येक अध्याय का विषय

प्रस्तुत प्रबन्ध सात परिच्छेदों में विभाजित है । इसकी पृष्ठभूमि के रूप में वैष्णव धर्म के विकास और श्रीमद् भागवत् के महत्व का आकलन प्रथम अध्याय में किया गया है । वैष्णव भक्ति भावना के क्रमिक विकास की अनेक अवस्थाओं की ओर संकेत करते हुए उसके स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है । सूरसागर और कृष्णगाथा के आकर ग्रन्थ के रूप में ही श्रीमद् भागवत को इस प्रबन्ध में स्वीकार किया गया है

"वैष्णव काव्य हिन्दी और मलयालम में" नामक द्वितीय अध्याय में सूर और चेरुश्शेरी के समय तक के हिन्दी और मलयालम भक्ति साहित्य का शोध परक दृष्टिकोण से विवेचन है ।

तृतीय अध्याय में सूर और चेरुश्शेरी के जीवन की समीक्षा है । पहले सूर का जन्मस्थान, माता पिता, शिक्षा दीक्षा आदि के बारे में विभिन्न विद्वानों के मतों का खंडन करते हुए अपना निष्कर्ष निकाला गया है । चेरुश्शेरी के संबन्ध में बहुत कम ही सामग्रियाँ प्राप्त हैं । फिर भी प्राप्त प्राय: सभी सामग्रियों का उपयोग करते हुए कवि की जीवनी का परिचय दिया गया है ।

चतुर्थ अध्याय "सूर और चेरुश्शेरी की रचनाएं" है । सूर के तीनों प्रामाणिक ग्रन्थों - सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी - का अलग अलग इसमें विवेचन है । चेरुश्शेरी कुल एक ही काव्य - कृष्णगाथा - सर्वमान्य है । कृष्णगाथा के साहित्यिक महत्व का भी प्रतिपादन है ।

सूरसागर और कृष्णगाथा के कतिपय मार्मिक प्रकरणों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है पंचम अध्याय में । इस अध्ययन के लिए सात प्रकरण चुन लिये हैं ।

1. बाललीला - माखनचोरी - वेणुवादन
2. चीरहरण
3. रासलीला
4. अक्रूर की व्रजयात्रा
5. श्याम बलराम का मथुरा प्रवेश तथा कुब्जा प्रसंग
6. उद्धव की व्रजयात्रा तथा भ्रमर गीत एवं
7. प्रकृति चित्रण ।

ये ही सात प्रकरण प्रबन्ध लेखक की दृष्टि में महत्वपूर्ण दिखाई पड़े । इसलिए इन्हीं का इसमें विवेचन है । प्रत्येक प्रकरण की साहित्यिक महत्ता दिखाते हुए तुलना की गई है ।

षष्ठ अध्याय में सूरसागर और कृष्णगाथा के काव्य सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन है । रसव्यंजना, अलंकार योजना, काव्य रूप, भाषा शैली आदि काव्य सौन्दर्य के विभिन्न तत्वों के आधार पर दोनों रचनाओं की इसमें तुलना है ।

उपसंहार शीर्षक सप्तम अध्याय में प्रस्तुत अध्ययन के फलस्वरूप उपलब्ध नवीन मान्यताओं की स्थापना के साथ ही साथ भारत में भावात्मक एकता स्थापित करने में वैष्णव साहित्य की महती देन पर भी प्रकाश डाला गया है ।

मेरी आशा है कि "सूर सागर और कृष्णगाथा एक तुलनात्मक अध्ययन" भारत की भावात्मक एकता के समर्थकों तथा भक्ति साहित्य एवं संस्कृति के अध्येताओं केलिए उपयोगी सिद्ध होगा ।

कृतज्ञता प्रदर्शन

प्रस्तुत प्रबन्ध की रचना करते समय मुझे अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की खोज में बहुत से संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों में जाना पड़ा । कोच्चिन विश्वविद्यालय पुस्तकालय, तथा हिन्दी विभाग पुस्तकालय के अतिरिक्त कोट्टयम पब्लिक लाइब्रेरी, त्रिवान्द्रम पब्लिक लाइब्रेरी, पत्तनंतिट्टा कातोलिक्केट कॉलेज पुस्तकालय आदि से मुझे बड़ी सहायता प्राप्त हुई । मैं उन संस्थाओं के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । हिन्दी, अंग्रेज़ी, मलयालम और संस्कृत के जिन जिन ग्रन्थों से मुझे सहायता मिली है, उन ग्रन्थों के विद्वान लेखकों का सादर कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करता हूँ ।

प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की अनुमति और प्रेरणा कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफसर श्रद्धेय डॉ॰ रामचन्द्र देव से प्राप्त हुई । उनका स्नेह और वात्सल्य मुझे सदैव से अनुप्राणित करता रहा है । यह रचना उनके पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन में सम्पन्न हुई जिनके असीम कृपामय निर्देशन के ही

सूर और चेरुश्शेरी की मौलिकता असंदिग्ध है । इन महाकवियों द्वारा ऐसे दो ग्रन्थ-रत्नों का सृजन हुआ जो युग युग तक त्रस्त जनता केलिए आशा का पथ आलोकित करते रहेंगे । अत: मैं ने अपने शोध केलिए "सूरसागर और कृष्णगाथा एक तुलनात्मक अध्ययन" - विषय चुन लिया है ।

यह विषय सर्वथा नूतन और महत्वपूर्ण है। हिन्दी और मलयालम दोनों अलग अलग परिवार की भाषाएं हैं । हिन्दी का सम्बन्ध आर्य भाषा परिवार से है और मलयालम का द्राविड भाषा परिवार से । दोनों का प्राचीन साहित्य समृद्ध है । दोनों भाषाओं के विकास में संस्कृत भाषा एवं साहित्य का योग महत्वपूर्ण है ।

हमारे देश की लगभग सभी प्रादेशिक भाषाओं में बड़ी मात्रा में कृष्णकाव्यों का सृजन हुआ है । इन काव्यों में श्रीमद्भागवत् की अन्तर्निहित रागिनी नहीं बदली - कृष्ण नहीं बदले, केवल कथा के वेश और परिवेश बदले हैं । केवल साहित्यिक भाषाओं में ही नहीं जनपद बोलियों में भी कृष्ण-गोपिकाओं के मार्मिक प्रसंग रम गये हैं । देश सांस्कृतिक दृष्टि से अटूट-अखण्ड बना रहे, इस केलिए आवश्यक है कि समस्त राष्ट्र को एकता में बांधने वाले सूत्रों को दृढ किया जाए । कृष्ण ऐसे ही माध्यम सूत्र हैं जिनके आधार पर समस्त राष्ट्र को एकता में ग्रथित किया जा सकता है ।

सूरसागर एवं कृष्णगाथा मानवजीवन के सर्वांगीण सजीव चित्र हैं । उनमें मानव जीवन के जो दृश्य अभिव्यक्त हुए हैं वे शाश्वत और चिरन्तन हैं । उभय काव्यों में प्रचुर साम्य है, किंचित् वैषम्य भी है । भेद का प्रमुख कारण दोनों कवियों की दृष्टि की मौलिकता और प्रतिभा की स्वतंत्रता है ।

सूर और चेरुश्शेरी प्राय: समकालीन हैं । भिन्न प्रदेशों में भिन्न वातावरण में रहने के कारण उनमें भेद है । पर संस्कृति, प्रवृत्ति, कलात्मक अभिरुचि आदि के आधार पर दोनों में काफी समानता भी है । अत: वे तुलनात्मक अध्ययन के अत्यंत उपयुक्त हैं ।

प्रसाद रूप यह कार्य पूर्ण हो सका है । अनुसन्धान पथ पर चलते समय अनेक प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव हुआ । ऐसे अवसरों पर उन्होंने पूर्ण मनोयोग से पथ प्रदर्शन किया है । अपनी शोध साधना की सफल परिसमाप्ति पर मैं श्रद्धानत होकर गुरुदेव के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

हमारे विभागाध्यक्ष एवं आचार्य डॉ॰ एन॰ रामन नायर ने शोध कार्य की पूर्ति केलिए काफी सहायता दिए हैं । उनके प्रति भी मैं बहुत आभारी हूँ ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मुझे अपना टीचर फेलोशिप देकर अनुगृहीत किया । फेलोशिप के माध्यम से यथासमय आर्थिक सहायता मिलते रहने के कारण मैं तीन वर्ष पूर्णत: अनुसन्धान कार्य में संलग्न रहकर यह प्रबन्ध प्रस्तुत करता हूँ ।

केरल सरकार ने मुझे डेप्युटेशन पर तीन साल अनुसन्धान कार्य केलिए भेजा । उन्होंने मुझे मासिक वेतन भी दिया । मैं केरल सरकार के अधिकारियों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ ।

पत्तनंतिट्टा कातोलिकेट कॉलेज के प्रबन्ध समिति ने मुझे तीन साल केलिए छुट्टी दी । कॉलेज के प्रधानाचार्य डॉ॰ जोर्ज सी वर्गीस ने टीचर फेलोशिप और डेप्युटेशन प्राप्त करने में मुझे सहायता प्रदान की । कॉलेज के अधिकारियों के प्रति, विशेषकर प्रधानाचार्य के प्रति मैं अत्यन्त आभार हूँ ।

कॉलेज के हिन्दी विभाग के अध्यापकों ने विशेषकर विभागाध्यक्ष डॉ॰ एम॰ जार्ज ने मुझे समय समय पर प्रेरणा और प्रोत्साहन दिये हैं । यह शोध प्रबन्ध उन गुरुजनों के आशीर्वाद का परिणाम भी है । मैं उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता ।

अपने इस शोध कार्य की सफलता पूर्ण समाप्ति केलिए जिन जिन सहृदयों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता प्राप्त हुई है, उन सब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए मैं यह शोध प्रबन्ध समर्पित करता हूँ ।

हिन्दी विभाग,
कोचिन विश्वविद्यालय,
कोचिन - पिन 682022
तारीख : 31 10 1983

मैरियान जोर्ज

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - एक — 1 - 50

वैष्णव धर्म का विकास और श्रीमद् भागवत

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति - वैदिक साहित्य में विष्णु - ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु - विष्णु के अवतार और अवतारों की संख्या - राम और कृष्ण - पांचरात्र संहितायें - भक्ति का मूल स्रोत - आलवार - वैष्णव आचार्य - वैष्णव धर्म का प्रसार - वैष्णव संप्रदाय की प्रमुख धारायें - सूरसागर और कृष्णगाथा का आधार ग्रन्थ - श्रीमद् भागवत - पुराण शब्द का अर्थ - अठारह पुराण - पुराणों में श्रीमद् भागवत का स्थान - भागवत का रचनाकाल - भागवत के स्कन्ध - भागवत के प्रतिपाद्य ग्रन्थ रचना का उद्देश्य - अवतार विवेचन - भागवत में कृष्ण चरित - विभिन्न भारतीय भाषाओं में कृष्ण चरित भागवत में भक्ति - नवधा भक्ति - नाम महिमा - गुरु महिमा - वैराग्य - श्री कृष्ण की विविध लीलायें - कृष्ण का सौन्दर्य - गोपिकायें - कृष्ण लीला का आध्यात्मिक अर्थ - वैष्णव धर्म के विकास में श्रीमद भागवत का योगदान - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - दो | 51 - 103

वैष्णव काव्य हिन्दी और मलयालम में

वैष्णव काव्य पूर्व पीठिका - दक्षिण के आलवार भक्त - आलवारों की रचनाएं - वैष्णव आचार्य - नाथमुनि - यामुनाचार्य - रामानुजाचार्य - रामानन्द - रामानन्द और हिन्दी - रामकाव्य - तुलसीदास और उनकी रचनाएं - कृष्णकाव्य - द्वैताद्वैतवाद और निम्बार्काचार्य माध्वमत या द्वैतवादी संप्रदाय - आचार्य वल्लभ और शुद्धाद्वैत संप्रदाय - पुष्टिमार्ग - अष्टछाप - नंददास कृष्णदास - परमानन्ददास - कुंभनदास - चतुर्भुजदास - छीतस्वामी - गोविन्दस्वामी - मीरां - सूरपूर्व हिन्दी कृष्ण काव्य परंपरा - सूरोत्तर हिन्दी कृष्ण काव्य । मलयालम का वैष्णव साहित्य - केरल और उसकी भाषा मलयालम - केरल की संस्कृति में भक्ति - मलयालम साहित्य : काल विभाजन - आदिकालीन साहित्य - गीत - रामचरितम - निरणम् कवि वृन्द - माधव पणिक्कर - शंकरपणिक्कर - रामपणिक्कर - कृष्णा भागवत् - श्रीकृष्णस्तव - भारत संग्रह - श्रीकृष्ण विजयम् - श्रीकृष्णाभ्युदयम् - रामकथापाट्टु - कृष्णगाथा - भारतगाथा - भागवतम पाट्टु - चम्पूकाव्य केरल के साहित्य प्रेमी राजा - मान विक्रम राजा - पुनम् नंपूतिरि - भारत चम्पू - कोलत्तुनाटु के राजा - उनकी साहित्य सेवा - स्तुति काव्य - वैष्णव काव्य पंद्रहवीं शती के बाद - कथकलि - पून्तानम नंपूतिरि और उनके भक्ति गीत - एषुत्तच्छन और उनका काव्य - उपसंहार ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - तीन 104 - 124

सूर और चेरुश्शेरी - जीवन झाँकी

जीवन वृत्त - सूर की जीवनी - समय - नाम - जाति
और वंश परिचय - माता पिता - पारिवारिक जीवन
निवास स्थान - बाल्यकाल - अंधा कवि - शिक्षा
दीक्षा और नाम - वल्लभ से साक्षात्कार - जीवन
की अन्य प्रमुख घटनायें - चेरुश्शेरी का जीवन वृत्त -
समय और जन्म स्थान - आश्रयदाता - कवि का
व्यक्तित्व - तुलनात्मक दृष्टि - निष्कर्ष ।

अध्याय - चार .... 125 - 156

सूर और चेरुश्शेरी की रचनायें

सूरसाहित्य - सूरसारावली - प्रतिपाद्य एक अवलोकन
साहित्य लहरी - प्रामाणिकता - प्रतिपाद्य - दृष्टिकूट
पर विचार - कलापक्ष - सूरसागर पदों की संख्या - सूरसागर
और भागवत - सूरसागर का महाकाव्यत्व - विषयवस्तु -
आलोचना ।
चेरुश्शेरी की रचनायें - मतमतांतर - गाथा साहित्य का
काव्य सौष्ठव - कृष्णगाथा - विषयवस्तु - विविध
अध्याय - कृष्णगाथा में भागवत का अनुवाद - कृष्णगाथा
का काव्य सौष्ठव - मलयालम साहित्य का सब से श्रेष्ठ
काव्य - कृष्णगाथा - सूरसागर और कृष्णगाथा
तुलनात्मक अवलोकन - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - पाँच 157 - 205

सूरसागर और कृष्णगाथा के कतिपय मार्मिक
प्रकरणों का तुलनात्मक अध्ययन

मार्मिक प्रसंग कौन कौन से और क्यों ?

1. बाललीला - माखनचोरी और वेणुवादन प्रसंग सूरसागर में - कृष्णगाथा में माखनचोरी और वेणुवादन प्रसंग - तुलना ।
2. चीरहरण
3. रासलीला
4. अक्रूर की ब्रजयात्रा
5. श्याम बलराम का मथुरा प्रवेश तथा कुब्जा प्रसंग
6. उद्धव की ब्रजयात्रा तथा भ्रमर गीत
7. प्रकृति चित्रण - निष्कर्ष ।

अध्याय - छः .... 206 - 354

काव्य सौन्दर्य

काव्य में सौन्दर्य विधायक तत्व - विविध दृष्टिकोण - रसव्यंजना - श्रृंगार रस - सूर का श्रृंगार वर्णन - संयोग श्रृंगार - वियोग श्रृंगार - कृष्णगाथा में श्रृंगार वर्णन - संयोग श्रृंगार - वियोग श्रृंगार - तुलना -

पृष्ठ-संख्या

सूर और चेरुश्शेरी में हास्य - हास्य रस - हास्य के भेद
वात्सल्य एवं शृंगार का पोषक हास्य - चीर हरण -
भ्रमर गीत - शरारतें - हास्य स्वतन्त्र रूप में ।
वात्सल्य रस - सूरसागर में वात्सल्य - कृष्णगाथा में
वात्सल्य - तुलनात्मक अवलोकन - निष्कर्ष ।
अलंकार - काव्य में अलंकार का स्थान - अलंकार शब्द
का अर्थ - अलंकार की परिभाषा - सूर और चेरुश्शेरी में
अलंकार - सूर में शब्दालंकार यमक श्लेष आदि -
अर्थालंकार : उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि कृष्णगाथा
में अलंकार - शब्दालंकार - द्वितियाक्षर प्रास - अर्था-
लंकार : उपमा उत्प्रेक्षा रूपक आदि - निष्कर्ष ।
काव्य रूप - महाकाव्य - महाकाव्य का भारतीय
लक्षण - महाकाव्य सम्बन्धी पश्चिमी विचार -
गीति काव्य एक विवेचन - प्रगीत तत्व - गीति
काव्य की विशेषतायें - कृष्णगाथा एक महाकाव्य -
कृष्णगाथा में गेयत्व - सूरसागर एक गीति काव्य
सूरसागर में प्रबन्धत्व -
भाषा शैली - भाषा - काव्य भाषा और सामान्य
भाषा - शैली - सूर और चेरुश्शेरी की भाषा - ब्रज
भाषा - सूर की भाषा - पात्रोचित भाषा - संपन्न
शब्द भंडार - प्रवाह - ध्वन्यात्मकता - सूर की शैली ।
चेरुश्शेरी की भाषा - मलयालम भाषा का विकास -
शुद्ध मलयालम की प्रथम रचना - मणिप्रवालम और
पाट्टु - चेरुश्शेरी की शैली ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - सात 335 - 340

उपसंहार

कवियों की विचार धारा में एकता - भावात्मक एकता में सहायता - मध्ययुगीन साहित्य - भक्ति काव्य की निजी विशेषता - वैष्णव भक्ति का विकास - सांस्कृतिक एकता का स्रोत - भक्ति - सूर और वेमोरी में भाव ऐक्य - दो स्वतंत्र काव्य - निष्कर्ष ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची .... 341 - 354

अध्याय - एक

वैष्णव धर्म का विकास और श्रीमद् भागवत

मध्यकालीन भारतीय साहित्य पर वैष्णव धर्म का सीमातीत प्रभाव है। वैष्णव धर्म के दो महान स्तंभ हैं राम और कृष्ण। राम और कृष्ण का मनोहारी रूप, उनकी विविध लीलायें हमारे कवियों के प्रिय विषय रही हैं। अवध एवं ब्रज, अयोध्या, चित्रकूट, वंशीवट आदि भारतीय काव्य जगत् में निरंतर स्थान पाते रहे हैं। कन्याकुमारी से काश्मीर तक और द्वारका से कामरूप तक यह सारा देश राम कृष्ण मय है - साहित्य में, ललित कलाओं में, मन्दिरों और मठों में, संगीत और नृत्य में, वेशभूषा में, खानपान में आचरण अभ्यास में सर्वत्र राम और कृष्ण का प्रभाव शाश्वत-सनातन है।

सूर और मेहरौदी दोनों वैष्णव धर्म के पक्के अनुयायी हैं। उनके काव्य वैष्णव धर्म के दर्पण हैं। काव्य के परिधान में समावृत करके वैष्णव धर्म प्रतिपादित मानवमूल्यों को ही जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किया जाता है। वैष्णव धर्म का विकास जनसाधारण के जीवन से संयुक्त होकर ही हुआ है। इसलिए उनके साहित्यक मूल्यांकन के लिए वैष्णव धर्म साधना का दिग्-दर्शन कराना आवश्यक हो गया है।

विष्णु की उपासना बहुत प्राचीन और व्यापक है । एक सर्वोपरि और सर्वोत्तम आराध्य के रूप में विष्णु की प्रतिष्ठा कब हुई - इसका निर्णय बहुत ही कठिन कार्य है ।

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं । उनमें मुख्य हैं -

"विष्णु" "विष्" धातु से बना हुआ है जिसका अर्थ है व्याप्त होना । सामान्य रूप से इसका अर्थ है सर्वोपयोगी, क्रियाशील एवम् व्यवसायी रहना । मैकडानिल जैसे पश्चिमी विद्वान इस अर्थ के समर्थक हैं । पर डॉ॰ राधाकृष्णन जैसे भारतीय विद्वान विष्णु को सूर्य का पर्यायवाची शब्द कहते हैं । सूर्य भी क्रियाशील है और उसका व्यापार शीघ्रता सूचक है[1] ।

"विश्" धातु से विष्णु शब्द की उत्पत्ति बतानेवाले विद्वान भी हैं । पौराणिक मत इसका समर्थक है । जगत् की निर्मिति करके विष्णु उसमें प्रविष्ट हो गये और उन्होंने सारा संसार व्याप्त लिया । यही व्यापनशीलता विष्णु शब्द का सबसे प्रमुख अर्थ है[2] ।

वैदिक साहित्य में विष्णु

ऋग्वेद में विष्णु को पक्षी-स्वरूपी सूर्य देवता भी माना गया है[3] । विश्व में तीन विभागों में से होनेवाले आरोहण और अवतरण का गौरव विष्णु के तीन पदन्यासों में चित्रित किया है[4] ।

---

1. डॉ॰ राधाकृष्णन - इण्डियन् फिलोसफी - पृ॰667
2. डॉ॰ नरहरिचिन्तामणि जोगलेकर - हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन् - पृ॰21,22
3. ऋग्वेद - दशम मण्डल - 1-1-3 [सं॰पं॰ रामशर्मा आचार्य - चतुर्थ संस्करण-1967
4. डॉ॰ J.Gonda - Aspects of Early Vishnuism (1st Edn.) p.3

आ विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जाते । बृहन्नाभि पाति तृतीयम् ।
आसाय दस्य पयो आक्रत स्वं सचेत सो अभ्यर्चन्त्यत्र ।। ऋग्वेद - 10-1-1-5

ऋग्वेद में विष्णु शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है । किन्तु सर्वत्र ही विष्णु एक दिव्य महान और सर्वव्यापी सत्ता के रूप में गृहीत हुआ है ।

डॉ॰ आर॰एन॰ दाण्डेकर के मत में विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति "वि" धातु से "स्नु" प्रत्यय लगाने से होती है[1] । वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि विष्णु शब्द का मूल अर्थ उठनेवाला हो सकता है ।

वेदोत्तर काल में वैदिक विष्णु संकल्प के अर्थ में विकास होता रहा । व्यापकता का अर्थ रखनेवाला वह शब्द क्रमशः सूर्य का समानार्थक हो गया । क्योंकि सूर्य में भी व्यापकता, तेजस्विता आदि विशेषतायें वर्तमान हैं । देवता संकल्प के विकास के साथ विष्णु को चतुर्भुजवाला माना गया और उनके चार हथियार माने जाने लगे ।

विष्णु का सुदर्शन चक्र सूर्य के चक्र का प्रतीक है । विष्णु के हाथ का कमल सूर्य का जीवनदायी प्रकाश से अभिन्न है । विष्णु का पीतांबर सूर्य के तेजस्वी किरणों का द्योतक समझा गया है । व्यापनशील विष्णु इस प्रकार सूर्य से अभिन्न हो गया ।

विष्णु अथवा सूर्य की नाना क्रियाओं तथा दशाओं की विभिन्नता से ऋग्वेद में अनेक देवताओं की कल्पना की गई है । सूर्य प्रातःकाल प्राची के क्षितिज से उठकर दोपहर में ठीक आकाश के मध्य में आ विराजता है तथा सायंकाल में पश्चिम दिशा में अस्त हो जाता है । इसे सूर्य का उद्योग संपन्न एवं क्रियाशील रूप कहते हैं, जिसकी कल्पना विष्णु के रूप से भी गई है । उसके स्वरूप की तुलना पर्वत पर रहनेवाले, भ्रमण करने वाले भयानक पशु [सिंह] से की गई है[2] ।

विष्णु की स्तुति में ऋग्वेद का यह मंत्र अत्यन्त प्रसिद्ध और उसके स्वरूप का परिचायक है -

---

1. डा॰ आर॰एन॰ दण्डेकर - अभिनव देवत शास्त्र [पु॰सं॰] - पृ॰27

2. मृगो न भीमः कुचरोगिरि - ऋग्वेद - 1-154-2

'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूळ्हमस्य पांसुरे'[1]

वैदिक विष्णु क्रमशः वैष्णवधर्म के सर्वोच्च देवता के रूप में परिणत हो गया । वह विष्णु, भागवत्, हरि, कृष्ण, नारायण आदि नाना नामों से अभिहित हुआ जो वस्तुतः में एक ही है[2] । ब्रह्मपुराण भी इसका समर्थन करता है[3] ।

विष्णु के अवतार और अवतारों की संख्या

बहुत से विद्वान अवतारवाद को भागवत् धर्म की ही देन मानते हैं[4] । भागवत् में अवतारवाद का सर्वांगीण विवेचन मिलता है[5] । अवतारों की संख्या के संबन्ध में भी मतभेद वर्तमान है । भागवत् में तीन स्थलों पर अवतारों का विशेष वर्णन है । उसके प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में 22 अवतारों का उल्लेख है । द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में 23 और एकादश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में 16 अवतारों का वर्णन है[6] । महाभारत में अवतारों की संख्या छः हैं[7] । हरिवंश पुराण में भी छः अवतार हैं पर कृष्ण के स्थान पर वहाँ सात्वत नाम दिया है और हंस, कूर्म, मत्स्य तथा कल्कि चार अवतार और जोड़कर संख्या 10 कर दी गई है । वराह पुराण हंस के स्थान पर बुद्ध मिलाकर अवतारों के अन्य यही नाम स्वीकार करता है । अग्नि पुराण वराह पुराण का अनुसरण करता है । ये सारे अवतार विष्णु के ही हैं । सामान्य रूप से प्रमुख अवतारों की संख्या दस मानी जाती है ।

---

1. ऋग्वेद - 1-122-7
2. S. Dasgupta - A History of Indian Philosophy-Vol.2, p.535
3. विष्णुत्वमुच्यते यस्य हरित्वं च कृते युगे ।
   वैकुंठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ।
   नारायणो ह्ययमनन्तात्मा प्रभवो व्यय एव च ।। ब्रह्मपुराण - 70-5,6
4. डॉ॰ मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास [सन् 1958 सं॰] - पृ॰331
5. डॉ॰ कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद - पृ॰31
6. डॉ॰ मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ॰334
7. महाभारत - नारायणीय उपाख्यान - 4-9

विष्णु की यह विशेषता है कि वे अपने मूल स्वरूप से भिन्न रूप धारण कर सकते हैं, तथा संकटग्रस्तों की सहायता के लिए तीन पदान्यासों जैसा परिक्रम भी करते हैं[1]। ऋग्वेद की विष्णु संबन्धी कल्पनाओं में विष्णु के अवतार के बीज निहित है।

राम और कृष्ण

राम और कृष्ण विष्णु के अवतारों में सर्वप्रमुख हैं। वे लोकरक्षक और लोकरंजक हैं। अतएव उनकी भक्ति का सर्वाधिक विस्तार हुआ। कृष्ण विष्णु की पूर्ण कला के अवतार हैं। वासुदेव के पुत्र होने के कारण कृष्ण वासुदेव कहा जाता है। सगुण भक्ति की दो प्रमुख शाखायें हैं - रामाश्रयी तथा कृष्णाश्रयी पुराणों में सगुण तथा निर्गुण दोनों की भक्ति का पर्याप्त वर्णन है। राम और कृष्ण की लोकप्रिय कथा संपूर्ण वैष्णव साहित्य में व्याप्त है। आपेक्षिक दृष्टि से कृष्ण कथा का अधिक विस्तार है। श्रीमद् भागवद् तथा ब्रह्म वैवर्त पुराण ही कृष्णलीलाओं के आधार ग्रन्थ हैं। रामकथा के विस्तृत रूप रामायणों में मिलते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी विष्णु का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु समस्त देवताओं में श्रेष्ठ है[2]। तैत्तिरीय संहिता में उनको त्रिविक्रम रूप में कल्पित किया जाता है[3]।

---

1. डॉ॰ नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर - हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन - पृ॰27
2. शतपथ ब्राह्मण - 1-9-39
3. तैत्तिरीय संहिता - 11-1-3-1

विष्णु के उक्त रूपों से स्पष्ट है कि वह इन्द्र सखा, बल-विक्रम से युक्त, मनुष्य के हितैषी तथा पृथ्वी के धारक हैं। वह सभी देवताओं की शक्ति से युक्त है अतएव सर्वश्रेष्ठ भी है[1]।

अवतारवाद के विषय में यद्यपि स्पष्ट रूप से वेदों में कुछ भी उल्लेख नहीं है, परन्तु कुछ ऐसी बातें जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि उसका प्रारंभिक रूप वैदिक ऋषियों को अज्ञात न था[2]।

महाभारत के शान्तिपर्व में विष्णु को वासुदेव कहा है[3]। रामचन्द्र शुक्ल ने विष्णु और वासुदेव की एकता तथा वासुदेव भक्ति का प्रारंभ महाभारत काल से ही सिद्ध किया है[4]।

महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तिम अठारह अध्यायों में तथा भीष्मपर्व के नारायणीयोपाख्यान में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। नारायण या पंचरात्र धर्म में वासुदेवोपासना पर ज़ोर दिया गया है[5]।

वेदों और वेदानुसारी पुराणों के अतिरिक्त आगम ग्रन्थों में भी विष्णु सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में स्वीकृत हैं। उनमें भी उनके विविध अवतारों, विविध लीलाओं और असीम महिमाओं का विस्तृत वर्णन है। मध्ययुग वैष्णव धर्म में वैदिक तथा वेदेतर दोनों धाराओं का समन्वय ही मिलता है।

---

1. डॉ॰ कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद - पृ॰12

2. It must be said thatthere is no clear referense to the avtar theory as such inthe vedas. But the germs of some of the features of that conception are certainly to be found in vedic passages-Vishnu in the vedas by R.N.Dandekar, from Volume of studies in Indology presented to Mr.Kane,p.95

3. सर्वेषामाश्रयो विष्णुरैश्वर्यं विविधमास्थितः।
सर्वभूतकृतावासो वासुदेवेति चोच्यते ।। महाभारत - शान्ति - 347-94

4. सूरदास - भक्ति का विकास - पृ॰26

5. महाभारत - शान्ति - 337-1, 339-19,348:82,83,339-25 आदि।

पांचरात्र संहितायें

वैष्णव धर्म की प्राचीनतम संज्ञा भागवत धर्म तथा पाँचरात्र मत है[1]। भागवत् धर्म ही "सात्वत" एकान्तिक तथा पांचरात्र नाम से भी विख्यात था[2]। पांचरात्रों का प्रसिद्ध चतुर्व्यूह सिद्धान्त है[3]। परंपरानुसार पांचरात्र संहिताओं की संख्या 215 है। पर आज तक 13 ही प्राप्त हो सकी है[4]। महाभारत के नारायणीयोपाख्यानम् में पांच रात्र विचारधारा का विवेचन प्राप्त है[5]।

पांचरात्र संहिताओं के विषय चार है - ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या[6]। इन ग्रन्थों में ब्रह्म, जीव और जगत् के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की गई है। पांचरात्र साहित्य में अखिल सृष्टि के सृजन पालन एवं संहार से लेकर भक्त के निमित्त आविर्भूत सक्रम अर्चा रूप तक का विशद प्रतिपादन है। मध्यकालीन भक्त एवं संत कवियों में पंचरात्रानुमोदित अन्तर्यामी और अर्चा उपास्यों एवं उनके अवतारी कार्यों का पर्याप्त विस्तार हुआ है[7]।

वैष्णवों केलिए पांचरात्र संहितायें वैदिक कल्पसूत्रों के समान है[8]। महाभारत के पांचरात्र मत में वैष्णव धर्म की निश्चित रूपरेखा बन जाती है[9]।

---

1. बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ०93
2. सूरि: सुहृद् भागवत: सात्वत: पञ्चकालवित्
   एकान्तिक स्तन्मयश्च पाञ्चरात्रिक इत्यपि ।।
   पाद्मतंत्र - 4-2-88 [बलदेव उपाध्याय कृत भागवत् संप्रदाय - पृ०99 में उद्धृत]
3. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन धर्म साधना - पृ०30,31
4. नागरी प्रचारिणी पत्रिका - [सं०2022 वि०] वर्ष 70 अंक - 4, पृ०2
   [असमिया वैष्णव धर्म का क्रम विकास - कुबेरनाथ राय]
5. वही - पृ०3
6. बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ०118
7. डॉ० कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद - पृ०31
8. डॉ० मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ०260
9. डॉ० राधाकृष्णन - इण्डियन फिलासफी - पृ०667

पांचरात्र सिद्धान्त को वैष्णव आगम या वैष्णव तन्त्र भी कहा जाता है । वैष्णव आगमों में वैखानस गृह्य सूत्र का महत्वपूर्ण स्थान है । पांचरात्र के समान प्राचीन तथा प्रामाणिक होने पर भी यह विशेष प्रसिद्ध नहीं ।

डॉ॰ भण्डारकर ने ऋग्वेद [पुरुष सूक्त] के नारायण से लेकर महाभारत तक के नारायण को एक प्राचीन देवता सिद्ध करते हुए यह माना है कि नारायण वासुदेव से प्राचीन है[1] । ब्राह्मण युग में वे परमात्मा की स्थिति पर पहुँच जाते हैं और आगे चलकर जब वासुदेव पूजा आरंभ हुई तो नारायण से उनका समीकरण कर दिया गया है[2] ।

विद्वानों का मत है कि विष्णु भक्ति का मूल रूप वैदिक काल में ही मिलता है[3] । वेदों, उपनिषदों तथा महाभारत में वैष्णव भक्ति का जो वर्णन मिलता है उसका पूर्ण विकास पुराणों में मिलता है । पुराण प्रमुख रूप से अठारह हैं[4] । इनमें से अधिकांश पुराणों में प्रमुख रूप से विष्णु के स्वरूप का प्रतिपादन मिलता है । इसलिए इन पुराणों में वैष्णव भक्ति का ही माहात्म्य वर्णन किया गया है ।

भक्ति का मूल स्रोत

"भक्ति द्राविड उपजी" के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । श्रीमद् भागवत् महापुराण के माहात्म्य वर्णन में भक्ति ने स्वयं नारद से कहा है कि मैं द्राविड देश में उत्पन्न हुई, कर्णाटक में बढ़ी .... आदि[5] ।

---

1. A. Vaishnavism, Shaivism and other minor religions - p.45
2. Narayan being thus evolved as the supreme being in the later Brahmanic period, was of course prior to Vasudeva and in the epic times when the worship of the later arose, Vasudeva was identified with Narayan-Dr. Bhandarkar_Vaishnavism, Shaivism and other minor religions. p.45,46
3. डॉ॰ राधाकृष्णन - इण्डियन फिलासफी - पृ॰667
   बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ॰51-87
4. भागवत - 12-8-23,24 - पुराणों की विस्तृत चर्चा बाद में किया जायेगा ।
5. श्रीमद् भागवत् माहात्म्य - 1-48

इस कथन का भावार्थ यह है कि जिस भक्ति का सूत्रपात वैदिक युग में हुआ था और जो क्रमश: विकासशील रही उसे प्रसार पाने का सुअवसर द्राविड देश में हुआ । भागवत् 11-5-38-40 की भविष्यवाणी है कि दक्षिण के ताम्रपर्णी, कावेरी, महानदी जैसे नदी तटों में विष्णु के भक्तों का आगमन होगा । यह भविष्यवाणी आलवार भक्तों के कारण सार्थक बन गयी । उनके कारण ही दक्षिण में वैष्णव भक्ति का पूर्ण प्रचार प्रसार हुआ[1] । फर्कुहर ने पहले ही ऐसा अनुमान लगाया था[2] । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का प्रसार दक्षिण के आलवार भक्तों से ही मानते हैं[3] । डॉ॰ रामकुमार वर्मा, डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे आधुनिक विद्वान इसके समर्थक हैं ।

कुछ लोग वैष्णव भक्ति के पूरे भारत वर्ष में प्रसार का कारण बौद्ध और जैन धर्म का अहिंसावाद सिद्ध करते हैं[4] ।

दक्षिण भारत की भक्ति परंपरा अत्यन्त प्राचीन है[5] । वैष्णव मत में भक्ति की जो प्रधानता है वह मुख्यत: द्राविडों की देन है[6] । पर अधिकतर विद्वान उसे किसी वर्ग विशेष की देन मानना उचित नहीं समझते । भले ही विशेष सामाजिक या राजनैतिक परिस्थिति के कारण दक्षिण में उसका कुछ अधिक सबल प्रभाव लक्षित होता है तथापि उसका उद्गम केवल दक्षिण में ही हुआ ऐसा कहना तर्कसंगत नहीं । डॉ॰ मुंशीराम शर्मा जैसे विद्वानों ने पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह स्थापित किया है कि भक्ति के ये वेदेतर स्रोत को ढूंट निकालने का प्रयत्न केवल साहस मात्र है[7] ।

---

1. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका का निवेदन - पृ॰2
2. Farquhar - An outline of Religious literature of India, p.232
3. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास {15 वां सं॰} - पृ॰69
4. डॉ॰ भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव - वैष्णव साधना और सिद्धांत - हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव - पृ॰25 / A. C.V.Vaidya-History of Mediaeval India, Vol.3 p.41
5. रामधारीसिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय {द्वि॰सं॰} - पृ॰28
   A History of Tamil literature - J.M.Somasundaram General Introduction, p.18
6. संस्कृति के चार अध्याय - पृ॰72
7. मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास

आलवार

उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद (ईसा की छठी शताब्दी के बाद) वैष्णव धर्म निर्बल हो गया । वैष्णव भक्ति के सूखते हुए वृक्ष को फिर से जीवन दान करके तमिल प्रदेश के आलवारों ने ही पनपाया । राम और कृष्ण-विष्णु के दोनों अवतारों की महिमा आलवार भक्तों की रचनाओं में प्रकट हुई है । बाद में उस विशाल वृक्ष की शीतल छाया में समस्त भारत वर्ष की वैष्णव जनता शान्ति पा सकी । केवल वैष्णव धर्म के प्रसार की ही नहीं अपितु शैवधर्म के प्रसार केलिए भी दक्षिण की भूमि उर्वर सिद्ध हुई ।

आलवार दक्षिण के अत्यन्त प्राचीन वैष्णव भक्त हैं । संपूर्ण भारत में वैष्णव भक्ति के प्रचार करने का श्रेय आलवारों का है[1] । डॉ॰ सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त का मत है कि आलवार संतों की साधना की ओर ध्यान दिये बिना भक्ति की चर्चा हो ही नहीं सकती[2] ।

प्रमुख आलवारों की संख्या बारह है । वे हैं - सरोयोगिन (पोयगै आलवार) भूत या पूत योगिन (भूतत्तालवार), महायोगिन (पेयि आलवार), भक्तिसार (तिरुमऴिसै पिरान्), मारन आलवार (शठकोप), मधुर कवि आलवार, कुलशेखर पेरुमाल, विष्णु चित्त, गोदा (अण्डाल), भक्तांघ्रिरेणु (तोण्डर अडिप्पोडि आलवार) योगिवाह (तिरुप्पान आलवार और परकाल (तिरुमंगै आलवार) । इनका जीवन काल ईसा की दूसरी शती से लेकर

---

1. The Vaishnava mystics and Saints are known as Alvars. It has been well said that they fillthe place between the Bhagavad Gita and Ramanuja. For the fountain of Vaishnava bhakti rises in the Gita, passes through the songs of the Alvars gathers its waters in the system of Ramanuja and flows out later as we shall see in varied streams all over India - D.S. Sarma - Hinduism through the ages (4th Edn.) p.36.37

2. Dr. S.N. Dasgupta - History of Indian Philosophy, Vol.III Introduction - p.Vii

नवीं शती तक है[1]। इनमें से एक को छोड़कर शेष सब तमिलनाडु के रहनेवाले थे। केवल कुलशेखर केरल के निवासी थे[2]।

विभिन्न कालों में आविर्भूत होने पर भी आलवारों की विचारधारा प्रायः एक ही है। वैष्णव भक्ति की परंपरा आलवारों के पहले से ही चली आ रही थी परन्तु उसके विकास में आलवारों की मौलिक देन यह है कि उन्होंने पहली बार भक्ति को आकर्षक भावमूलक रूप देकर[3] उसे सब केलिए सुलभ बनाया और वैष्णव भक्ति आन्दोलन का नेतृत्व किया।

1\. i. Dr. Krishnaswami Iyengar - Early History of Vaishnavism in South India, p.4-13
   ii. Dr. T.A. Gopinatha Rao - The History of Sri Vaishnavas, p.24
   iii. Sri. M. Sreenivasa Iyengar - Tamil Studies, p.19
   iv. Sri. V.R. Ram Chandra Dikshit - Early Tamil Religious literature in Indian History - Quarterly, Vol.18
   v. Rai Choudary - Early History of Vaishnavism, p.18
   vi. K.C. Varadachari - Alvars of South India p.1
   vii. D.S. Sarma - Hinduism through the ages, p.37
   viii. J.N. Farquhar - An outline of the Religious literature of India, p.188
   ix. S.N. Dasgupta - A History of India Philosoph Vol.III p.68
   x. Benjamin Walker - Hindu World (An Encholopaedia Survey of Hinduism, Vol.1, p.32

2\. a. V. Rangacharya - The Historical Evolution of Sri. Vaishnavism in South India, p.72
   b. The Cultural Heritage of India - Vol2, p.72

3\. It seems fairly certain that Alvars were the earliest devotees who moved forward in the direction of emotional transformation - Dr. S.N. Dasgupta - A History of Indian Philosophy, Vol.III p.82

आलवारों की रचनायें प्रेम और भक्ति की भावना से भरी हुई हैं। इनकी कृतियां तमिल भाषा में ही अधिकतर उपलब्ध हैं। कुछ आलवारों ने यद्यपि संस्कृत में भी ग्रन्थ लिखे तथापि इनकी आत्माभिव्यक्ति बहुधा तमिल में ही हुई। इनकी रचनाओं में विष्णु के प्रति अत्यन्त गंभीर श्रद्धा मिश्रित प्रेम प्रकट हुआ है। "नाल आयिर दिव्य प्रबन्धम्" जिसमें आलवारों की रचनायें संगृहीत हैं, तमिल प्रदेश में अत्यन्त पवित्र ग्रन्थ माना जाता है और वेद के समकक्ष रखा जाता है[1]। इनके पद मन्दिर में तथा विवाहादि के अवसरों पर घर में भी गाये जाते हैं। वैदिक मन्त्रों के साथ यज्ञ आदि अनुष्ठानों में भी इसका प्रयोग होता है।

आलवार पूर्व तमिल के संघ साहित्य में लौकिक प्रेम तथा नायक नायिका के संयोग वियोग का प्रचुर वर्णन मिलता है। विरह और मिलन की जिन दशाओं का निर्वाह उसमें किया गया था, उन सबका आलवारों ने प्रयोग किया और लौकिक नायक नायिका के स्थान पर प्रभु और भक्त को प्रतिष्ठित किया। वैष्णव भक्ति साहित्य में मधुर भक्ति का उद्गम यहीं से मानना चाहिए[2]। आलवार भक्तों के काव्य में प्रतिपादित यह रागात्मिका भक्ति डॉ॰ कृष्णस्वामी अय्यंगार के अनुसार भारतीय संस्कृति को दक्षिण भारत की सबसे बड़ी देन है[3]।

परवर्ती वैष्णव धर्म का स्वरूप बहुत कुछ आलवारों की देन है। आलवारों के अभाव में वैष्णव भक्ति का स्वरूप कुछ भिन्न ही होता, इसमें सन्देह नहीं।

---

1. डॉ॰ कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद - पृ॰35
2. डॉ॰ मलिक मुहम्मद - वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन - पृ॰106
3. Bhakti which transformed Brahmanism into Hinduism may therefore be regarded as an important contribution of India' - - Dr.S. Krishna Swamy Iyenger - Some contributions of South India to Indian culture (Preface) p.13,14

वैष्णव आचार्य

आलवार साहित्य से निःसृत भक्ति भागिता को उत्तर भारत में प्रवाहित करने का श्रेय उन वैष्णव आचार्यों को प्राप्त है जिनका जन्म तो हुआ दक्षिण में, किन्तु जिन्होंने या जिनके अनुयायी आचार्यों ने समस्त भारत वर्ष या मुख्यतः उत्तर भारत को वैष्णव धर्म के प्रचार के निमित्त अपना कार्य क्षेत्र बनाया । इनमें रामानुज, विष्णुस्वामी और उनकी परंपरा में होनेवाले वल्लभाचार्य, माध्वाचार्य और निम्बार्क विशेष उल्लेखनीय है ।

वैष्णव भक्ति के सबसे प्रथम दार्शनिक आचार्य परम योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ही माने जाते हैं । गुप्तों का शासनकाल उत्तर भारत में वासुदेव धर्म की उन्नति का समय था[1] । इसके बाद हर्षवर्धन जैसे सम्राटों के बाद वह धीरे धीरे दबता गया । अतः दक्षिण में उसका महत्व विशेष रूप से बढ़ने लगा । गुप्तों के शासन काल में भारतीय संस्कृति स्वर्ण युग में पहुँच चुकी थी[2] । भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि उसका साहित्य, दर्शन, कला, विज्ञान सब कुछ आध्यात्मिक विचारों से अनुप्राणित है[3] ।

वैष्णव धर्म का प्रचार

वैष्णव धर्म को गुप्त साम्राज्य ने प्रोत्साहन देकर उसके प्रचार एवम् वृद्धि के प्रयत्न गुप्त सम्राटों ने किये । अपने ध्वजों पर विष्णु चक्र और गरुड़ तथा सिक्कों पर लक्ष्मी को उन्होंने स्थान दिया । ईसा की चौथी शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक 800 वर्षों के उपलब्ध सिक्के वैष्णव धर्म का प्रभाव अभिव्यक्त करते हैं ।

---

1. The Gupta age has been called the Goldeen Age of Hindu India. Prof.A. Sreedhara Menon - Indian History and Culture, p.29
2. The Gupta age was indeed an age of the flowering of Indian culture- Prof. A. Sreedhara Menon - Indian History and culture, p.29
3. The dominent character of the Indian mind which has coloured a its culture and moulded all its thought is the spiritual tendency, spiritual experience is the foundation of Indias ric cultural history - Dr.Radhakrishnan -Indian philosophy(1951) Vol.I, p.41

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आई जिनसे वैष्णव साधना शिथिल सी पड़ने लगी। पर दक्षिण में वैष्णवों का प्रभाव शिथिल नहीं हुआ। शंकराचार्य के समय में भी दक्षिण में वैष्णव धर्म के पुनरुद्धार के प्रयत्न हुए, इसके प्रमाण उपलब्ध है।

वैष्णव धर्म की मुख्य विशेषतायें

समन्वय की भावना ही वैष्णव धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है। वेद संहिताएं, उपनिषद, ब्राह्मण, ब्रह्मसूत्र, गीता और भागवत् पुराण वैष्णव धर्म में प्रमुख प्रमाण माने जाते हैं। परन्तु इतिहास पुराण और लोकप्रचलित विश्वासों का भी समावेश वैष्णवों ने अपनी अपनी पद्धति में कर लिया है।

"वैष्णव धर्म भारतीय साहित्य के सौन्दर्य तथा माधुर्य का उत्स है, जीवन की कोमल तथा ललित भावनाओं का अक्षय स्रोत है, जीवन सरिता के सरस मार्ग पर प्रवाहित करने वाला मानसरोवर है।[1]" वैष्णव साहित्य भारतीय वाङ्मय की सबसे उज्ज्वल तथा सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। भारतीय साहित्य में गेय पदावली का आविर्भाव ही वैष्णव उपासना को केन्द्र बनाकर ही हुआ।[2]

वैष्णव संप्रदाय की प्रमुख धारायें

भारत वर्ष में चार वैष्णव संप्रदाय चार पृथक पृथक धाराओं में वैष्णव धर्म का प्रचार करते आ रहे हैं -

---

1. बलदेव उपाध्याय - भारतीय वाङ्मय में राधा - पृ.200
2. बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ.31-32

1. रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय
2. निम्बार्काचार्य का हंस संप्रदाय
3. माध्वाचार्य का ब्रह्मसंप्रदाय और
4. वल्लभाचार्य का रुद्र सम्प्रदाय ।

ये भगवान के नाम, रूप, गुण, कर्म सभी को नित्य और चिन्मय मानते हैं । श्री॰ रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा के रामानन्द तथा स्वामी वल्लभाचार्य के प्रभाव में मध्यकालीन हिन्दी काव्य साहित्य का अधिकांश निर्मित हुआ है[1] । महाप्रभु चैतन्य देव से प्रभावित वैष्णव साधकों की संख्या भी कम नहीं है । इनमें जयदेव और जयदेव से प्रभावित विद्यापति मुख्य हैं । शैव और शाक्त सम्प्रदायों की अपेक्षा वैष्णव सम्प्रदायों का ही प्रभाव हिन्दी साहित्य पर विशेष रूप से पड़ा ।

चारों वैष्णव सम्प्रदायों ने एक प्रकार से पांच राम सिद्धान्त का ही अनुसरण किया है । इनके मूल प्रवर्तक भगवान विष्णु हैं इसलिए ये सभी वैष्णव संप्रदाय कहे जाते हैं ।

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की उन्मेषकारिणी काव्य गङ्गा ने भारतीय जन जीवन और साहित्य को आप्लावित कर भावात्मक एकता के सांस्कृतिक तथ्यों को अभिव्यंजित करने की दिव्य प्रेरणा प्रदान की है । उसने सार्वभौम मानवतावाद को पूर्ण रूप से गौरवान्वित और प्रतिष्ठित किया है । हिन्दी और मलयालम के वैष्णव कवि इस आस्थापूर्ण भक्ति आन्दोलन से पूर्ण रूपेण अनुप्राणित हो उठे हैं । अपनी अपनी प्रादेशिक मर्यादाओं में रहते हुए भी वैष्णव साहित्य ने उच्चकोटि का प्रेम और सहानुभूति सारी मानवता को प्रदान करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी ।

---

1. चारों वैष्णव सम्प्रदायों का विस्तृत विवरण बाद में किया जायेगा ।

सूरसागर और कृष्णगाथा का आकर ग्रन्थ - श्रीमद् भागवत्

भारतीय साहित्य में पुराणों का अध्ययन करते समय व्यास नामक एक महा प्रतिभा दिखाई पड़ती है । "भारतीय साहित्य में वेदव्यास एक ऐसे अमर स्मारक, एक ऐसे युग निर्माता महापुरुष हुए, जिन्होंने एक ओर तो सहस्रों वर्षों से भरपूर वृहद् ज्ञानसरोवर की जीर्णोन्मुख चहारदीवारी का पुनरुद्धार किया और दूसरी ओर उस आकंठ भरपूर महाज्ञानसरोवर से काट-छाँटकर ऐसी विभिन्न ज्ञान धाराओं को कुलित किया, जिनसे सिंचित होकर भारत की विचारभूमि निरन्तर फूलती फलती रही[1] ।"

भारतीय साहित्य में व्यास के महाव्यक्तित्व का असाधारण और आश्चर्य जनक रूप में विकास मिलता है । व्यास नाम से जुड़े हुए अनेक ग्रन्थ मिलते हैं । एक ही मनुष्य ने इन सभी ग्रन्थों की रचना की हो - यह संभव नहीं । वैदिक काल से लेकर पौराणिक युग तक व्यास नाम का कोई एक ही दीर्घ जीवि व्यक्ति हुआ था - यह भी असंभव है । "समस्त पुराणों के रचयिता व्यास कोई एक व्यक्ति न होकर, पूरी एक वंश परंपरा का नाम हो सकता है[2] ।"

व्यास ने पुराणों की रचना की है - इसकी सूचना विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण में मिलती है[3] ।

---

1. पं० वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास [प्र०सं०] - पृ०227
2. रघुवंश - भरत का नाट्य शास्त्र - भूमिका [1964 सं०] पृ०8
3. आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
   पुराण संहितां चक्रे पुराणार्थ विशारदः ।। विष्णु पुराण 3-6-15
   अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः
   भारताख्यान मखिलं चक्रे तदुपबृंहितम् ।। मत्स्य पुराण 53-70

पुराण शब्द का अर्थ

पुराण शब्द का सामान्य अर्थ है प्राचीन । वस्तुतः पुराणों में प्राचीन सामग्री ही नवीन कलेवर में विराजती है । विभिन्न ग्रन्थों और स्वयं विभिन्न पुराणों में भी पुराण शब्द की पृथक पृथक व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं । निरुक्तकार ने पुराण शब्द का निर्वचन करते हुए, कहा है - "पुरा नवं भवतीति पुराणम्" [निरुक्त 3/19] वायुपुराण में पुराण शब्द का निर्वचन करते हुए कहा है

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्त मस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते[1] ।।

पद्मपुराण में इसे प्राचीन परंपरा की कामना करनेवाला बताया गया है -

पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन तत्स्मृतम्[2] ।।

ब्रह्माण्ड पुराणमें भी पुराण शब्द की परिभाषा दी गई है और वहाँ इसे प्राचीन काल में होने वाला बताया गया है ।

यस्मात् पुराह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते[3] ।।

इन सब निर्वचनों को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुराण शब्द प्राचीनता का द्योतक है ।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान फर्कुहर ने भी पुराणों की प्राचीनता स्वीकार किये हैं[4] ।

---

1. वायुपुराण 1/203
2. पद्मपुराण 5/2/53
3. ब्रह्माण्ड पुराण 1/1/173
4. J.N. Farquhar - A Primer of Hinduism, p.93

पुराण भारतीय आचार शास्त्र और धर्म शास्त्र के विश्वकोश है[1]। पुराणों की लोकप्रियता और महत्व को ध्यान में रखते हुए फर्कुहर ने बताया है कि वह साधारण जनता के लिए बैबिल के समान है और उसी के आधार पर भारतीय जन साहित्य का अक्षय स्रोत है[2]।

पुराणों में वह बीज निहित है जिससे कालान्तर में भारतीय संस्कृति का विशाल वट वृक्ष उगा और फूला फला। वेदों ने जिस ब्रह्म को सत्यं ज्ञानं अनन्तं रूप में चित्रित किया उसी को पुराणों ने सौन्दर्यमूर्ति तथा पतितपावन भगवान के रूप में चित्रित किया है। "सनातन धर्म की विजय वैजयंती को धार्मिक नभोमंडल में उड़ानेवाले पुराण ही हमारी जनता के मानस को आकृष्ट करनेवाले सबसे सुन्दर लोकप्रिय धर्म ग्रन्थ है[3]।

पुराण शब्द का अर्थ है पुराना। इसलिए पुराण ग्रन्थों से मतलब उन ग्रन्थों से है जिनमें प्राचीन आख्यायिकायें संगृहीत हैं। अमरकोश में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पाँचों की व्याख्या करनेवाला ग्रन्थ पुराण बताया है[4]।

अठारह पुराण

पुराण नाम के ग्रन्थ बहुत हैं। उपपुराणों को मिलाने पर उनकी संख्या सौ से ऊपर होगी। परन्तु उनमें अठारह पुराण ही प्रमुख है[5]।

---

1. Puranas may be described as a popular encyclopaedia of ancient and mediaeval Hinduism, religious, philosophical, historical, personal, social and political - Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol.10, p.448
2. 'Indeed the Epics and the purranas are the real Bible of the common people, whether literate or illiterate, and they are the source of half the vernacular literature.' Farquhar - An outline of the Religious literature of India p.136
3. पं॰ बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ॰ 141
4. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च
   वंशानुचरितं चापि पुराणम् पंच लक्षणम् ।। अमरकोश - पृ॰ 154
5. The puranas are always reckoned as eighteen in number - Encyclopaedia of Religion and Ethics - Vol.10 p.447

विष्णु पुराण और भागवद् पुराण के अनुसार अष्टादश पुराण ये हैं[1] - ब्राह्म, पद्म, वैष्णव, शैव या वायवीय, भागवद्, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्म वैवर्त, लिंग, वाराह, स्कान्द, वामन, कौर्म, मात्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड ।

पुराणों के समान अठारह उपपुराण भी हैं । उपपुराणों की संख्या के सम्बन्ध में भी मत भेद है । ब्रह्मा ने सब पुराणों को कल्पादि में पहले ही रचा था, उनसे मुनियों ने सुना और सुनकर भिन्न भिन्न कल्प में अलग अलग संहितायें लिखीं । इस कल्प के द्वापर युग के अन्त में कलि काल के अल्पज्ञ मुनियों के उपकारार्थ व्यास ने फिर से उन वचनों के, संक्षिप्त करके पुराण संहितायें लिखीं । कलि युग के आरंभ में मनुष्यों की स्मृति और विचार बुद्धि की दुर्बलता को देखकर भगवान वेदव्यास ने जहाँ वेद को चार संहिता रूप में विभाजित किया वहाँ पुराणों को भी संक्षिप्त कर अठारह विभागों में बाँट दिया ।

अठारह पुराणों में से लगभग आधे पुराणों का सीधा संबन्ध वैष्णव धर्म से है । मत्स्य, कूर्म , वाराह तथा वामन इन चार पुराणों का नामकरण तथा निर्माण भगवान विष्णु के चार अवतारों को लक्ष्य कर रखा गया है । नारद, पद्म, विष्णु तथा श्रीमद् भागवद् - इनमें विष्णु के आध्यात्मिक रूप तथा महिमा का व्यापक तथा सुन्दर विवेचन है ।

अष्टादश पुराणों में श्रीमद् भागवत का स्थान

श्रीमद् भागवत समस्त पुराणों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है । सारे भारत में यह समादृत है । इसमें जो कवित्व है वह बहुत ही ऊँचे दर्जे का है । संस्कृत साहित्य के एक अनुपम रत्न होने के अतिरिक्त भक्ति शास्त्र का यह

1· विष्णु पुराण 3-6-20-24 तथा भागवद् पुराण 12-8-23,24 और 12-13-3-8

सर्वस्व है । "इसकी भाषा इतनी ललित है, भाव इतने कोमल तथा कमनीय है कि ज्ञान तथा कर्मकाण्ड की अभ्यस्त सेवा से ऊसर मानस में भी यह भक्ति की अमृतमय सरिता बहाने में समर्थ होता है।[1] यह निगम कल्पतरु का स्वयं गलित फल है - जिसे शुक देव जी ने अपनी मधुर वाणी से संयुक्त कर अमृतमय बना डाला है[2]। रामायण और महाभारत की भांति इस काव्य ने भी भारतीय साहित्य को गहराई तक प्रभावित किया है[3]।

भागवत में सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधन ज्ञान, सिद्धज्ञान, साधन भक्ति, साध्य भक्ति, वैधी भक्ति, प्रेमा भक्ति, मर्यादा मार्ग, अनुग्रह मार्ग, द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत आदि सभी पद्धतियों का रहस्य बड़ी ही मधुरता के साथ प्रतिपादित है । पर वह स्वयं सारे मतभेदों से परे है । उसमें सबका समन्वय हो जाता है ।

श्रीमद् भागवत का महत्व

वैष्णव धर्म के प्रकरण ग्रन्थों में श्रीमद् भागवत का सर्वोच्च स्थान है[4]। आधुनिक काल के विद्वान डॉ॰ नरेन्द्र शर्मा चौधरी लिखते है - "श्रीमद् भागवतं पुराणेषु नितरामभ्यर्हितं स्थानं मधि करोति[5]।" श्रीमद् भागवत को पुराणों में श्रेष्ठ स्थान है ।

---

1. पं॰ बलदेव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय [प्र॰सं॰] - पृ॰ 147
2. निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखाद मृतद्रव संयुतम् ।
   पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुका: ।। श्रीमद्भागवत 1-1-2
3. Undoubtedly the purana of ... is one of the seminal books in the religious literature of India, like the Ramayana and the Mahabharata' - D.S. Sarma - Hinduism through the ages, p. 39
4. As a literary source of vaishnavism in all its forms the Srimadbhagavata has been more highly regarded than any writing
4. Prof. Archie J. Bahm - The Worlds Living Religions (1964), p. 39

5. डॉ॰ नरेन्द्रशर्मा चौधरी - श्रीमद् भागवतस्य वैशिष्ट्यम् -

डॉ॰ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति आन्दोलन पर भागवत का व्यापक प्रभाव मानते हैं[1]।

श्रीमद् भागवत के द्वारा ही संपूर्ण भारत वर्ष में वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ[2]। सभी परवर्ती वैष्णव संप्रदायों का भी आधार ग्रन्थ यही है।

श्रीमद् भागवत में[3] स्पष्ट कहा गया है कि सर्वव्यापक चिन्मय सत्ता ही विष्णु रूप में प्रकट हुई थी। भक्तों की अभिलाषा की पूर्ति केलिए विष्णु के पुरुषावतार तथा गुणावतार के अतिरिक्त कल्पावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, तथा स्वल्पावतार - अन्य चार अवतार होते हैं जिनका विस्तृत वर्णन भागवत में मिलता है[4]।

संक्षेप में वैष्णव धर्म के उत्थान और व्यापन में पुराणों का अत्यधिक योगदान है। उसका परवर्ती विकास पुराण साहित्य पर ही आश्रित है। इससे स्पष्ट है कि मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आन्दोलन का एक प्रमुख प्रेरणा स्रोत भागवत ही है।

मध्ययुगीन वैष्णव धर्म की पाँच प्रमुख धारायें हैं - [1] निंबार्क [2] माध्व [3] विष्णु स्वामि [4] वल्लभ और [5] चैतन्य। ये भागवत से प्रेरणा पाकर उत्पन्न हैं[5]।

---

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का आदि काल [प्र॰सं॰] - पृ॰17
2. डॉ॰ भुवनेश्वरनाथमिश्र माधव - वैष्णव साधना और सिद्धान्त [प्र॰सं॰] - पृ॰27
3. यद् यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
   सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं सत्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः।।
   श्रीमद् भागवत 5 10-3-24
4. बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ॰167,173
5. Five Schools of Bhakti arose, out of this wonderfull book Bhagavata those of Nimbarka, Madhva, Vishnu Vamin, Vallabha and Chaitanya - D.S. Sarma - Hinduism through the ages. p.39

भागवत का रचना काल

श्रद्धालु भक्त भागवत को बहुत प्राचीन ग्रन्थ मानते है । परन्तु अधिकतर आधुनिक विद्वानों का मत है कि यह एक परवर्ती रचना है और इसका काल ईसा की नवम शती के पहले नहीं हो सकता[1] ।

मध्वाचार्य ने भागवत पर टीका लिखी है, अतः निश्चित रूप से यह मध्वाचार्य के पहले की है । श्री मध्व का जन्म सन् 1197 में कर्नाटक प्रदेश में हुआ[2] ।

भागवत में आलवार भक्तों की बड़ी स्तुति की गई है । आलवारों की प्रेमयुक्त भक्ति भावना की बड़ी सराहना भी मिलती है[3] इससे यह स्पष्ट है कि श्रीमद् भागवत का रचनाकाल आलवार युग के बाद ही है । आलवारों का समय दो सौ ईस्वी से नौ सौ ईस्वी तक है[4] ।

मत्स्य पुराण और पद्मपुराण में भी श्रीमद् भागवत का उल्लेख है । इससे स्पष्ट है कि भागवत की रचना मत्स्य पुराण और पद्मपुराण के पहले हुई है ।

वैष्णव भक्ति की जन्मभूमि तमिल प्रदेश है । इस मत का समर्थन पद्म पुराण भी करता है[5] । डॉ॰ फर्कुहर का मत है कि श्रीमद् भागवत ई॰900 के निकट तमिल प्रदेश में कहीं लिखा गया है[6] ।

---

1. a. R.G.Bhandarkar - Vaishnavism, Saivism and other Minor Religious Sects - p.49
   b. Farquhar - An Outline of Religious Literature of India-p.229
2. मध्वाचार्य के जीवन काल के बारे में विद्वानों में मत भेद है -
   B.N.Krishnamurti-The Date of Madhavacharya--Annamalai University Journal-Vol.XII(1934)p.245
3. कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः
   क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः
   ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।
   कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।। भागवत - 11-5-38,39,40
4. पद्मपुराण - 193 : 38-94 और 194 12-63
5. S.N.Dasgupta - A History of Indian Philosophy-Vol.III p.68
6. The Bhagavata was written about 900 A.D. in the Tamil country in some community of ascetics belonging to the Bhagavata sect who felt and gave expression to the Bhakti characteristic of the work - Dr.J.N. Farquhar - The Religious Quest of India.

डॉ॰ सिद्धेश्वर भट्टाचार्य के अनुसार श्रीमद् भागवत की रचना सामग्री तमिल प्रदेश के भक्तों की कृतियों से ही बहुत कुछ संगठित हुई है और तमिल वैष्णव भक्तों की भावमूलक भक्तिका समावेश करके ही श्रीमद् भागवत के वर्तमान रूप का प्रणयन हुआ है। उनकी यह भी मान्यता है कि भागवत का कोई पूर्व रूप रहा होगा और तमिल प्रदेश के वैष्णव संतों के प्रभाव के बाद ही उसका वर्तमान अंतिम रूप स्थिर हुआ[1]। राजेन्द्र चंद्र हज़रा[2] और सर हारेसे आर्थर रोज़[3] जैसे विद्वान भी सामान्य रूप से इसका समर्थन करते हैं। सारांश यह हैकि भागवत का वर्तमान रूप आलवार युग के बाद ही लिखा गया है आलवार भक्तों का समय ई॰850 के आसपास समाप्त होता है। अतः ई॰ 850 और 900 के बीच में भागवत् के वर्तमान रूप की रचना हुई ऐसा मानना तर्क युक्त है। भागवत की रचना दक्षिण में हुई इसके समर्थन में निम्न लिखित तर्क उपस्थित किये जाते हैं -

भागवत के वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते हैं। ब्रज के वर्णन में भी उत्तर भारत के दृश्य की अपेक्षा दक्षिण के दृश्य ही अधिक प्रतिबिंबित है। भागवत 10-20-27,28 में भील किरात आदि जातियों के निवास स्थान का वर्णन है। गिरि कन्दराओं का चित्रण भी है। ये सब ब्रज भूमि की अपेक्षा दक्षिण भारत में ही प्रायः दिखाई पड़ते हैं। नदी, पर्वतों, घने वनों, खर्जूर आदि वृक्षों का आधिक्य दक्षिण प्रायद्वीप और विन्ध्याचल के आसपास ही है।

---

1. Dr. Siddhesvara Bhattacharya Bhattacharya - The Philosophy of Srimad Bhagavata - part 1 - Introduction - p.14,15

2. Internal and external evidences shew that the present Bhagavata purana must have been written in the sixth centuary A.D. and most probably in its former h lf, but it can hardly be denied that this work has been revised and amended at times.
The Cultural Heritage of India - Vol.2, The Puranas - Rajendra Chandra Hazra - p.259

3. It can hardly havebeen written after 900 A.D. and must be due to a community of singers in the Tamil Country.

Encyclopaedia Brittanica (4th Edn.) Vol.12, p.162

पुष्पों के वर्णन से भी भागवत का रचनास्थल दक्षिण भारत ही प्रतीत होता है । अनेक स्थानों पर ऐसे पुष्पों की नामावली आई है[1] जो अधिकतर दक्षिण भारत में ही पाये जाते हैं । कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, मालती, मल्लिका आदि पुष्प प्राय: दक्षिण भारत में अधिक दिखाई पड़ते हैं । इन पुष्पों के उल्लेख से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में इसकी रचना हुई है। कवि को जिन पदार्थों का दर्शन प्रत्यक्ष और सुलभ होता है वे ही उसकी रचनाओं में वर्णित होते हैं - यह स्वाभाविक है । अत: श्रीमद्भागवत के विविध वर्णनों और भौगोलिक ज्ञान के आधार पर इसका रचना स्थल दक्षिण भारत ही प्रतीत होता है[2] ।

भागवत के स्कन्ध

श्रीमद् भागवत द्वादश स्कन्धों में विभक्त है । इसका दशमस्कन्ध सबसे बड़ा है और इसके पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भाग हैं । श्रीकृष्ण के लीलागान की दृष्टि से दशमस्कन्ध ही सबसे महत्त्वपूर्ण है । भारतीय भक्ति साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव उसीका पड़ा है[3] । शेष ग्यारह स्कन्धों में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के विशेष विवेचन के अतिरिक्त अनेक पौराणिक विषयों का वर्णन है ।

भागवत के प्रतिपाद्य

श्रीमद् भागवत का प्रमुख प्रतिपाद्य ब्रह्म अथवा भगवान है[4] । भगवान ही समस्त चराचर जगत का एकमात्र शरण्य है । ब्रह्म ही आभास और निरोध का अधिष्ठान, निरपेक्ष और निर्लिप्त साक्षी है । भागवत में इस आश्रय तत्त्व ब्रह्म के सम्यक ज्ञान और उपलब्धि केलिए भी विषयों का विवेचन हुआहै। वे हैं - सर्ग,

---

1. भागवत् - 10-30-6,8
2. डॉ॰ हरवंशलाल शर्मा - भागवत दर्शन - पृ॰84
3. विश्वनाथ शुक्ल - हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव-पृ॰23
4. भागवत - 1-2-11 और 3-32-26 और विश्वनाथ शुक्ल : हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद्भागवत् का प्रभाव - पृ॰34

विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा निरोध और मुक्ति[1]। दसवाँ तत्त्व स्वयं आश्रय तत्त्व है। सर्ग विसर्गादि के सविस्तार निरूपण द्वारा ब्रह्म के सर्वात्मत्व और भगवान की अनन्त विभूति महिमा का ज्ञान कराया गया है।

भागवत के प्रत्येक स्कन्ध में ब्रह्म का निरूपण है। उसके सगुण और साकार रूप का दशम स्कन्ध में[2] और निर्गुण निराकार रूप का वर्णन द्वादश स्कन्ध में मिलता है।

दशम स्कन्ध में कृष्ण के बालचरित और युवक कृष्ण के गोपियों के साथ विहार का गान है। दशम स्कन्ध के चित्रण में भागवतकार ने जो अद्भुत काव्य कुशलता और चमत्कार प्रदर्शित किये हैं वह पीछे के कवियों को भी प्रभावित किये हैं।

भागवत में बाललीला का अनन्त माहात्म्य वर्णित है पर दशम स्कन्ध का लक्ष्य भी प्रत्यक्ष कृष्ण लीला गान है[3]। श्री कृष्ण सगुण साकार ब्रह्म है[4]।

ग्रन्थ रचना का उद्देश्य

इसके सम्बन्ध में भागवतकार ने लिखा है जब व्यासजी ने देखा कि महाभारत में नैष्कर्म्य प्रधान धर्म का जो निरूपण है, उसमें भक्ति का यथावत् वर्णन नहीं है। इस पर उनका मन उदास हुआ और उन्होंने नारद की प्रेरणा से भागवत की रचना की[5]। इससे स्पष्ट है कि भागवत भक्ति प्रधान ग्रंथ है।

---

1. भागवत - 2-10-1,2
2. तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
   चतुर्भुजं शङ्ख गदार्युदायुधम्।
   श्री वत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं
   पीताम्बरं सान्द्रपयोद सौभगम्॥ श्रीमद् भागवत 10-3-9,10
3. भागवत - 10-1-3 और 10-1-7
4. भागवत - 1-2-11 और 10-14-15
5. श्रीमद् भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय - 4,5

मंगलाचरण के प्रथम तीन श्लोकों में यह संकेत है कि श्रीमद् भागवत वेदान्तार्थ और ब्रह्मसूत्रों का भाष्य है । पहले श्लोक में 'सत्यं परं धीमहि' कहा गया है । अर्थात् भागवतकार ग्रन्थ रचना के पहले भगवान के उस सत्य स्वरूप का ध्यान करते हैं, जिससे इस जगत की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होती है[1] ।

दूसरे श्लोक के अनुसार प्रस्तुत पुराण में मोक्ष पर्यन्त फल-कामना रहित परम धर्म का निरूपण हुआ है[2] । तीसरा श्लोक कहता है कि यह काव्य वेद रूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है । श्री शुक देव रूपी शुक के मुख का सम्बन्ध होने से यह परमानन्दमयी सुधा से परिपूर्ण हो गया है[3] । जब तक शरीर में चेतना रहे तब तक इस दिव्य भागवत रस का निरन्तर पान करते रहना चाहिए ।

इन तीनों श्लोकों में भागवत का सार तत्त्व आ गया है । यह ग्रन्थ समस्त श्रुतियों और उपनिषदों का सार है[4] । इसमें ब्रह्म और आत्मा का एकत्व प्रतिपादित है । इसके निर्माण का एकमात्र प्रयोजन कैवल्य या मोक्ष है[5] । जो इस वेदान्त सार रूप भागवत के रस से तृप्त होता है वह फिर और कहीं रम नहीं सकता[6] ।

भागवत में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म परमात्मा है । वे ही सत्य की सार हैं। स्वयं भगवान उद्धव से कहते हैं - मैं सबका उपादान कारण होने से सबकी आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ, इसलिए मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता[7] ।

---

1. 1. जन्माद्यस्य यतो न्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि । श्रीमद् भागवत 1-

2. श्रीमद् भागवत 1-1-2

3. वही - 1-1-3

4. वही - 12-13-12 और 15

5. सर्ववेदान्तसारं यद ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैक प्रयोजनम् ।। श्रीमद्भागवत 12-13-12

6. सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते । तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्व
भागवत 12-13-15

7. भागवत - 10-47-29

जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में पंचभूत व्याप्त हैं, उन्हीं से सब वस्तुएं बनी है, और वह उन वस्तुओं के रूप में है वैसे ही मैं मन, प्राण, पंचभूत, इन्द्रिय और उनके विषयों में व्याप्त हूं । मैं ही सबका आश्रय हूं । वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूं और सच पूछो तो मैं ही उनके रूप में प्रकट हो रहा हूं ।[1]"

भागवत के अनुसार जीव नित्य और अहंकार रहित है । वह अविनाशी सूक्ष्म, सबका आश्रय और स्वयं प्रकाश है[2] ।

जीव और ईश्वर अभिन्न है । स्वयं भगवान कहते है "मित्र, जो मैं [ईश्वर] हूं वही तुम [जीव] हो । तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो, मैं भी वही हूं जो तुम हो । ज्ञानी पुरुष हम दोनों में [illegible] थोड़ा सा भी अंतर नहीं देखते[3] ।"

भागवत में ब्रह्म और जगत् की भी अद्वैतता दिखाई गई है - यद्यपि व्यवहार में पुरुष और प्रकृति-द्रष्टा और दृश्य के भेद से दो प्रकार का जगत् जान पड़ता है तथापि परमार्थ दृष्टि से देखने पर यह एक अधिष्ठान स्वरूप ही है[4] । भागवतानुसार जगत का उपादान और निमित्त कारण ब्रह्म ही है[5] ।

श्रीमद् भागवत में मोक्ष या कैवल्य मुक्ति का वर्णन है[6] । इसके अतिरिक्त पांच प्रकार की मुक्तियों का भी वर्णन है । वे हैं [1] सालोक्य मुक्ति [2] सार्ष्टि मुक्ति [3] सामीप्य मुक्ति [4] सारूप्य मुक्ति और [5] सायुज्यमुक्ति[6] ।

---

1. भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित्
   यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही
   तथा हं च मनः प्राण भूतेन्द्रियगुणाश्रयः ।। भागवत - 10-47-29
2. भागवत - 6-16-8,9
3. अहं भवान्न चान्यस्त्वंत्वमेवाहं विचक्ष्व भोः
   न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि । भागवत - 6-28-62
4. श्रीमद् भागवत - 11-28-1
5. श्रीमद् भागवत - 2-5-14 और विश्वनाथ शुक्ल - हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य
   पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव - पृ.38
6. भागवत - 12-13-12
7. सालोक्य सार्ष्टि सामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत
   दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः । भागवत - 3-29-13

भगवान के नित्य चिन्मय धाम में निवास करना सालोक्य मुक्ति है । भगवान के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्ष्टि मुक्ति है । भगवान का सतत सामीप्य प्राप्त कर लेना सामीप्य मुक्ति है । भगवान के समान ही रूप प्राप्त कर लेना सारूप्य मुक्ति है। भगवान में लीन हो जाना, युक्त हो जाना सायुज्य मुक्ति है[1] ।

अवतार विवेचन

भागवत में अवतार विवेचन बहुत ही वैज्ञानिक तथा दार्शनिक ढंग से किया गया है[2] । अवतारों के तीन भेद हैं - पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार पुरुषावतार में संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं[3] । वासुदेव कृष्ण स्वयं अवतारी हैं । अवतारों के अनेक कारण बताये गये हैं । 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' (गीता) का समर्थन अनेक स्थानों पर मिलता है[4] ।

भगवान के अवतार के अनेक प्रयोजन हैं यथा - लीला विस्तार, देवकार्य संपादन,[5] प्राणियों को मोक्षदान,[6] भक्तों का अनुग्रह,[7] और भक्तों के प्रति मैत्री निर्वाह[8] ।

भागवत में कृष्ण चरित

मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रेरणा स्रोत श्रीमद् भागवत है । भागवत प्रतिपादित कृष्ण लीला के अतिरिक्त गोपिकाओं का अनन्य राग भी कृष्ण भक्त कवियों को बहुत ही आकर्षक लगा है । दशम स्कन्ध में ही ये सभी बातें आती

---

1. गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित श्रीमद् भागवत् पुराण प्रथम खण्ड में पृ.343 में (भागवत् - 3-29-13 की टिप्पणी)
2. डॉ. कपिलदेव पाण्डेय - मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद पीठिका - पृ.
3. श्रीमद् भागवत् - 3-26
4. वही - पृ.10-3-10, 10-50-14 और 10-70-27
5. वही - 11-7-2 और 10-46-23
6. वही - 10-57-46 और 10-70-39
7. वही - 10-39-23
8. वही - 10-69-17

अत: वही स्कन्ध कृष्णभक्त कवियों का प्रधान उपजीव्य रहा है ।

दशम स्कंध दो भागों में विभक्त है - पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । पूर्वार्द्ध में कृष्ण का जन्म, गोकुल में कृष्ण का जन्मोत्सव, पूतनावध, शकट भंजन, तृणावर्तवध, उलूखलबन्धन, बकासुर वध, कालिय दमन, चीरहरण, गोवर्धन धारण, रासलीला, मथुरागमन, कुब्जा पर अनुकंपा, कंसवध, उद्धव द्वारा गोपियों को सन्देश, रुक्मिणी की प्रेम परीक्षा, कृष्ण द्वारा सुदामा का आतिथ्य आदि प्रतिपादित हैं । इन प्रसंगों को मध्ययुगीन कवियों ने समग्र रूप से ग्रहण किया है ।

रास लीला का मुख्य उद्देश्य भक्त को दिव्य आनन्द में मग्न करना है भगवल्लीलायें त्रिभुवन को पवित्र करनेवाली है[1] । इसमें कृष्ण और विष्णु का एकत्व सर्वत्र प्रतिपादित है । कृष्णोपासना को अन्य साधना मार्गों से श्रेष्ठतर बताया भी गया है[2] ।

श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व भागवत में सर्वत्र प्रकट है । सप्तम स्कन्ध के युधिष्ठिर नारद संवाद में नारद कहते हैं कि कृष्ण मनुष्य रूपधारी पर ब्रह्म है[3] । दशमस्कन्ध में कृष्ण के परब्रह्मत्व और परमेश्वरत्व की प्रतिष्ठा उनके अद्भुत कार्यों के आधार पर की जाती है[4] । भागवतकार की दृष्टि में राम और कृष्ण अवतारों में सर्वश्रेष्ठ हैं तथा दाशरथि राम और वासुदेव कृष्ण का अभेद भी प्रतिपादित है[5] ।

कृष्ण भक्ति आन्दोलन का प्रमुख प्रेरणा स्रोत श्रीमद् भागवत ही है । विविध संप्रदायों पर उसका प्रभाव 13वीं शती से ही लक्षित होता है । 15, 16 शती तक आते आते इस आन्दोलन ने जन आन्दोलन का रूप धारण किया । विवि संप्रदायों में विपुल मात्रा में भक्ति साहित्य प्रणीत हुआ । सबका मानस प्रेरणास्रोत

---

1. अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ।
   पर्यटामि तवोद्गायँल्लीला भुवनपावनीः ।। श्रीमद् भागवत - 10-69-39
2. डॉ. विश्वनाथ शुक्ल - हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव
   {प्र.सं.} पृ.158
3. गूढं परं ब्रह्ममनुष्यलिङ्गम्" - श्रीमद् भागवत - 7-15-75
4. श्रीमद् भागवत - 5-19-6
5. वही - 10-7-9,10, 10-11-4,5.

श्रीमद्भागवत् ही रहा । ब्रजभाषा साहित्य ने देश के कोने कोने में कृष्ण भक्ति का संदेश पहुंचा दिया । देश के दक्षिण और उत्तर दोनों भागों में भागवत् को समान आदर प्राप्त है । सभी संप्रदायों की दृष्टि में उसकी समान मान्यता है । निंबार्क, मध्व, वल्लभ, चैतन्य जैसे आचार्यों की प्रेरणा से अनेक भक्त कवियों ने श्रीमद् भागवत् से प्रभावित होकर विभिन्न भाषाओं में विपुल भक्ति साहित्य का निर्माण किया ।

विभिन्न भारतीय भाषाओं में कृष्ण चरित

प्रभाव क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से भागवत की समानता कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं कर सकता । भारत में भावात्मक एकता स्थापित करने का महान कार्य भी भागवत ने किया । हिन्दी के कृष्ण काव्य का प्रेरणा स्रोत भागवत् ही रहा है । अन्य भारतीय भाषाओं के कृष्णकाव्य का उत्स भी भागवत ही है[1] । तेलुगु में बम्मेर पोतन्न का महा भागवत प्रसिद्ध ही है[2] । मंडिक्किसिंगन्न का दशम स्कन्ध अनुवाद भी मिलता है[3] । तमिल में दो भागवत् मिलते हैं - वेंकटेशवरार और वरदराज अय्यंगार के[4] ।

---

1. डॉ॰ नगेन्द्र : भारतीय कृष्ण भक्ति काव्य और सूरसागर (हिन्दुस्तानी त्रैमासिक - सूर विशेषांक सन् 1978 ई॰ पृ॰3,4,5,6
2. सम्मेलन पत्रिका - भाग-63 संख्या-4, शक 1899
3. बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय (पु॰सं॰) - पृ॰37-40
   डॉ॰ के॰रामनाथन - हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य - पृ॰255,371
   G.N. Reddy Telugu Literature - The Cultural Heritage of India Vol.5(1978) Part III p.623-641
4. Nilkanta Shastri - History of South India - (4 Edn.) p.332
   T.N. Ventachari - Tamil literature - The Cultural Heritage of India - Vol.5, Part III, p.600-622

मलयालम के निरणम् कवियों में [ई॰14वीं शती के उत्तरार्द्ध और 15वीं शती के पूर्वार्द्ध] रामपणिक्कर ने दशम स्कन्ध का अनुवाद किया।[1] कृष्णगाथा के रचयिता चेरुश्शेरी नम्पूतिरि [ई॰ 15वीं शती] अत्यन्त प्रसिद्ध वैष्णव कवि हैं। कृष्णगाथा श्रीमद् भागवत पर आधारित है। तुंचत्तु एळुत्तच्छन ने [ई॰16 वीं शती] संपूर्ण श्रीमद् भागवत का पद्यबद्ध अनुवाद किया। पून्तानम [ई॰ 16वीं शती] कृत श्रीकृष्णकर्णामृतम् का आधार श्रीमद् भागवत् है। कुंचन नंपियार [ई॰18वीं शती] की रचना श्रीकृष्ण चरित मणिप्रवालम्, भागवत दशमस्कन्धकिळिप्पाट्टु, स्यमन्तकम् आदि का आधार भी भागवत् ही है।[2]

कन्नड में वैष्णव भक्त कवियों की एक लंबी सूचि मिलती है - पुरन्दर दास [16वीं शती] कनकदास [16 वीं शती] श्री प्रसन्न वेंकटदास [16वीं शती] श्री जगन्नाथ दास आदि।[3] इनका भी प्रेरणा के स्रोत भागवतम ही है।

मराठी में भट्ट बोरीकार की उद्धव गीता, एकनाथ का भागवत् [15वीं शती ई॰] आदि प्रसिद्ध हैं। शिव कल्याण [ई॰ 16 वीं शती] श्रीकृष्ण दयार्णव [ई॰ 16वीं शती] विद्याम कवि आदियों ने भी मराठी में भागवत के आधार पर काव्य रचना की है।[4]

1· तिरुविताकूर के निरणम नामक स्थान के निवासी तीन कवि निरणम कवि नाम से प्रसिद्ध हैं। ये हैं - माधवपणिक्कर, शंकर पणिक्कर और रामपणिक्कर। तीनों कृष्ण भक्त कवि हैं। - आर॰नारायण पणिक्कर केरल भाषा चरित्रम् भाग-1, पृ॰281

2· Ulloor S. Parameswara Aiyer - Kerala Sahitya Charitram, Vols.2&3
Dr.K.M. George - Malayalam Literature - The Cultural Heritage of India - Vol.5 Part III p.535-547

3· काशीनाथ एम हल्लीकेरी : कन्नड साहित्य का सुबोध इतिहास-पृ॰144-164
डॉ॰ हिरण्मय : हिन्दी और कन्नड भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन पृ॰151, 352-54
डॉ॰ शिवगोपाल - कन्नड साहित्य का नवीन इतिहास - पृ॰110,123,12[illegible]

4· प्रो॰ भी गो देशपाण्डे : मराठी का भक्ति साहित्य - पृ॰20
डॉ॰ र॰श॰ केलकर - मराठी और हिन्दी कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन पृ॰112,154,224,225,227,256,257

गुजराती में भालण कवि [कादम्बरी, राम बाल चरित आदि] भीम [हरि लीला, षोडश कला तथा प्रबोध प्रकाश] नरसी मेहता [गोविन्द गमन, सुदामा चरित] केशवदास [श्रीकृष्ण क्रीडा काव्य] आदि के काव्य भागवतानुसारी है[1] ।

बलराम दास, जगन्नाथदास, अनन्तदास, यशवन्तदास, अच्युतानन्ददास, चरणदास आदि उड़िया के प्रसिद्ध कवि है जिन्होंने श्रीमद् भागवत् के आधार पर काव्य रचना की है[2] ।

वैष्णव कवियों की संख्या बंगला में संभवत: सबसे अधिक है । उनका भी प्रधान ग्रन्थ भागवत् है । कवियों में मुख्य हैं - मालाधर वसु, कृष्णदास, नन्दरामदास, बलराम नन्दराम घोष आदि[3] । असमी में भक्ति रत्नाकर के रचयिता शंकरदेव, वैकुण्ठ भट्टदेव, अनन्त कन्दली, केशव नारायण आदि महान वैष्णव कवि है[4] ।

मध्ययुग में [15 वीं 16 वीं और 17 वीं शतियों में] भागवतानुसारी भक्ति साहित्य का निर्माण विपुल मात्रा में हुआ । यह विशेष लक्षणीय है कि इसका माध्यम संस्कृत न था । संस्कृत का स्थान देशी भाषाओं ने ग्रहण किया । इनके साहित्य में जो भावात्मक एकता दिखाई पड़ती है वह आश्चर्यजनक है । इस एकता का प्रमुख प्रेरणास्रोत है श्रीमद् भागवत ।

---

1. डॉ॰ जगदीश गुप्त - गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन - पृ॰474-480

   K.M. Munshi - Gujarat and its literature - p.110, 118, 119, 122 and 143

2. .C. Mishra - Oriya literature - The Cultural Heritage of India - Vol.5 Part III Editor-Suniti Kumar Chatterji - p.561-577.

3. हंस कुमार तिवारी - बंगला और उसका साहित्य - पृ॰58-59

4. प्रो॰ हेम बरुआ - असमिया साहित्य - पृ॰109,111 और 112

भागवत में भक्ति

भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से धर्म साधना के तीन प्रधान मार्ग प्रचलित है - कर्म, ज्ञान और भक्ति । देश, काल, परिस्थिति के अनुसार कभी किसी मार्ग की प्रधानता रही है, कभी और किसी की ।

भक्ति शब्द संस्कृत के "भज् सेवायाम्" धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है भगवान की सेवा करना । आचार्यों ने "भक्ति" शब्द की कई प्रकार से व्याख्या की है । शाण्डिल्य के अनुसार ईश्वर में अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है[1]। नारद ईश्वर के प्रति परम प्रेम को भक्ति मानते हैं[2]। भागवतकार भक्ति का यों लक्षण देते हैं -

स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्ति रधोक्षजे ।
प्रतिहता यथा त्मा सम्प्रसीदति[3] ।

अर्थात् भक्ति ऐसी हो जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरंतर बनी रहे । ऐसी भक्ति से आनन्द स्वरूप भगवान की उपलब्धि करके भक्त कृत कृत्य हो जाता है ।

आचार्य शुक्ल लिखते हैं - "भक्ति मार्ग अपने विशुद्ध रूप में धर्म भावना का भावात्मक या रसात्मक विकास है[4]। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्ति भगवान के प्रति अनन्यगामी एकान्त प्रेम का ही नाम है[5]।" पाश्चात्य विद्वानों ने भी भक्ति की व्याख्या प्रायः इसी प्रकार की है[6]।

---

1. सा परानुरक्तिरीश्वरे / 2 / शाण्डिल्य भक्ति सूत्र - भक्ति चन्द्रिका - संपादक-गोपीनाथ कविराज - पृ.5
2. सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा - 2-3 - नारद भक्ति सूत्र
3. श्रीमद् भागवत् - 1-2-6
4. रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास - पृ.45
5. हजारीप्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन धर्म साधना - पृ.142
6. Bhakti means 'adoration' directed to ards Bh_avan, the 'adorable', by the Bhakta, the adoring devotee - J.N. Farquhar -Primer of Hinduism, p.104 Section 79

स्पष्ट है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। भक्ति अहेतुकी है और मोक्षप्राप्ति केलिए सबसे सरल मार्ग है।

भक्ति की उत्कृष्टता सर्वत्र स्वीकृत है। भक्ति न केवल "परम प्रेमरूपा" और "अमृतरूपा" है बल्कि जिसने भक्ति को प्राप्त किया है, वह सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है[1]। वह स्वयं फलरूपा है। अतः उसके सिवा कोई दूसरा परमार्थ नहीं है। कर्म, ज्ञान, योग से भक्ति बड़ी है, क्योंकि वह सबसे अधिक सरल है। अन्य मार्ग इतने लम्बे, टेढ़े-मेढ़े, कठिन हैं कि कभी कभीऊपर चलना असंभव हो जाता है। किन्तु भक्ति मार्ग में स्वयं भगवान पथ प्रदर्शक हैं, रक्षक हैं। भगवान के चरणों का प्रकाश सदा मार्ग को उज्ज्वल और प्रशस्त करता रहता है। "अनन्य भक्त को ही भगवान के दर्शन प्राप्त होते हैं, जो न वेद से न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही संभव है[2]।"

"भक्ति भगवान का आत्मा से साक्षात्, निकट सम्बन्ध स्थापित करती है, अतएव कर्म और ज्ञान दोनों से ऊपर है[3]।" सुगमता तथा सार्वजनीनता के कारण ही भक्ति पंथ का विपुल प्रचार धार्मिक जगत् में विद्यमान है[4]। भक्ति के द्वारा भक्त भगवान के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है।

श्रीमद् भागवत में भक्ति का माहात्म्य सर्वत्र प्रतिपादित है। श्रीकृष्ण निष्काम और अव्यभिचारिणी भक्ति ही मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है। भक्ति से वैराग्य और विशुद्ध ज्ञान की उपलब्धि होती है। धर्म की चरम सिद्धि भक्ति ही है[5]। भक्तियोग से भगवत्तत्व का ज्ञान होता है, उससे जीव की हृदय ग्रन्थि [अहंकार] खुल जाती है, संशय नष्ट हो जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्मों का

---

1. यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति,
   अमृतो भवति तृप्तो भवति। नारद भक्ति सूत्र - पृ.204
2. श्रीमद्भगवत् गीता - 11-53,54
3. मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ.79
4. बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ.99
5. एतावानेव लोके ऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः
   भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ।।
   श्रीमद् भागवत - 6-3-22 तथा 4-29-44

नाश हो जाता है । अतः मनीषी जन भक्ति योग ही ग्रहण करते हैं[1]। भक्ति की पावनकारिणी शक्ति की कोई सीमा नहीं । पतितात्मा भागवत भक्ति से जितना शुद्ध होता है उतना बार बार प्रायश्चित करने से नहीं हो सकता । उद्धार का एकमात्र साधन भक्ति है । सूर्य जैसे नीहार को नष्ट करता है वैसे ही भक्ति पापों को नष्ट कर देती है । भक्ति मार्ग ही सर्वथा भय रहित कल्याणमय राजमार्ग है[2]। भागवत् में श्रीकृष्ण कहते हैं "कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान-धर्म तथा अन्यान्य श्रेष्ठ साधनों से जो कुछ स्वर्ग, अपवर्ग अथवा मेरा परम धाम आदि प्राप्त होते हैं, वह सब यदि इच्छा करें तो मेरा भक्त मेरी भक्ति द्वारा सुगमता से प्राप्त कर सकता है । मेरे अनन्य भक्त मेरे देने पर भी भक्ति के अतिरिक्त कैवल्य की भी कामना नहीं करते[3]।

वेदों तथा उपनिषदों में भक्ति का जो स्फुरण मिलता है उसका पूर्ण विकास महाभारत तथा पुराणों में मिलता है । एक ओर यदि पुराण अद्वैत का समर्थन करते हैं तो दूसरी ओर विशुद्ध भक्ति का भी । श्रीमद् भागवत में स्पष्ट कहा गया है कि सर्वव्याप्त चिन्मय सत्ता ही विष्णु रूप में प्रकट हुई थी[4]। विष्णु ही भक्तों का एक मात्र प्राप्य है ।

विष्णु के अवतार

विष्णु के अवतार अनेक प्रकार के होते हैं जिनमें मुख्य हैं - पुरुषावतार और गुणावतार । इनके अतिरिक्त कल्पावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार तथा स्वरूपावतार भी हैं जिनका विस्तृत वर्णन भागवत में मिलता है[5]।

---

1. श्रीमद् भागवत् - 1-2-20 तथा 1-2-22
2. स ध्रीचीनो ह्यं लोके पन्था: क्षेमो कुतोभय:
   सुशीला: साधवो यत्र नारायण परायण: ।। श्रीमद् भागवत - 6-1-16
3. न किंचित साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनोमम
   वा छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ।। वही 11-10-32,33,34
4. श्रीमद् भागवत - 10-3-24
5. बलदेव उपाध्याय - भागवत् सम्प्रदाय {प्र॰सं॰} - पृ॰167

भगवान का लीला वैचित्र्य दुरूह है । उनकी लीला शक्ति अचिन्त्य है । इसी शक्ति के कारण वह एक होकर भी अनेक तथा अनेक होकर भी वस्तुत: एक ही है ।

श्रीमद्भागवत में केवल ज्ञान साधना को भूसा कूटने के समान निष्फल परिश्रम कहा गया है[1] । भागवत् माहात्म्य में तो मुक्ति को भक्ति की दासी कहा गया है[2] इसलिए भगवान का भक्त भक्ति के अतिरिक्त ब्रह्म पद, स्वर्गराज्य या किसी प्रकार के ऐश्वर्य की इच्छा नहीं करता[3] ।

भगवान् स्वयं भक्ति को अपनी प्राप्ति का सुलभ साधन घोषित करते हैं[4] । जैसे आग में तपाने पर सोना मैल छोड़ देता है - निखर जाता है और अपने असली शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है, वैसे ही मेरे भक्ति योग के द्वारा आत्मा कर्मवासनाओं से मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मैं ही उसका वास्तविक स्वरूप हूँ[5] । मेरे पवित्र चरित्रों का श्रवण एवं ध्यान करता हुआ आत्मा जैसे जैसे शुद्ध होता जाता है वैसे ही अंजनाचित आँखों की तरह वह सूक्ष्म वस्तु के दर्शन करने लगता है[6] । गीता और रामायण की भक्ति से भागवत की भक्ति भिन्न है[7] ।

---

1. भागवत् 10-14-3
2. भागवत् माहात्म्य 2-10
3. न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
   न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्
   न योग सिद्धीर पुनर्भवं वा
   मय्यर्पिता त्मेच्छति मद्विनान्यद् । भागवत् 10-14-4
4. श्रीमद्भागवत् माहात्म्य 2-4
5. भागवत् 10-14-25
6. वही 10-14-26
7. Bhakti inthis work(Bhagavat puram) is a surging emotion which Chokes the sppech, makes the tears flow and the hair thrill with pleasurable excitement and often leads to hysterical longing and weeping by turns to sudden fainting fits and to long trances of unconsciousness.......... thus the whole theory and practice of Bhakti in this puran is very different from the Bhakti of the Bhagavat Gita and of Ramayana.
   J.N. Farquhar - An Outline of the Religious Literature of India, p.230

नवधा भक्ति का सांगोपांग वर्णन सर्वप्रथम भागवत पुराण में ही मिलता है। इससे सिद्ध है कि भक्ति का पूर्ण विकास पुराण काल में ही हुआ है। भक्ति के सम्यक् ज्ञान के लिए पुराणों का अवगाहन आवश्यक है। डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं - "वैष्णव धर्म के विकास और प्रसार में पुराणों का सर्वाधिक योगदान रहा है। वैष्णव सम्प्रदायों के प्रवर्तन में जिन सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया है उनमें से अधिकांश का आधार पुराण साहित्य ही है। .... अतः वैष्णव सम्प्रदायों के विभिन्न रूपों की सीमा मर्यादा की परीक्षा के लिए भी पुराणों का अवगाहन नितान्त आवश्यक हो जाता है[1]।"

नवधा भक्ति

भागवत में भक्ति का अत्यंत शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक विवेचन मिलता है। यह हमने देख लिया। साधना पक्ष को ध्यान में रखकर भागवतकार भक्ति के नौ भेद मानते हैं। भक्ति के नव प्रकार ये हैं - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्[2] ।"

इनमें प्रथम तीन-श्रवण, कीर्तन और स्मरण श्रद्धा और विश्वास की वृद्धि के सहायक है। पाद सेवन, अर्चन और वन्दन रूपसम्बन्धी साधन हैं तथा दास्य सख्य और आत्मनिवेदन भाव संबन्धी साधन हैं। अन्तिम आत्मनिवेदन नवधा भक्ति की चरम परिणति है।

---

1. डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक - राधा वल्लभ सम्प्रदाय - सिद्धान्त और साहित्य पृ॰58
2. भागवत 7-5-23

नवधा भक्ति और प्रेमलक्षणा भक्ति दोनों में प्रायः समस्त भक्त कवियों को प्रभावित किया है । मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आन्दोलन को व्यापक रूप देने में इन्होंने पर्याप्त सहयोग दिया है ।

नाम महिमा

श्रीमद् भागवत में भगवन्नाम की महिमा का विस्तृत वर्णन है । अजामिल उपाख्यान प्रकरण में भगवन्नाम की अपार दुरितक्षयकारिणी अमोघ शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है[1]। जिसप्रकार गुणकारी औषधि बिना गुण जाने सेवन किये जाने पर भी लाभ पहुंचाती है, उसी प्रकार मंगलमय भगवन्नाम का प्रभाव ज्ञान रहित ग्रहण किये जाने पर भी अपना कल्याणकारी फल अवश्य ही देता है[2]। भगवन्नामों के उच्चारण से भगवान के अनेक दिव्य गुणों का ज्ञान होता है[3]। लौकिक वैदिक कर्मों में प्रवृत्त मनुष्य के हृदय में स्थित होते हुए भी भगवान उससे दूर रहते हैं, किन्तु सतत गुण गान करने वाले भक्त के वे अत्यन्त निकट रहते हैं[4]। भगवन्नाम का उच्चारण न करनेवाले मनुष्य की जिह्वा मेंढक की जिह्वा के समान है[5]।

गुरु महिमा

गुरु साधक का पथप्रदर्शक है । अज्ञान अंधकार में गुरु ज्ञान दीपक है । गुरु की सहायता के बिना मन की मलिनता दूर नहीं हो सकती । परमात्मा की प्राप्ति उसके बिना असंभव ही है ।

---

1. भागवत् 6-1-20-68
   दुष्ट अजामिल ने मृत्यु के समय अपने छोटे पुत्र नारायण का नाम पुकारा । नारायण नाम अनजान में ही पुकारने के कारण उसे मोक्ष मिलता है
2. यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया
   अजानतो ऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रो ऽप्युदाहृतः ।। श्रीमद् भागवत 6-2-19
3. न निष्कृतै रुदितैर्ब्रह्मवादिभि स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
   यथा हरेर्नाम पदैरुदाहृतै स्तदुत्तमश्लोक गुणोपलम्भकम् ।। श्रीमद् भागवत 6-2-1
4. श्रीमद् भागवत - 10-86-47
5. वही - 2-6-20

श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि गुरु भगवत्स्वरूप है । साधारण मनुष्य समझकर उसकी किसी बात की उपेक्षा या अवहेलना नहीं करनी चाहिए क्योंकि गुरु सर्वदेवमय होता है[1] । गुरु के सामने साधक को अपना शरीरादि सर्वस्व समर्पित करना चाहिए । गुरु का सर्वदा अनुगमन करते हुए, अत्यन्त तुच्छ सेवक के समान रात दिन उसकी सेवा में संलग्न रहना चाहिए[2] । भगवत्तत्ववेत्ता शान्त और भगवत्स्वरूप गुरु सर्वदा उपास्य है[3] । गुरु सेवा से सर्वान्तर्यामी परमेश्वर जितना सन्तुष्ट होता है, उतना यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तप आदि किसी अन्य साधन से नहीं होता[4] । ज्ञान दीप का दान करने वाले भगवद्रूप गुरु में मनुष्य बुद्धि करनेवाले मनुष्य का समस्त शास्त्र श्रवणजन्य ज्ञान हाथी के स्नान के समान निष्फल है[5] । गुरु के चरणों का आश्रय लिये बिना मनोनिग्रह करने का प्रयत्न करनेवाले मनुष्य उसी प्रकार विपत्ति ग्रस्त हो जाते हैं जिस प्रकार बिना कर्णधार की नौका पर यात्रा करनेवाले वणिक जन[6] ।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य में भाषा भेद के बिना सर्वत्र गुरु महिमा स्वीकृत की जाती है । यह भागवत का ही सत्प्रभाव है । हिन्दी में तो भक्तिकाल में सगुण, निर्गुण, ज्ञानाश्रयी प्रेमाश्रयी सभी साहित्य शाखाओं में गुरु को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । मध्यकालीन मलयालम के कवि भी काव्यारंभ में गुरु की वन्दना अनिवार्य ही मानते हैं । गुरु का स्थान भारतीय वाङ्मय में सर्वोच्च है ।

वैराग्य

सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य भाव रखना भक्ति पथ के पथिक केलिए परमावश्यक है । पूर्ण ज्ञान या पूर्ण आनन्द की अवस्था में तो संसार के

---

1. आचार्य मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
   न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः । भागवत - 11-17-27
2. भागवत् - 11-17-28-32
3. यमान भीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित्
   मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ।। भागवत् - 11-10-5
4. भागवत् - 10-80-32-34
5. यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीप प्रदे गुरौ
   मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ।। भागवत - 7-15-26
6. भागवत् - 10-87-3

राग-द्वेषों से, अपने आप छुटकारा मिलता है । परन्तु साधनावस्था में वैराग्य के अभ्यास की आवश्यकता होती है । जब तक मन सांसारिक विषयवासनादि में लीन रहता है तब तक वह ईश्वरोन्मुख नहीं हो सकता । मन के ईश्वरोन्मुख होने में बाधा डालनेवाले अनेक पदार्थ है जिनपर विजय प्राप्त करना ही वैराग्य है । वैराग्यसिद्धि में सहायक विविध उपाख्यानों का वर्णन है । भागवत में वैराग्य के विविध साधनों में मुख्य है इन्द्रियदमन, नारी के मोहक रूप की निन्दा, अर्थ निन्दा तथा शरीर की नश्वरता का बोध आदि । देह-गेह में आसक्त मनुष्य की दयनीय दशा का विस्तृत वर्णन भागवत में मिलता है[1] । मुमुक्षु पुरुष के हृदय में वैराग्य का संचार करना ही इस वर्णन का लक्ष्य है ।

श्रीमद् भागवत के अनुसार जीव का सबसे बड़ा बन्धन नारी है । नारी की आकर्षण शक्ति का उल्लेख कर उसके मादक रूप की ज्वाला से निरंतर दूर रहने का आदेश दिया गया है[2] । यह स्त्री रूपिणी भगवन्माया अत्यन्त प्रबल है । योगी के लिए तो यह नरक का द्वार है और तृण से आच्छादित मरण कूप है[3] । वैराग्य का प्रथम सोपान है धननाश[4] । अर्थ के कारण ही मनुष्य अनर्थों का शिकार होता है । अतः कल्याणकामी पुरुष को अर्थ का परित्याग कर देना चाहिए । धननाश से मन में वैराग्य का संचार होता है और वैराग्य से भक्ति प्राप्ति होती है । धनमद के कारण मनुष्य की सात्विकता नष्ट हो जाती है और वह पूर्णतया भगवान से विमुख हो जाता है । अतः साधक को अनर्थों के आश्रय रूप धन में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए[5] । भक्त को अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना भी आवश्यक है । नारी के मोहक रूप तथा अर्थ की निन्दा निरंतर करनी चाहिए । शरीर की नश्वरता का बोध भी होना चाहिए ।

---

1. भागवत - 3-31-47-48
2. भागवत् - 3-31-39
3. योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ।
   तमीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ।। भागवत - 3-31-40
4. तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः
   खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ।। भागवत् - 11-23-13
5. स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ।
   द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ।। भागवत 11-23-23

श्रीकृष्ण की विविध लीलायें

कृष्णलीला वर्णन भागवत का सर्वोच्च लक्ष्य है । बाललीला इस में प्रमुख है । ~~बाललीला इस में प्रमुख है~~ । अपनी मनोरम लीलाओं के कारण बालकृष्ण अनन्त वात्सल्य और सख्य का केन्द्र बना रहता है । किशोर अवस्था में वही माधुर्य का निधान बन जाता है । तारुण्य एवं प्रौढावस्था में वही प्रेम एवं श्रद्धा के सीमान्त पर दिखाई देता है । सगुण ब्रह्म भगवान का अचिन्त्य चरित है लीला । निर्गुण-निराकार ब्रह्म का लीला से कोई सरोकार नहीं है । किन्तु सगुण ब्रह्म [भगवान] भक्तों का अनुरंजन करने केलिए नाना क्रीडायें करता है । भक्त उसकी महिमा का गान करता है । तद्द्वारा प्रभु का प्रेम प्राप्त करता है । भगवल्लीला में त्रिभुवन को पवित्र करने की क्षमता है[1] । श्रीमद् भागवत में भगवल्लीला का अनन्त माहात्म्य वर्णित है । दशमस्कन्ध का लक्ष्य ही कृष्ण लीला गान है[2] ।

बाललीला का मुख्य उद्देश्य भक्तों को दिव्य आनन्द में मग्न करना है । सभी श्रेणी के भक्त इससे अपार आनंद का अनुभव करते हैं । पर उसमें प्रमुख भाग लेते हैं कृष्ण के सखा गोपबालक । प्रगाढ प्रेमा भक्ति का उद्रेक करना है किशोर लीला का लक्ष्य । इसमें व्रज की गोपिकाओं का प्रमुख स्थान है । लीलाव्यापारों में कृष्ण और विष्णु का अभेदत्व प्रतिपादित होता है :- "कृष्णस्तु भगवान स्वयं"[3] वैष्णव सिद्धांत को अन्य साधना मार्गों से श्रेष्ठतर बताया गया है[4] ।

---

1. अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसा ऽऽप्लुतान् ।
   पर्यटामि तवोद्गायन् लीलां भुवनपावनीः ।। श्रीमद् भागवत 10-69-39
2. वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा
   मन्तर्बहिः पूरुष काल रूपैः ।
   प्रयच्छतो मृत्यु मुतामृतं च
   मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन ।। भागवत् 10-1-7
3. भागवत - 1-3-28 और 7-15-75
4. डॉ॰ विश्वनाथ शुक्ल हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव - पृ॰ 158॰

श्रीमद् भागवत में वर्णित गोपी कृष्ण प्रेम तथा कृष्ण की विविध लीलाओं ने मध्ययुगीन कृष्ण काव्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है ।

दशमस्कन्ध को हम भागवत के प्राण कह सकते हैं । इस स्कन्ध में ही सांगोपांग कृष्ण कथा वर्णित होती है । इसके पूर्वार्द्ध में कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा गमन और कंस वध तक की कथा आ जाती है । उत्तरार्द्ध में महाराजा कृष्ण के वैभव का विस्तार के साथ वर्णन है ।

भागवत के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध की कृष्ण लीलाओं को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं । प्रथम में अलौकिक लीलायें आती हैं और दूसरे में लौकिक लीलायें । अलौकिक लीलायें असुरों के वध से संबद्ध हैं । इनमें मुख्य हैं -
§1§ पूतनावध §भागवत 10-6§ §2§ शकटासुर वध §10-6§ §3§ तृणावर्त वध§10-6§
§4§ वत्सासुर वध §10-11§ §5§ बकासुरवध §10-11§ §6§ अघासुर वध §10-12§
§7§ धेनुकासुरवध §10-15§ §8§ प्रलम्बासुरवध §10-14§ §9§ गोवर्धन पूजा तथा इन्द्रमानमोचन §10-24-25§ §10§ वरुणालय से नन्द को छुड़ाना §10-22§
§11§ उखल बंधन और यमलार्जुन उद्धार §10-9,10§ §12§ ब्रह्मा द्वारा वत्सहरण और कृष्ण द्वारा उनका उद्धार §10-12§ §13§ कालिय दमन §10-16,17§ और §18§ दावानल पान लीला §10-17,18§ ।

लौकिक लीलाओं में चीरहरण §10-22§ और रास §10-29-33§ दो ही प्रसंग मुख्य हैं । ये दोनों आध्यात्मिक रूपक हैं । यही वे स्थल हैं जो कृष्ण कथा को साधारण कथावार्ता से ऊंचा उठा देते हैं । इन में व्यासदेव ने उच्चतर अध्यात्म भावों की व्यंजना की है । उसकी व्याख्या भी वहीं मिलती है ।

<u>कृष्ण का सौन्दर्य</u>

श्रीमद् भागवत का कृष्ण अनन्त सौन्दर्य के निधान हैं[1] ।

---

1. त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
   यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ।।

   भागवत 10-29-40

भागवत की "भीष्म स्तुति" में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का हृदयहारी चित्रण उपलब्ध है। भीष्म ने अपने प्राणत्याग के समय त्रिभुवन कमनीय, तमाल वृक्ष के समान श्याम वर्ण, सूर्य रश्मियों के समान तेजोवर्ण पीताम्बरधारी सुन्दर अलकावली से आवृत मुख कमलवाले श्रीकृष्ण का ध्यान किया था। गोपियाँ भी कृष्ण के रूप पर अपना सर्वस्व समर्पित करती है[1]।

अपनी योगमाया का आश्रय लेकर परब्रह्म ने मानव लीला के योग्य जो दिव्य विग्रह (कृष्ण रूप) धारण किया था, उसके सौन्दर्य से वे स्वयं ही विस्मित थे। सौन्दर्य का इससे अधिक सांकेतिक वर्णन सचमुच असंभव है। भक्त कवियों ने कृष्ण का वह चतुर्भुज विष्णु रूप तो ग्रहण किया ही है। किन्तु उन्होंने जिस वनमालाधारी, मोरमुकुटधारी, नटवरवेषधारी बाल और किशोर कृष्ण का विशेष कर चित्रण किया है उसका आधार दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में वर्णित गोपाल कृष्ण ही है[2]।

श्रीकृष्ण अपने सजल जलधर के समान श्याम वर्ण शरीर पर विद्युत की सी कांति वाला पीताम्बर धारण करते हैं। उनके गले में वैजयन्तीमाला है। कानों में कर्णिकार पुष्प।सिर पर मोर मुकुट। पीताम्बर के फेंटे में बांसुरी कसे, सींग और बेंत बगल में दबाए, बाएं हाथ में मक्खन दधि और ओदन का स्निग्ध कवल लिए, अंगुलियों में फल आदि दबाए, बाल कृष्ण शिशु सखाओं के साथ वन भोजन में भाग लेते हैं[3]। इस प्रकार के न जाने कितने मनोरम चित्र भागवत में विद्यमान है।

नूतन आम्र पल्लव मयूरपिच्छ और फूलों के गुच्छों से कृष्ण और बलराम अपने शरीर की श्रृंगार सज्जा करते थे। स्थल कमल और जल कमल की

---

1. श्रीमद् भागवत 1-9-33,34 और 10-21-7
2. वही - 10-11,12,13 और 14
3. बिभ्रद् वेणु जठरपटयोः श्रृङ्गवेत्रे च कक्षे
   वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।। भागवत - 10-13-11

मालायें पहनते थे । माथे पर कस्तूरी तिलक लगाते थे । पुष्पों के कर्णाभरण उन्हें विशेष शोभा प्रदान करते थे । संपूर्ण जगत् का सौन्दर्य सार में कृष्ण दिखाई पड़ता है ।

गोपिकाएं

"श्रीमद् भागवत् कृष्ण और गोपिकाओं के प्रेम को सबसे अधिक उदात्त रूप में बहुत ही विस्तृत भाव पटल पर चित्रित करता है[1] ।" वैष्णव सम्प्रदायों में आगे चलकर और भी सूक्ष्म "सहचरी भाव" आदि प्रतिष्ठित हुए किन्तु एक सामान्य प्रेम भावना केलिए गोपी ही प्रतिनिधि स्वरूपा है[2] । वास्तव में गोपी परम गोपनीय प्रेमधन का अक्षय भण्डार है । प्रेम की जितनी अवस्थाओं और रूपों की कल्पना की जा सकती है, उसका अधिष्ठान गोपी का विशाल हृदय है ।

गोपीकृष्ण प्रेम कृष्ण भक्ति साहित्य का मेरुदण्ड है । भक्ति सूत्रों में भी भक्ति का चरमोत्कर्ष व्रजयुवतियों में ही बताया गया है[3] । श्यामा और श्याम नित्य लीला विरत हैं । उनके निदिध्यास [Realisation] केलिए साधक को "गोपीभाव" धारण करना पड़ता है । तभी वह भक्ति का पूर्ण लाभ कर सकता है ।

भागवत के अनुसार गोपियाँ कृष्ण का प्रिय कार्य करने केलिए अवतरित देवांगनाएं हैं[4] । अतः कृष्ण और गोपियों का प्रेम जन्म जन्मान्तर से सिद्ध हो जाता है ।

---

1. डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन धर्म साधना [प्र॰सं॰] - पृ॰123
2. डॉ॰ विश्वनाथ शुक्ल - श्रीमद् भागवत का प्रभाव [प्र॰सं॰] - पृ॰173
3. नारद भक्ति सूत्र 21 तथा शाण्डिल्य भक्ति सूत्र 14
4. वासुदेव गृहे साक्षात् भगवान पुरुषः परः ।
   जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुर स्त्रियः ।। भागवत् 10-1-23

भागवत में कृष्ण प्रेम में मग्न गोपिकाओं के दो भेद बताए गए हैं :- वे विवाहिताएं जो कृष्ण की बांसुरी सुनकर पति और पुत्रों की परिचर्या छोड़कर कृष्ण के निकट पहुंचती हैं।[1] यहाँ कृष्ण उपपति या जार के रूप में प्रस्तुत हैं। किन्तु आध्यात्मिक अर्थ में गोपियों को जीवात्मा माना जाता है। ये परमात्मा रूप कृष्ण के नाद (काया) से प्रभावित होकर उनकी रासलीला में भाग लेने केलिए वृंदावन पहुंचती हैं।[2] इस प्रकार श्रीकृष्ण की यह रासलीला (मधुर लीला या प्रेम लीला) एक उच्च दार्शनिक धरातल पर स्थित है।

कृष्ण को कुब्जा के प्रिय के रूप में भी चित्रित किया गया है। कंसवधोपरान्त कृष्ण ने कुब्जा के घर जाकर उसकी इच्छा पूरी की।[3]

दूसरे प्रकार की गोपियाँ वे कुमारियाँ हैं जो कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने केलिए कात्यायनी देवी का पूजन करती हैं।[4] इन्होंने प्रारंभ से ही श्रीकृष्ण का कान्ता भाव से भजन किया था। कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य, वंशीवादन और उनकी मोहिनी चेष्टाओं के प्रति गोपियों की आसक्ति का मर्मस्पर्शी अंकन पुराणों में मिलता है।[5]

श्रीमद् भागवत की गोपियों में श्रीकृष्ण के प्रति मधुर दाम्पत्य भाव ही प्रमुख है। कभी कभी वात्सल्य का भी दर्शन होता है। यशोदा के अतिरिक्त कुछ अन्य सामान्य व्रज वनिताओं का श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव व्यक्त हुआ है। पर प्रमुखता मधुर भाव को ही प्राप्त है। गोपियाँ निरन्तर मधुर रस का आस्वादन करती रहती हैं। परवर्ती भक्ति शास्त्र मधुर रस को सर्वोच्च स्थान देता है। मधुर रस निरतिशय दिव्य आत्मानन्द है जिसका जड़ जगत से कोई

---

1. परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।
   शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् । भागवत - 10-29-6
2. एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
   रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः । भागवत - 10-33-17
3. भागवत - 10-48-3-10 प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
   रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ।। 10-48-10
4. भागवत - 10-22-35
5. हरिवंश पुराण - विष्णु पर्व - 20-19,20,21
   ब्रह्मवैवर्त पुराण - कृष्णजन्म खंड पूर्वार्द्ध 9-57-58,59
   भागवत् पुराण - 10-29-4 और 10-39-17

संबन्ध नहीं है[1]। इस रस का एकमात्र आलम्बन श्रीकृष्ण है और उनकी प्रियाएं व्रजकिशोरियाँ हैं[2]। इनमें माधुर्य का महोन्मेष होता रहता है। इनका हृदय सतत प्रणय तरंगों से आन्दोलित होता रहता है। भागवत के अनुसार नन्द व्रज की कुमारियों ने हेमन्त में कात्यायिनी देवी का पूजन करके उनसे वर याचना की थी कि नन्द कुमार कृष्ण को उनका पति बनाएं[3]। इससे सिद्ध है कि गोपिकाओं ने प्रारंभ से ही श्रीकृष्ण को कान्ता भाव से ही भजा। कान्तासक्ति में भक्ति के अन्य प्रकारों का बड़े ही सहज भाव से समावेश हो जाता है और भागवत की गोपियों में इन सबके उदाहरण प्राप्त होते हैं।

कृष्णलीला का आध्यात्मिक अर्थ

भागवत में प्रतिपादित कृष्ण लीलाएं आध्यात्मिक अर्थ की द्योतक हैं। उन सबके महान् लक्ष्य भी हैं। गोप-गोपिकायें पूर्वजन्म रूप धारी ऋषिमानव हैं। माखनचोरी, उलूखलबन्धन चीरहरण, वेणु वादन आदि कृष्ण के सभी आचरणों के आध्यात्मिक तथा गूढ़ अर्थ हैं। कल्पों तक तप: साधना करके ही देवताओं ने गोपी तन प्राप्त किया था। भगवान गोपियों से कहते हैं - "हे गोपियों तुम ने लोक परलोक के सारे बन्धनों को काटकर मुझ से निष्कपट प्रेम किया है। यदि मैं तुम में से प्रत्येक के लिए अलग अलग अनन्त काल तक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेम का बदला चुकाना चाहूं तो भी नहीं चुका सकता। मैं तुम्हारा ऋणी हूं और ऋणी ही रहूंगा[4]

---

1. विश्वनाथ शुक्ल - हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत् का प्रभाव पृ॰176
2. हरिभक्ति रसामृत सिन्धु, पश्चिम विभाग 5 लहरी - पृ॰426
3. भागवत् - 10-22-1-4
4. न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां
   स्वसाधु कृत्यं विबुधायुषापि व: ।
   या माभजन् दुर्जरगेह शृंखला:
   संवृश्च्य तद्व: प्रतियातु साधुना ।। भागवत - 10-32-22

जैसा कि अन्यत्र सूचित किया गया है कृष्ण की ओर प्रमुख रूप से दो प्रकार की दृष्टियाँ रखती थीं गोपिकायें । एक वात्सल्य मय और दूसरी प्रेम मय । इन दोनों भावों ने ही मध्ययुगीन कवियों को सर्वाधिक आकृष्ट किया है । इसलिए उनकी कविताओं में प्रेम और वात्सल्य रसिकता के साथ अभिव्यक्ति पाते हैं ।

वैष्णव धर्म के विकास में श्रीमद् भागवत का योगदान

समस्त भारतीय भाषाओं का मध्ययुगीन साहित्य वैष्णव भक्ति भावना से ओतप्रोत है । वैष्णव भक्ति आन्दोलन को देश व्यापी बनाने में श्रीमद् भागवत का सर्वाधिक योगदान रहा है।[1] भक्ति साहित्य में जो भावात्मक एकता दर्शित है वह अत्यंत आश्चर्यजनक है । इस एकता का प्रमुख माध्यम श्रीमद् भागवत ही रहा है । वैष्णव धर्म के विकास में ही नहीं देश की भावात्मक एकता के पोषण में भी भागवत् का महत्वपूर्ण स्थान है ।

विभिन्न वैष्णव संप्रदायों में समान रूप से समादृत है भागवत । इसने विपुल मात्रा में भक्ति साहित्य के निर्माण की प्रेरणा दी है । इस साहित्य के प्रचार के साथ वैष्णव धर्म का प्रचार भी होता रहा ।

श्रीमद् भागवत की लोकप्रियता और धार्मिक मान्यता का प्रमाण है उस पर लिखी गई अनेकानेक टीकाएं । प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में उसका अनुवाद भी हुआ है । अत: मध्ययुगीन वैष्णव काव्यों को श्रीमद् भागवत ने समान रूप से प्रभावित किया है।[2]

हम इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँच सकते हैं कि भारत वर्ष के पुराण साहित्य में श्रीमद्भागवत मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित है और हमारी भक्ति साधना में उसका महत्व निर्विवाद है ।

---

1. Srimad Bhagavata - The Scripture of Cult of devotion - Chandrasekhara Ayer - Prabuddha Bharata Vol.ix p.503

2. Trivedi Krishnaji Vedanta Kesari - The Bhagavata and Indian Culture - Vol.48 p.438-440

१.८ निष्कर्ष

विष्णु की उपासना बहुत प्राचीन और व्यापक है। विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। वैदिक साहित्य में विष्णु एक दिव्य महान सर्वव्यापी सत्ता के रूप में गृहीत हुआ है। वैदिक विष्णु क्रमशः वैष्णव धर्म के सर्वोच्च देवता के रूप में परिणत हो गया।

विष्णु के अवतारों की संख्या के संबंध में पुराणों में विभिन्न मत हैं। सामान्य रूप से प्रमुख, अवतारों की संख्या दस मानी जाती है। राम और कृष्ण विष्णु के अवतारों में सर्व प्रमुख हैं। वैष्णव धर्म में वैदिक तथा वेदेतर दोनों धाराओं का समन्वय मिलता है।

वैष्णवों के लिए पांचरात्र संहितायें वैदिक कल्पसूत्रों के समान हैं। वैष्णव भक्ति का पूर्ण विकास पुराणों में मिलता है। अधिकतर विद्वान भक्ति को किसी धर्म विशेष की देन मानना उचित नहीं समझते। वह संपूर्ण मानवता की देन है।

मध्ययुग में वैष्णव भक्ति के प्रचार करने का श्रेय आलवारों को प्राप्त है। आलवारों के बाद रामानुज, विष्णुस्वामी, वल्लभ, माध्व जैसे आचार्यों ने वैष्णव धर्म और भक्ति का प्रसार किया। उपासना क्षेत्र में समन्वय की भावना वैष्णव धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है।

प्रमुख वैष्णव संप्रदाय ये हैं :-

	संप्रदाय	प्रवर्तक
1.	श्री संप्रदाय	रामानुजाचार्य
2.	हंस संप्रदाय	निंबार्काचार्य
3.	ब्रह्म संप्रदाय	माध्वाचार्य
4.	रुद्र संप्रदाय	वल्लभाचार्य

इन में से माध्व तथा वल्लभ संप्रदाय में श्रीमद् भागवत प्रकरण ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है और गीता और उपनिषदों के समान उसे प्रामाणिक माना गया है ।

पुराण शब्द का सामान्य अर्थ है प्राचीन । पुराण नाम के ग्रन्थ बहुत हैं । परन्तु उनमें अठारह पुराण ही प्रमुख हैं । श्रीमद् भागवद् समस्त पुराणों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है । वैष्णव धर्म के प्रकरण ग्रन्थों में श्रीमद् भागवत का सर्वोच्च स्थान है । सूरसागर और कृष्णगाथा का आकर ग्रन्थ श्रीमद् भागवत है ।

भागवत का रचनाकाल ईसा की नवम शती मान सकता है । यह तमिलनाडु में कहीं लिखा गया है । भागवद् द्वादश स्कन्धों में विभक्त है । इसका प्रमुख प्रतिपाद्य ब्रह्म अथवा भगवान है । इसके निर्माण का एक मात्र प्रयोजन कैवल्य या मोक्ष है । दशम स्कन्ध कृष्ण भक्त कवियों का प्रधान उपजीव्य रहा है । विभिन्न भारतीय भाषाओं के कृष्णकाव्य का उत्स भी भागवद् है ।

भागवद् भक्ति का प्रतिपादक है । यद्यपि उसका दार्शनिक झुकाव यत्र तत्र अद्वैत की ओर भी लक्षित होता है पर उसमें सांख्य का बहुत बड़ा महत्व दिया जाता है । सांख्य द्वैतवादी है अतएव भक्ति का समर्थक भी है । भागवद् के अनुसार विष्णु ही भक्तों का एक मात्र प्राप्य है ।

भागवत के अनुसार भक्ति के नव प्रकार हैं - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन । भक्ति के दो और भेद हैं - वैधी और प्रेमलक्षणा ।

भागवत में भगवन्नाम की महिमा का विस्तृत वर्णन है । गुरु भगवत्स्वरूप है । मध्यकालीन भारतीय साहित्य में भाषा भेद के बिना सर्वत्र गुरु महिमा स्वीकृत की जाती है । यह भागवत का ही सत्प्रभाव है । वैराग्य भक्ति पथ के पथिक केलिए परम आवश्यक है ।

कृष्णलीला वर्णन भागवत का सर्वोच्च लक्ष्य है । भागवत का कृष्ण अनन्त सौन्दर्य के निधान हैं । गोपी-कृष्ण प्रेम कृष्ण भक्ति साहित्य का मेरुदण्ड है ।

भक्ति साहित्य में जो भावात्मक एकता वर्णित है वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है । इस एकता का प्रमुख माध्यम श्रीमद् भागवत ही रहा है ।

****

अध्याय - दो

वैष्णव काव्य हिन्दी और मलयालम में

वैष्णव काव्य पूर्व पीठिका

धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओं में चलता है[1]। इन तीनों मार्गों में भक्ति का मार्ग सरल और साधारण जनता की संपत्ति होती है भक्ति का द्वार सब केलिए खुला है, समान रूप से । उसके द्वार पर न पंडित-मूर्ख का भेद है, और न ऊंच नीच का विचार । ज्ञान और कर्म केलिए अधिकारी भेद निर्धारित है । पर भक्ति केलिए सभी अधिकारी हैं[2] ।

---

1. पं. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास (पन्द्रहवां सं.) - पृ.63
2. डॉ. राधा कृष्णन - इण्डियन फिलासफी - वाल्युम-2 (1951) - पृ.706

दक्षिण के आलवार भक्त और उनकी रचनाएं

मध्यकालीन भक्ति साहित्य का प्रेरणा स्रोत आलवारों की रचनाएं हैं। ये दिव्य प्रबन्धम नाम से विख्यात हैं। ये ही भक्ति आन्दोलन को दिशा देनेवाले ग्रन्थ हैं। आलवारों की भक्ति का विवेचन हो चुका है। इनकी संख्या बारह हैं। इनका समय दो सौ ईस्वी से नौ सौ ईस्वी तक माना जाता है[1]।

वैष्णव आचार्य

आलवारों के उपरांत दसवीं शताब्दी से आचार्यों का युग आरंभ होता है। आधुनिक श्री वैष्णव धर्म के निर्माता ये आचार्य हैं[2]। आलवारों की भक्ति उस पावन-सलिला सरिता की नैसर्गिक धारा के समान है, जो स्वयं उद्वेलित होकर प्रखर गति से बहती जाती है और जो कुछ सामने आता है उसे तुरन्त बहाकर अलग फेंक देती है। आलवारों के जीवन का एकमात्र आधार थी प्रपत्ति, विशुद्ध भक्ति, परन्तु आचार्यों के जीवन का एकमात्र सार था भक्ति और कर्म का मंजुल समन्वय[3]। आलवारों में हृदय पक्ष की प्रबलता थी, तो आचार्यों में बुद्धि पक्ष की दृढ़ता थी[4]।

नाथ मुनि

इनमें नाथ मुनि सर्वप्रथम आचार्य माने जाते हैं[5]। सन् 824 से 924 तक नाथमुनि विद्यमान थे[6]। इनके पूर्वज उत्तर भारत से आये थे[7]। ये भागवत धर्मावलंबी वैष्णव थे।

---

1. J.N. Farquhar - An Outline of the Religious literature of India p.189
2. The Acharyas were thus the makers of modern Srivaishnavism - its society, rituals practices and ideals-The Cultural Heritage of India,Vol.II p.81
   बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ.200
3. बलदेव उपाध्याय - दक्षिण के संप्रदाय - पृ.186
4. वही - पृ.186
5. डॉ. बदरीनारायण श्रीवास्तव - रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव - पृ.15
6. i. Cultural Heritage of India - Vol.2, p.81
   ii. S.N. Dasgupta - A History of Indian Philosophy, Vol.III, p.84
7. डॉ. नरहरि चिन्तामणि जोगळेकर - हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन - पृ.92

आलवारों की रचनाओं का संग्रह नाथमुनि ने किया । विशिष्टाद्वैत का प्रथम सैद्धान्तिक ग्रन्थ "योग रहस्य" भी इन्हीं की रचना है । नाथमुनि ने वैष्णव मन्दिरों में प्रबन्धम के गायन की व्यवस्था की । यह उपासना के क्षेत्र में एकदम महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी घटना थी[1] ।

यमुनाचार्य

नाथमुनि के पश्चात् पुण्डरीकाक्ष एवं राममिश्र नाम से दो आचार्य हुए । राममिश्र के बाद यामुनाचार्य का आविर्भाव हुआ । ये नाथ मुनि के पौत्र थे और उन्हीं के समान अध्यात्म शास्त्र के विद्वान थे । यामुनाचार्य का जीवनकाल [illegible] 918 ई० से 1038 तक माना जाता है[2] । आधुनिक वैष्णव धर्म का इतिहास यामुनाचार्य से शुरू होता है[3] ।

यामुनाचार्य ने ही श्री० संप्रदाय की नींव डाली । उसके सिद्धान्तों का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया[4] । इनका दार्शनिक सिद्धांत विशिष्टाद्वैत था । प्राचीन आलवारों के काव्यों के अध्ययन, प्रचार एवं प्रसार के अतिरिक्त इन्होंने नवीन ग्रन्थों का प्रणयन भी किया । इनके मुख्य ग्रन्थ हैं - गीतार्थ संग्रह, श्री चतु: श्लोकी, सिद्धित्रय, आगम, महापुरुष निर्णय, और स्तोत्र रत्न[5] ।

---

1. This innovation effected silent revolution in temple worship, as it raised the status of the prabhanda to the level of the Veda and liberalised the meaning of the revelation -
   - P.N. Srinivasacharya - The Philosophy of Visistadvaita, p.511
2. Dr.S.N. Dasgupta - History of Indian Philosophy, Vol.III (Second Edn.) p.97
3. Thus the history of modern Vaisnavism should all practical purposes begin with Yamunacarya who flourished during the latter part of the 10th and earlier part of the 11th century.
   Dasgupta - History of Indian Philosophy Vol.III p.139
4. बलदेव उपाध्याय - भागवत धर्म - पृ०200-203
5. Dasgupta - History of Indian Philosophy Vol.III p.98

यामुनाचार्य ने श्री॰ रामानुज के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था ।

रामानुजाचार्य - [सन् 1037-1137][1]

रामानुजाचार्य वैष्णव आचार्यों में सबसे प्रमुख हैं । ये यादवप्रकाश के शिष्य थे और यामुनाचार्य के उत्तराधिकारी । इन्होंने आलवारों के दिव्य प्रबन्धम का गहरा अध्ययन किया । अपने जीवन के अधिकतर समय श्रीरंगम में रहते थे[2] । रामानुज ने भारत के प्रायः सभी तीर्थस्थानों की यात्रा की ।

रामानुज की रचनायें हैं - दिव्य प्रबन्धम की टीका, ब्रह्मसूत्र पर भाष्य, विष्णुसहस्रनाम भाष्य, गीता भाष्य, वेदान्त सार, वेदार्थ संग्रह, वेदान्त प्रदीप आदि[3] ।

रामानुज ने ही वैष्णव संप्रदाय को संगठित किया और प्रबन्धम को पंचम वेद का स्थान दिलाया । इन्होंने शंकर के मायावाद का खंडन किया । अनेक मन्दिरों की स्थापना की । पंचरात्र आगम के अध्ययन की व्यवस्था भी की[4] ।

---

1. i. With out entering into a controversy on the subject it can be assumed that Ramanuja was born about 1037 and died about 1137 - The Cultural Heritage of India - Vol.II The Historical Evolution of Sri Vaishnavism in South India - V.Rangacharya - p.86
   ii. L.N. Puri - A Study of Indian History (1971) p.131
   iii. Benjamin Walker - Hindu World (An Encyclopaedic Survey of Hinduism) Vol.2, p.285
2. i. S. Dasgupta - History of Indian Philosophy Vol.III p.101-1
   ii. बलदेव उपाध्याय - भागवत् संप्रदाय - पृ॰204-205
3. S. Dasgupta - History of Indian Philosophy, Vol.III p.103
4. बलदेव उपाध्याय - भागवत् - पृ॰205-209

रामानुज की भक्तिभावना

रामानुज के अनुसार ज्ञान नहीं भक्ति या ईश्वर प्रेम ही मुक्ति का मार्ग है[1]। इनके प्रयत्नों से दक्षिण में वैष्णव मत की काफी वृद्धि तथा प्रचार प्रसार हुआ।

रामानुज ने आलवार भक्तों की उदार धार्मिक नीति को अपनाया। उनके शिष्यों में सभी जाति के व्यक्ति थे। कबीर, तुलसी, रामानंद जैसे भक्त एक प्रकार से इसी वैष्णव संप्रदाय की ही उपज हैं।

रामानुज द्वारा प्रतिपादित भक्ति की लहर में सारा भारतवर्ष आप्लावित हुआ। वैष्णव भक्ति आन्दोलन के इतिहास में रामानुज का स्थान अनुपम है। वैष्णव मन्दिरों में रामानुज की पूजा एक अवतार के रूप में होती है[2]।

रामानुज के शिष्य

इनके शिष्यों में 74 मुख्य थे जिनमें प्रधान हैं - कुरेश, दाशरथी, यज्ञमूर्ति, यादवप्रकाश, गोविन्द आदि[3]। रामानुज की शिष्य परंपरा देश में बराबर फैलती गई और जनता भक्ति मार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। इन सबके सम्मिलित प्रयत्न के फलस्वरूप वैष्णव संप्रदाय देश के कोने कोने में व्याप्त हो गया।

रामानुज के दार्शनिक सिद्धांत

रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से सगुण भक्ति का निरूपण किया।

---

1. Faith or the Love of God, not knowledge is the means of salvation (moksha) or Union with God. B.N. Puri-A Study of Indian History p.131,132
2. डॉ॰ के॰ ॰ नीलकंठ शास्त्री - दक्षिण भारत का इतिहास/अनुवादक - डॉ॰वीरेन्द्रवर्मा-पृ॰440
3. C.R. Shrinivasa Aiyergar - The life and teachings of Sree Ramanujacharya p.297,298 S.Dasgupta-History of Indian Philosophy Vol.III p.109

उनके विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत के सारे प्राणी हैं जो उसीसे उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं । अतः इन जीवों केलिए उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्य प्राप्त करने का यत्न करें । रामानुजाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन डॉ॰ राधाकृष्णन ने इस प्रकार किया है[1] ।

ईसा की 15 वीं शती में मध्यदेश में रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में स्वामी रामानंद आविर्भूत हुए जिन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर ज़ोर दिया और एक बड़ा भारी संप्रदाय खड़ा किया । प्रायः उसी समय वल्लभाचार्य ने प्रेममूर्ति कृष्ण को लेकर जनता को रसमग्न किया । इस प्रकार रामोपासक और कृष्णोपासक भक्तों की परंपरायें चलीं जिनमें आगे चलकर हिन्दी काव्य को प्रौढता पर पहुँचानेवाले जगमगाते रत्नों का विकास हुआ । इन भक्तों ने ब्रह्म के 'सत् और आनन्द' स्वरूप का साक्षात्कार राम और कृष्ण के रूप में इस बाह्य जगत के व्यक्त क्षेत्र में किया[2] । इस प्रकार भक्ति सरिता की दो धाराएं प्रवाहित हुईं - एक पूर्ण रसाप्लावित श्याममयी कालिन्दी के रूप में, द्वितीय शिवं सत्यं समन्वित राम गंगा के रूप में । इन दोनों धाराओं ने भक्ति के दोनों पुलिनों को रसमय ही नहीं किया अपितु साहित्य भंडार की भी विशेष वृद्धि की ।

रामानन्द

मध्य युग के धार्मिक इतिहास में रामानन्द एक विभूति थे[3] । आचार्य रामानुज की शिष्य परंपरा में उत्पन्न महात्मा राघवाचार्य के शिष्य थे रामानन्द[4]

---

1. Dr. Radhakrishnan - Indian Philosophy - Vol.2, p.682-712
2. पं॰ रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास [पन्द्रहवाँ सं॰] - पृ॰65
3. रामानन्द की हिन्दी रचनायें - प्रधान संपादक - हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ॰1
4. शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰114

   मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ॰382

वे मध्ययुग के प्रसिद्ध वैष्णव सुधारक थे । अपने उदार दृष्टिकोण के कारण उन्होंने भक्ति का द्वार ब्राह्मण शूद्र, सबल-अबल, कुलीन-अकुलीन, पुरुष-स्त्री सभी केलिए उन्मुक्त कर दिया[1]। उन्होंने ही भक्ति को अति विपुल एवं जटिल व्यावहारिक क्षेत्र में पनपने का अवसर प्रदान किया । रामानुज का उपदेश था, - किसी व्यक्ति से उसकी जाति की पूछता मत करो । जो भगवान की आराधना करता है, वह भगवान का अपना ही है[2]। उनके शिष्यों में कबीर जुलाहा, धना जाट, सेन नाई, पीपा क्षत्रिय और रैदास चमार थे । सुरसुरी और पद्मावती नामक दो महिलाएं भी उनके शिष्यों में थीं । स्वामी रामानन्द ने ब्राह्मण और शूद्र के भेद को ही नहीं, हिन्दू और मुसलमान के भेद को भी मिटा दिया[3]। उनकी समत्व बुद्धि हिन्दुत्व की रक्षा केलिए अमोघ वरदान सिद्ध हुई ।

उनका जीवनकाल कुछ विद्वान[4] तेरहवीं सदी मानते हैं और कुछ पन्द्रहवीं[5]।

रामानन्द और हिन्दी

हिन्दी भाषा के विकास में रामानन्द कायोगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

1· डॉ· बदरीनारायण श्रीवास्तव - रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव - पृ·1
डॉ·अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन कृत हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास - अनुवादक किशोरीलाल गुप्त - पृ·81

2· 'Let no man' he says 'ask a man's caste or sect. Who ever adores God is God's own - S.Radhakrishnan - Indian Philosophy, vol.II p.709

3· डॉ· मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ·386 हजारी प्रसाद द्विवेदी - रामानन्द की रचनाएँ -पृ·1

4· Benjamin Walker - Hindu World (An Encyclopaedic Survey of Hinduism) - Vol.2, p.284

5· भण्डारकर - वैष्णविज़्म शैविज़्म आदि - पृ·357 और दिनाहम्ध इण्टरनेशनल कांग्रेस आफ ओरियन्टलिस्ट्स भाग-1, पृ·423
परशुराम चतुर्वेदी - उत्तरी भारत की संत परंपरा - पृ·222
डॉ·पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल - हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय - पृ·41
डॉ·रामकुमारवर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-पृ·300-301

5· जे·एन·फर्कुहर-जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल - पृ·182-93
शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ·117

वे सदाचार और उदारता की प्रतिमूर्ति थे । अपनी इस उदारता के कारण ही, देवभाषा के प्रकांड पंडित होते हुए भी उन्होंने लोक भाषा को अपना माध्यम बनाया[1] । यह एकदम क्रांतिकारी कदम है । रामानन्द का महत्व इस दृष्टि से और भी बढ जाता है कि उनसे प्रेरणा पाकर उनके शिष्यों ने हिन्दी भाषा को ही अपने भाव प्रकाशन का माध्यम स्वीकार किया । फलस्वरूप उत्तर भारत में एक अद्भुत जनजागृति आ गई[2] ।

उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का आरंभ रामानन्द से ही हुआ । उनके पहले भी यह प्रवाह था फिर भी उसे जनता के निकट लाने का कार्य रामानन्द ने किया[3] ।

क्या रामानंद दाक्षिणात्य थे ?

विद्वानों में बहुत दिनों तक यह प्रबल संकल्प रहा कि स्वामी रामानंद दक्षिण से आये थे । उसका आधार सम्भवतः कबीर पंथियों का यह दोहा है :-

भक्ति द्राविड उपजी, लाये रामानंद ।
परगट कियो कबीर ने सप्तदीप नौखंड ।।

---

1. रामानन्द की हिन्दी रचनायें - प्रधान संपादक हजारीप्रसाद द्विवेदी - पृ.50
   रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ.478
2. बदरी नारायण श्रीवास्तव - रामानन्द संप्रदाय - पृ.1
3. The founder of this great 'Bhakti movement in Northern India' was Ramananda. He was not a founder in the sense that he started the movement - the work had already begun before he was born. But from his time onward we can trace an uninterrupted flow of this stream thought through out the Indian middle ages -
   The Mystics of Northern India During the Middle ages - Kshitimohan Sen Shastri - p.249

फर्कुहर ने रामभक्त संप्रदाय की रामोपासना को दक्षिण प्रांत की रामोपासना का विकास अनुमान करते हुए कहा है कि रामानन्द दक्षिण से रामोपासना लेकर आए थे और उन्होंने ही उत्तर भारत में उसका प्रचार किया[1]। वे फिर लिखते हैं - उनका सम्बन्ध दक्षिण के किसी पुरातन रामोपासक अद्वैत सम्प्रदाय से था जो बाद में श्री· वैष्णवों में अन्तर्भुक्त हो गया और वे ही दक्षिण से अगस्त्य संहिता और अध्यात्म रामायण जैसे ग्रन्थ लाए[2]। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तर भारत में रामोपासना के प्रसार का श्रेय रामानन्द को ही प्राप्त होता है। पन्द्रहवीं शताब्दी रामानन्द की शताब्दी कही जा सकती है।

रामानन्द की रचनायें

रामानन्द के नाम पर अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं। लेकिन अधिकांश अप्रामाणिक हैं। "रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव" में डॉ· बदरीनारायण श्रीवास्तव ने 17 ग्रन्थों का नाम दिया है[3]। लेकिन केवल दो ही प्रामाणिक माने जाते हैं - श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर, श्री रामार्चन पद्धति[4]। रामानन्द संप्रदाय में इन दोनों ग्रन्थों की मान्यता है[5]।

1· We have already seen that a sect which found release in Rama alone had been long in existence, and that the literature tends to indicate the South rather than the north as its home. If now we suppose that this Ramite community lived in the Tamil country along the Sri. Vaishnavas and that Ramananda would then come to the north with his doctrine of salvation in Rama along and with his Rama mantra.

J.N. Farquhar - An Outline of the Religious Literature of India, p.324

2· J.N. Farquhar - An Outline of the Religious Literature of India, p.256

3· डॉ· बदरीनारायण श्रीवास्तव - रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव - पृ·100

4· रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ·117

5· हजारी प्रसाद द्विवेदी - रामानन्द की हिन्दी रचनायें - पृ·11

वैष्णव भक्ति के आचार्य हैं रामानुज पर राम भक्ति के आचार्य रामानन्द ही माने जाते हैं[1]। समस्त वैष्णव आन्दोलन में जो कुछ सुधार भावना पाई जाती है उसका प्रमुख कारण रामानन्द की उदार दृष्टि ही है[2]।

उपासना पद्धति

रामानन्द ने उपासना केलिए वैकुंठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करनेवाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूल मन्त्र हुआ राम नाम[3]। इस नाम ने जनता के जीवन में नई शक्ति और स्फूर्ति का संचार किया। उनकी प्रतिभा को पूर्ण रूप से विकसित किया। ऐसा कोई कवि नहीं जिसने किसी न किसी ~~न किसी~~ रूप में राम मन्त्र से प्रेरणा नहीं ग्रहण की है।। विभिन्न आचार्यों के अनुगमन करने वाले लोगों में राम नाम ने सामरस्य स्थापित किया। इसके उज्ज्वल उदाहरण है गोस्वामी तुलसीदास और संत कबीर। दोनों राम नाम के उपासक हैं[4]।

राम काव्य

तुलसीदास और उनकी रचनाएं

स्वामी रामानंद की शिष्य परंपरा ने देश के बड़े भाग में रामभक्ति का संचारकर दिया। भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे। पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्वल प्रकाश विक्रम की 17 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की वाणी में लक्षित हुआ।

---

1. डॉ॰ बदरीनारायण श्रीवास्तव - रामानन्द संप्रदाय - पृ.85
2. रामानन्द संप्रदाय - पृ.79
3. पं॰ रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.116
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य - पृ.128

उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया । सारांश यह है कि "रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यक संदर्भ इन्हीं भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरंभ हुआ[1] ।

रामकाव्य के सबसे प्रधान कवि तुलसीदास है । इन्होंने अपनी प्रतिभा के प्रकाश से रामकाव्य को ही नहीं वरन् समस्त हिन्दी साहित्य को आलोकित कर दिया । हिन्दी साहित्य के इतिहास में तुलसी ही प्रथम कवि है जिन्होंने दोहा और चौपाई में रामकथा को पहली बार प्रस्तुत किया[2] । हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में तुलसी बुद्धदेव के बाद सबसे बड़े लोकनायक हैं ।

तुलसी के काव्य है रामचरितमानस, रामललानहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा, कवित्त रामायण, दोहावली, गीतावली, कृष्णगीतावली और विनय पत्रिका[3] ।

इनमें सबसे प्रसिद्ध रामचरितमानस है जिसमें राम की कथा का वर्णन है । यह हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है[4] ।

तुलसीदास के आदर्श भारतीय जनता की रुचि के अनुकूल थे । इसलिए उनकी रचनाएं विशेषकर मानस भारतीय जनता केलिए वेद, पुराण, उपनिषद और गीता बन गई । दुर्दशाग्रस्त पतनोन्मुख हिन्दू समाज तुलसी के काव्य का अवलम्ब लेकर ही कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो सका । यह एक कवि ही हिन्दी को एक प्रौढ़ साहित्यक भाषा सिद्ध करने केलिए काफी है[5] ।

---

1. रामचन्द्रशुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास [चन्द्रहर्ता सं.] - पृ.121
2. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ.336
3. लाला सीताराम - सेलेक्शन्स फ्राम हिन्दी लिट्रेचर - पुस्तक-3 - पृ.8-19
   रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.142
4. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ.423
5. रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.140

रामानन्द की शिष्य परंपरा में स्वामी अग्रदास, नाभादास जैसे औरभी कवि हुए हैं जिन्होंने रामचरित गायन के ज़रिए अपना तथा समाज का जीवन चरितार्थ बनाया ।

कृष्णकाव्य

जैसा कि हमने ऊपर प्रतिपादित किया, विष्णु के दो प्रमुख अवतार राम और कृष्ण को केन्द्र बना करके ही वैष्णव धर्म और भक्ति पद्धति का विकास हुआ । रामचरित ने जनमानस को कितना आन्दोलित किया, साहित्य को कितना सम्पन्न किया - इसका भी दिग्दर्शन हो चुका है । अब हम कृष्ण के दिव्य व्यक्तित्व पर आधारित धार्मिक साहित्यिक आन्दोलनों का अवलोकन करेंगे ।

रामानुज परंपरा के स्वामी रामानन्द ने विष्णु और नारायण का रूपान्तर कर राम भक्ति का प्रचार किया । निम्बार्क, मध्व और विष्णु स्वामी के सिद्धांतों और उपासना पद्धतियों के आधार पर उनके अनुयायी चैतन्य और वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया[1] ।

जिस प्रकार रामोपासना के प्रसार में रामानन्द और उनके सिद्धान्त उत्प्रेरक रहे हैं उसीप्रकार कृष्णोपासना और उसके सैद्धान्तिक प्रसार में उपर्युक्त आचार्यों के व्यक्तित्व का योगदान है । ये दर्शन तथा भक्ति दोनों के क्षेत्र में कार्य करते रहे हैं । सिद्धान्त की दृष्टि से हम इनको तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं - द्वैताद्वैतवाद, द्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद इनके क्रमशः उन्नायक हैं निंबार्काचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य ।

---

1. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
[पांचवां सं०] - पृ०498

द्वैताद्वैतवाद और निम्बार्काचार्य

निम्बार्क संप्रदाय को "सनक सम्प्रदाय" भी कहते है । समस्त वैष्णव संप्रदायों के परम आचार्य भगवान श्री कृष्ण स्वयं है[1] । निंबार्क संप्रदाय के उपदेष्टा भी श्री हंस भगवान माने जाते हैं[2] ।

श्री निंबार्क दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे[3] । उनका असली नाम नाम नियमानन्द था[4] । निंबार्क संप्रदाय के भक्त आचार्य का आविर्भाव काल द्वापर युग मानते हैं । उनके अनुसार श्रीकृष्ण के समकालीन थे । यह मान्यता पौराणिक है । आधुनिक शोधकर्ताओं ने [illegible] उनका समय 12 वीं 13 वीं शताब्दी माना है[5] । वैष्णव संप्रदायों में निंबार्क संप्रदाय प्राचीनतम माना जाता है[6] ।

आचार्य निंबार्क राधा कृष्णात्मक युगल उपासना के आदि प्रवर्तक के रूप में स्वीकृत है[7] । निम्बार्क सम्प्रदाय में जयदेव हुए जिन्होंने राधा और कृष्ण की प्रेम-केलि को लेकर गीत गोविन्द की रचना की[8] । मैथिल कोकिल विद्यापति ने जयदेव का अनुगमन करते हुए राधाकृष्ण प्रेम को अपने गीतों में अमर बना लिया ।

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पंचम भाग
   संकलनकर्ता डॉ॰ दीनदयालु गुप्त - निम्बार्क संप्रदाय-डॉ॰विजयेन्द्र स्नातक - पृ॰113
2. S. Dasgupta - A History of Indian Philosophy-Vol.III p.406
3. आचार्य ललित कृष्णा स्वामी - श्री निंबार्क वेदान्त [प॰सं॰] - पृ॰53
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - पृ॰114
5. [1] भांडारकर - वैष्णविज़्म, शैविज़्म आदि - पृ॰87
   [2] हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पृ॰115 ,
   [3] बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ॰338,339
6. भागवत संप्रदाय - पृ॰316
7. नागरी प्रचारिणी पत्रिका [सं॰2027 वि॰] वर्ष-75 - अंक-4 - पृ॰421
   [निंबार्क संप्रदाय एक नई दृष्टि - पी॰ जयरामन]

निंबार्क की रचनाएं

निंबार्क के नाम पर आठ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं[1] -

1. वेदान्त पारिजात सौरभ
2. दशश्लोकी
3. श्रीकृष्ण स्तवराज
4. मंत्र रहस्य षोडशी
5. प्रपन्न कल्पवल्ली
6. गीता वाक्यार्थ
7. प्रपत्ति चिंतामणि और
8. सदाचार प्रकाश

दार्शनिक पक्ष

निंबार्क का दार्शनिक मत भेदाभेदवाद है । इसे ही द्वैताद्वैतवाद कहा जाता है[2] । वेदान्त पारिजात सौरभ में भेदाभेद मत का प्रतिपादन हुआ है । निंबार्क के अनुसार ब्रह्म चिदानंद रूप अद्वैत सत्पदार्थ है[3] । अपने चिद् अंश के द्वारा ही ब्रह्म स्वरूपस्थ आनन्द का भोग करता है[4] । यही चिद् पर ब्रह्म की शक्ति है जिसके द्वारा वह सृजन करता है[5] । इस मत में आराध्यदेव है सर्वेश्वर कृष्ण तथा उनकी आह्लादिनी शक्ति है श्री राधा[6] ।

श्रुतियाँ तथा ब्रह्म सूत्र का प्रतिपाद्य निंबार्क के अनुसार द्वैताद्वैत मत है[7] । निंबार्क मत समस्त वैष्णव धर्म का प्रतिनिधि संप्रदाय है[8] । श्री॰भट्टजी, श्री हरिव्यासदेव, श्री परशुराम देव, श्रीघनानंद, श्री रसिक गोविन्द, श्री ग्वाल जैसे प्रसिद्ध भक्त कवि इसके अंतर्गत आते हैं ।

---

1. बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ॰318-319
2. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पृ॰116
3. S. Dasgupta - A History of Indian Philosophy, vol.III p.405
4. Ibid p.406
5. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पृ॰117
6. बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ॰344
7. आचार्य ललित कृष्ण गोस्वामी - श्री निंबार्क वेदान्त - पृ॰56
8. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पृ॰121

माध्वमत या द्वैतवादी संप्रदाय

माध्वमत को ब्रह्म संप्रदाय भी कहते हैं । यह द्वैत का समर्थक है और अद्वैत का कठोर विरोधी । इसके संस्थापक मध्वाचार्य हैं । तेरहवीं शताब्दी में ये जीवित थे[1] ।

माध्वमत का व्यापक प्रचार गुजरात में हुआ । बहुत से लोग इसके अनुयायी हुए[2] । मध्वाचार्य का कथन है कि ब्रह्मसूत्र, श्रीमद् भागवत, गीता तथा उपनिषदों में द्वैतमत का ही प्रतिपादन है ।

माध्वमत का व्यावहारिक पक्ष-भक्ति

माध्वमत व्यवहार पक्ष में भक्तिवादी तथा आध्यात्म पक्ष में भेदवादी या द्वैतवादी है । इस मत के आचार्यों का प्रधान लक्ष्य था मायावाद का खंडन[3] । माध्वमत के अनुसार ब्रह्म और जीव का भेद स्वाभाविक और नित्य है । मोक्ष में भी दोनों में अभेद नहीं हो सकता[4] । मुक्ति का सबसे उपयुक्त साधन भगवान का साक्षात्कार है और साक्षात्कार के कुछ उपाय हैं वैराग्य, शम, शरणागति और भक्ति । मध्व उपनिषदों में उपलब्ध अभेद परक वाक्यों की संगति भिन्न प्रकार से लगाये हैं[5] ।

मध्वाचार्य ने तीस ग्रन्थों की रचना की है । इनमें गीता भाष्य ब्रह्मसूत्र भाष्य, अनुभाष्य, गीता तात्पर्य निर्णय, भागवत तात्पर्य निर्णय, महाभारत तात्पर्य निर्णय आदि मुख्य हैं[6] ।

---

1. बदरी नारायण श्रीवास्तव-रामानन्द संप्रदाय - पृ.23
   धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य - द्वितीय भाग - पृ.341
   रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.65
   A History of Indian Philosophy, Vol.IV p.51
2. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.65
3. बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ.221
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - पंचम भाग
   चैतन्य संप्रदाय - डॉ. विजयेन्द्र स्नातक - पृ.141
5. A History of Indian Philosophy, Vol.IV p.82
6. Ibid p.57-90

मध्वाचार्य के शिष्यों में पंडित त्रिविक्रम बड़े ही विख्यात हुए । इन्हीं के पुत्र नारायण पंडित ने मध्व विजय तथा मणिमंजरी की रचना की । ये दोनों ग्रन्थ मध्वाचार्य के जीवन विषयक विश्रुत ग्रन्थ हैं ।

आचार्य वल्लभ और शुद्धाद्वैत संप्रदाय : -

शुद्धाद्वैती वैष्णव संप्रदाय ने विशेषतः राजस्थान गुजरात और ब्रज भूमि को कृष्ण भक्ति की पावन धारा से आप्लावित किया । इस संप्रदाय को "रुद्र संप्रदाय" और "विष्णु स्वामी संप्रदाय" भी कहते हैं[1]। विष्णु स्वामी के सम्बन्ध में डॉ॰ दीनदयालु गुप्त लिखते है, "युधिष्ठिर राज्यकाल के पश्चात् एक क्षत्रिय राजा द्राविड देश में राज्य करता था । उसका एक ब्राह्मण मंत्री था । इसी ब्राह्मण मंत्री का एक बुद्धिमान, तेजस्वी तथा भगवद् भक्ति परायण पुत्र विष्णु स्वामी था, जिसने वेद, उपनिषद, स्मृति, वेदान्त, योग आदि समस्त ज्ञान साहित्य का अध्ययन करने के बाद आचार्य की पदवी पाई । भगवान कृष्ण के साक्षात्कार से उसे ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान मिला । विष्णु स्वामी ने बहुत समय तक भक्ति मार्ग का प्रचार किया, और भक्ति को मुक्ति से भी अधिक महत्ता प्रदान की । इन्होंने वेद, तंत्रोक्त-विधान, वेदांत, सांख्य योग, वर्णाश्रम धर्मादि संपूर्ण कर्तव्य भक्ति के ही साधन बताये हैं[2]।

फर्कुहर ने विष्णुस्वामी के दो मठों की चर्चा की है जिनमें से एक कांकरोली में और दूसरा कामवन में है[3]। डॉ॰ भांडारकर के अनुसार विष्णु स्वामी के ही वेदांत मत का अनुसरण वल्लभाचार्य ने किया[4]। अपने इस मत के पुष्ट्यर्थ वे श्रीनिवासाचार्य के "सर्वाचार्य मत संग्रह" का आधार देते हैं[5]। विष्णुस्वामी का समय भंडारकर के अनुसार 13 वीं शताब्दी है[6]।

---

1. बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ॰365
   मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ॰370
2. डॉ॰दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰41
3. Farquhar - An Outline of the Religious Literature of India p.3
4. डॉ॰ भांडारकर - वैष्णविज्म, शैविज्म और अन्य संप्रदाय - पृ॰109,110
5. वही - पृ॰110
   वही - पृ॰ 77

शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक यद्यपि वल्लभाचार्य ही हैं । पर आचार्य ने अपने ग्रन्थों में बड़ी विनम्रता से यह स्वीकार किया है कि उनका यह दार्शनिक मत आम्नाय मूलक होते हुए भी विष्णु स्वामी और अन्य पूर्वाचार्यों द्वारा संचालित है[1]

संप्रदाय के अनुयायियों में कुछ लोग विष्णु स्वामी को प्रवर्तक स्वीकार नहीं करते । वल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट संभवत: विष्णु स्वामी संप्रदाय के अनुयायी थे । इस कारण पुत्र का अपने पिता के मत का अपनी पूर्वावस्था में अनुवर्ती हो जाना और पीछे निजी मत निश्चित कर लेना असंभव तथा आश्चर्य जनक नहीं हो सकता[2] ।

पुष्टि मार्ग

विक्रम की 16 वीं शताब्दी में विष्णुस्वामी की गद्दी पर वल्लभाचार्य बैठे[3] । इनके उपास्य गोपी वल्लभ तथा राधा वल्लभ कृष्ण हैं । वल्लभमत पुष्टि मार्ग नाम से प्रख्यात है । इस नाम के ग्रहण की प्रेरणा आचार्य को श्रीमद् भागवत की "पोषणं तदनुग्रह:"[4] वाली उक्ति से मिली । "पुष्टि" शब्द का अर्थ है भगवान का अनुग्रह[5] । पुष्टि मार्ग में सर्वात्मना भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण उपासक का श्रेष्ठतम कर्तव्य माना जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि जो साधक प्रभु के सामने सर्वतोभावेन अपने को अर्पित कर देता है उसका योगक्षेम भगवान स्वयं करेंगे । पुष्टि मार्ग में आत्म समर्पण की भावना अति मधुर एवं सरस है । इसमें समस्त विषयों से पृथक रहकर समस्त वासनाओं का परित्याग करना

---

1. गदाधर - संप्रदाय प्रदीप - पृ॰14-30
2. दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री - वैष्णव धर्म का इतिहास {1939} - पृ॰242
3. बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ॰365
4. भागवत - 2-10-4
5. बलदेव उपाध्याय - भागवत् दर्शन - पृ॰382

पड़ता है और अपने सर्वस्व का समर्पण करते हुए सदैव प्रभु और प्रभु भक्तों की सेवा में संलग्न होना पड़ता है[1]।

दार्शनिक पक्ष

आचार्य वल्लभ जगत और जीव दोनों को ही प्रभु का अंश कहते हैं और तात्विक दृष्टि से उनमें कोई अंतर नहीं मानते[2]। उनके मत में श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरणस्थल है। भक्त को उन्हीं का सदैव और सर्वत्र ध्यान रखना चाहिए। गोकुलाधीश बालकृष्ण यदि हृदय में बसे रहे तो जीवन की लौकिक तथा वैदिक सभी क्रियायें सार्थक हो गई। भक्त जब सर्वात्मना अपने आप को प्रभु के समर्पण कर देता है, तो वह एक प्रकार से अपने योग क्षेम की ओर से निश्चिन्त हो जाता है।

रचनाएं

वल्लभाचार्य के रचे ग्रन्थ हैं - अणुभाष्य, तत्त्वदीप निबंध, श्रीमद् भागवत सुबोधिनी, भागवत सूक्ष्म टीका, पूर्व मीमांसा भाष्य, सिद्धान्त मुक्तावली आदि[3]।

पुष्टि मार्ग विचार द्वारा प्रभु के साथ एकता का अनुभव कराता हुआ आचरण द्वारा भी उनके साथ एक हो जाने की शिक्षा देता है[4]। उनका आदेश है, भक्त को सदैव श्री कृष्ण के चरणों में प्रणत होकर उनका स्मरण और भजन करना चाहिए। उपासक आनन्द-धाम भगवान के अधरामृत के पान को ही उपासक

---

1. डॉ० मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ०388
2. वही - भक्ति का विकास - पृ०389
3. .. Dasgupta - A History of Indian Philosophy, Vol.IV,p.373
4. मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ०389

अपनी उपासना का फल मानता है । पुष्टि मार्ग की यह विलक्षणता है कि यह केवल भगवान के एकमात्र अनुग्रह से ही साध्य होता है[1]। पुष्टि मार्ग में आने के लिए लोक और वेद दोनों के प्रलोभन से दूर होना चाहिए[2]।

बालकृष्ण की उपासना

वल्लभाचार्य श्रीकृष्ण के बालरूप के उपासक थे । इसलिए उन्होंने वात्सल्य भक्ति का ही प्रधानतः प्रचार किया[3]।

वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने इस संप्रदाय की उन्नति की । विट्ठलनाथ के 252 शिष्य मुख्य थे जिनका वृत्तान्त "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" से ज्ञात होता है । वल्लभाचार्य के 84 शिष्य मुख्य थे जिनका परिचय "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" से मिलता है ।

अष्टछाप

विट्ठलनाथ ने अपने तथा अपने पिता के शिष्यों की एक मंडली बनायी । इसके आठ भक्त अपने समय में पुष्टि संप्रदाय के सर्वश्रेष्ठ काव्यकार, संगीतज्ञ और कीर्तनकार थे । ये गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथ मन्दिर में कीर्तन सेवा में निरत रहकर भगवद् भक्ति की पद रचना करते थे । उक्त आठ भक्तों पर विट्ठलनाथ ने अपने आशीर्वाद की छाप लगाई । ये ही महानुभाव अष्टछाप कहे जाते हैं । अष्टछाप काव्य की महत्ता की प्रशंसा हिन्दी के सभी प्रमुख विद्वानों ने की है । स्व. डा. श्यामसुन्दरदास ने अपने ग्रन्थ "हिन्दी भाषा और साहित्य" में इन कवियों के विषय में कहा है "जीवन के अपेक्षाकृत निकटवर्ती

---

1. बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ.384
2. पं. रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास - पृ.101, 102
3. बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ.391

क्षेत्र को लेकर उसमें अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखा देने में अष्टछाप के सुमेरु सूर की सफलता अद्वितीय है । सूक्ष्मदर्शिता में सूर अपना जोड नहीं रखते । .... अष्टछाप में प्रत्येक ने पूरी क्षमता से प्रेम और विरह के सुन्दर गेय पद बनाये ।"[1] रामचन्द्र शुक्ल का कथन है - "आचार्यों की छाप लगी आठ वीणायें श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊंची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वाणी की थी । .... मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्य पूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया ।"[2] अष्टछाप के कवि ये हैं :-

1. सूरदास	2. कुम्भनदास
3. परमानन्ददास	3. कृष्णदास
5. नन्ददास	6. गोविन्दस्वामी
7. छीत स्वामी और	8. चतुर्भुज दास ।

इनमें से प्रथम चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और अन्तिम चार विट्ठलनाथ के ।

अष्टछाप के कवि उच्च कोटि के भक्त, कवि एवं गवैये थे । अपनी रचनाओं में प्रेम की बहुविध अवस्थाओं का चित्र इन कवियों ने उपस्थित किया है । अष्टछाप के कवि हिन्दी वैष्णव साहित्य में अनुपम स्थान के अधिकारी

अष्टछापी कवियों में सूरदास नन्ददास और परमानन्ददास वृहदत्रयी हैं । सूरदास अष्टछाप के सुमेरु हैं । श्रृंगार भक्ति और वात्सल्य को इन कवियों ने - विशेषतः अंधे सूरदास, परमानन्ददास और नन्ददास ने पराकाष्ठा पर

---

1. श्याम सुन्दरदास - हिन्दी भाषा और साहित्य [सं.1994 संस्करण] पृ.310,322,326 तथा 327
2. रामचन्द्र शुक्ल - भ्रमरगीत सार, [प्रथम संस्करण] भूमिका - पृ.2।

पहुँचा दिया । सूरदास और परमानन्ददास ने वात्सल्य रस का भी व्यापक एवं मार्मिक चित्रण किया है । बालक्रीडा, बालमनोविज्ञान, वात्सल्य के संयोग वियोग पक्ष आदि की मनोवैज्ञानिक झांकियां जिस पूर्णता से सूरदास ने प्रस्तुत की है वह अन्यत्र अलभ्य है ।

शृंगार रस के विभिन्न प्रसंगों के अनेक सुन्दर शब्द चित्र, भावचित्र और ध्वनि चित्र सूर, नन्ददास और परमानन्ददास के काव्य में मिलते हैं ।

अष्टछापी कवियों के हाथों हिन्दी गीतिकाव्य अत्यन्त समृद्ध हुआ । विद्यापति की पदावली से संगीत की जो माधुरी सुनाई दी थी, उसका विकास इन कवियों में प्रतिफलित होता है । हिन्दी में गीति साहित्य को प्रौढ एवं पुष्ट करने में सूरदास का विशेष योग है । सूर स्वयं गायक और संगीत मर्मज्ञ थे । उनके पद विविध राग-रागिनियों में बंधे हुए हैं ।

अष्टछाप में सूर के उपरान्त नन्ददास का स्थान महत्वपूर्ण है । कृष्ण चरित को लेकर इन कवियों ने इतने प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा और भक्ति से भरे काव्य रचे हैं जिनकी तुलना विश्व के श्रेष्ठतम काव्य से की जा सकती है ।

महाकवि सूरदास ने आचार्य वल्लभ से पुष्टि मार्ग में दीक्षा ग्रहण की थी । हरिदासी संप्रदाय से संबंध रखने के कारण कृष्ण भक्ति की साधना उन्होंने पहले ही स्वीकार की थी । पर वल्लभ के साहचर्य ने ही उनकी कवि प्रतिभा को उद्दीप्त किया । जैसा कि अन्यत्र सूचित किया गया, आचार्य की आज्ञा का पालन करते हुए ही उन्होंने श्रीनाथ मन्दिर में भगवान के सामने वर्षों तक अपने गीतों की अंजलि चढाई ।

"मध्ययुग के अनन्य भक्त, सरस गायक एवं वात्सल्य रस के महाकवि सूरदास को मात्र हिन्दी जगत् नहीं, अपितु देश और काल की सीमा को लांघकर सम्पूर्ण भक्त समाज, गायक मण्डली एवं काव्य रसज्ञ एक ही स्वर से स्मरण करते आए

कर रहे हैं और संभवत: करते रहेंगे भी, अत: उनके प्रभावोत्पादक वैशिष्ट्य की ओर अनायास ही आकर्षित होना सहज एवं स्वाभाविक भी है।[1]"

अष्टछाप के सबसे प्रमुख कवि सूर हैं जिन की साहित्यिक गरिमा अतुलित है। इसकी चर्चा हमने यथा स्थान की है। शेष कवियों की साहित्यिक उपलब्धी की संक्षिप्त विवेचना यहाँ अपेक्षित है।

नन्ददास

अष्टछाप में सूरदास के बाद नंददास का सर्वश्रेष्ठ स्थान है[2]। डॉ॰ दीनदयालु गुप्त ने वार्ता, भक्त माल, भक्त नामावली, गोसाईं चरित आदि के आधार पर जो इनकी जीवनी प्रस्तुत की है उसके अनुसार ये रामपुर गाँव के निवासी थे[3]। वार्ता में इन्हें तुलसीदास का भाई बताया गया है। विट्ठलनाथ इनके गुरु थे[4]। गुरु की वंदना में नंददास ने कई पद बनाये हैं।

नन्ददास का जन्म संवत् 1590 वि॰ के लगभग और मृत्यु सं॰ 1643 वि॰ के लगभग माना जाता है[5]। रास पंचाध्यायी, रूपमंजरी, विरह मंजरी, रस मंजरी, भागवत दशम स्कन्ध, रासलीला आदि 29 ग्रन्थ नन्ददास कृत बताये जाते हैं[6]। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना रास पंचाध्यायी रोला छंद में प्रणीत है। इसमें जैसा कि नाम से ही प्रकट है कृष्ण की रासलीला का अनुप्रासादियुक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है। कथानक मुख्यत: भागवत से ही स्वीकृत है।

1॰ परिशोध - सूरदास विशेषांक - क्वार्टरली अंक - मार्च 1979 - पृ॰1

2॰ पं॰शुक्लजी : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰169
रामकुमारवर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰543

3॰ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰256

4॰ रामकुमार वर्मा - आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰543
डॉ॰ धीरेन्द्रवर्मा - हिन्दी साहित्य - द्वितीय खंड - पृ॰387

5॰ डॉ॰ दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰255

6॰ डॉ॰ दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰324-374

इन के अतिरिक्त नन्ददास के स्फुट पद भी प्राप्त है। संपूर्ण ब्रजभाषा साहित्य के नन्ददास की सबसे बड़ी देन है भाषा सौष्ठव। इनके पद लालित्य की प्रशंसा हिन्दी संसार मुक्त कण्ठ से करता है। इनकी रचना बड़ी सरस और मधुर है। इनके सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि "और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"[1]

कृष्णदास

ये वल्लभाचार्य के बड़े कृपापात्र भी थे[2]। ये श्रीनाथ मन्दिर के मुखिया हो गये थे[3]। वार्ताओं और वल्लभ दिग्विजय के आधार पर इनका जीवन काल सं. 1552 से 1632 तक मान सकते हैं[4]। इन्होंने और कृष्ण भक्तों के समान राधा कृष्ण के प्रेम को लेकर शृंगार रस के ही पद गाये हैं। इनका जुगल मान चरित्र नामक एक छोटा सा ग्रन्थ मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके बनाये दो ग्रन्थ और कहे जाते हैं - भ्रमर गीत और प्रेमतत्व निरूपण[5]।

परमानन्ददास

यह कन्नौज में उत्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे[6]। वल्लभ संप्रदाय में आने से पहले ही ये कवि और गवैये के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे[7]।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.169
2. वही - पृ.564 - रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
3. रामचन्द्रशुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.171
4. धीरेन्द्रवर्मा - हिन्दी साहित्य - द्वितीय खंड - पृ.387
4. दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ.253,254
   धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य - द्वितीय खंड - पृ.387
5. शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.171
6. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ.219-230
7. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड - पृ.386

इनका समय सं॰1550 से सं॰1640 तक माना जाता है[1]। परमानन्द सागर इनकी मुख्य रचना है[2]। इनके और दो ग्रन्थ हैं दानलीला और ध्रुव चरित्र। ये अत्यन्त तन्मयता के साथ बड़ी ही सरस कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर वल्लभाचार्य कई दिनों तक बदन की सुध भूले रहे[3]। भाषा की स्वाभाविक मिठास, सरलता, सजीवता, नाद सौन्दर्य, प्रवाह, संगीतात्मकता आदि गुण उन्हें ब्रज भाषा का श्रेष्ठ कवि सिद्ध करते हैं[4]।

कुंभनदास

ये पूरे विरक्त और धन मान मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे[5]। इनका समय सं॰1535 से सं॰1639 तक है[6]। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर उन्हें फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ[7]। इनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं, फुटकल पद ही मिलते हैं। ये पद "कीर्तन संग्रह" "कीर्तन रत्नाकर" "राग कल्पद्रुम" आदि में प्राप्त हैं। इनके पदों का विषय कृष्ण की बाल लीला और प्रेमलीला है।

चतुर्भुजदास

ये कुंभनदास के पुत्र[8] और विट्ठलनाथ के शिष्य थे[9]। इनका समय सं॰1597 से सं॰1642 तक माना जाता है[10]। इनकी भाषा चलती और

---

1. दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰221-229
2. शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰172
3. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - भाग -1, पृ॰244
4. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पंचम भाग - डॉ॰दीनदयालु गुप्त - पृ॰8
5. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰564
6. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰248
7. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰172
8. वही - पृ॰173 ; अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰262-266
9. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰565
10. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰262,263

सुख्यवसिस्थत है । इनके लिखे तीन ग्रन्थ मिलते हैं - द्वादशयश, भक्ति प्रताप तथा हितजू को मंगल[1]। इनके अतिरिक्त फुटकल पदों का संग्रह भी मिलता है ।

छीतस्वामी

छीतस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे,और राजा बीरबल के पुरोहित[2]। इनका समय सं०1567 से 1642 तक माना जाता है[3]। इनके फुटकल पद ही प्राप्त होते हैं । ये संगीत में भी निपुण थे[4]। इनके पदों में शृंगार के अतिरिक्त ब्रजभूमि के प्रति प्रेम व्यंजना भी पाई जाती है ।

गोविन्द स्वामी

ये विट्ठलनाथ के शिष्य थे । और आंतरी में रहते थे[5]। विट्ठलनाथ ने इनके रचे पदों से प्रसन्न होकर इन्हें अष्टछाप में लिया । ये गोवर्धन पर्वत पर रहते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगाया था जो अब तक 'गोविन्द स्वामी की कदंब खंडी' कहलाता है[6]। इनका समय सं०1562 से सं०1642 तक माना जाता है[7]। ये अच्छे कवि थे, पक्के गवैये भी थे[8]।

1• रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ०173
रामकुमार वर्मा - आलोचनात्मक इतिहास - पृ०565

2• रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ०565

3• धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड - पृ०388

4• धीरेन्द्रवर्मा - हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड - पृ०388

5• रामकुमार वर्मा - आलोचनात्मक इतिहास - पृ०565

6• रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ०174

7• डॉ०दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ०266
धीरेन्द्रवर्मा - हिन्दी साहित्य - द्वितीय खंड - पृ०388

8• रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ०174
धीरेन्द्रवर्मा - हिन्दी साहित्य - द्वितीय खंड - पृ०388

साम्प्रदायिक सीमा के बाहर भी बहुत से कवियों ने कृष्ण भक्ति को वाणी दी । इनकी संख्या बहुत अधिक है । सबका उल्लेख असंभव है । फिर भी राजस्थान की भक्त कवियित्री मीराँ बाई की कविता का उल्लेख परम आवश्यक है ।

मीराँ

मीराँ बाई ने किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षा ग्रहण किये बिना, किसी दार्शनिक मतवाद से विशेष प्रभावित हुए बिना अपनी श्रद्धा-प्रेम पुष्पांजलि प्रभु कृष्ण के चरणों में समर्पित की ।

मीराँ का जन्म राजस्थान के प्रसिद्ध राज परिवार में हुआ था । मिश्र बन्धु विनोद में मीराँ का जन्म सं•1573 बताया गया है । शुक्लजी ने भी यह तिथि स्वीकृत की है । राणा सांगा के पुत्र भोजराज से मीराँ का विवाह हुआ था[1] । विवाह के समय मीराँ केवल बारह वर्ष की थी । जल्दी ही वह विधवा बन गई । वैधव्य और अन्य पारिवारिक संकटों ने उसे गिरिधर गोपाल के चरणों में पहुँचाया । मीराँ ने साधु संतों की संगति में "पग घुंघरू बाँध" अपने गिरिधर नटनागर गोपालकृष्ण के सामने नाचना गाना शुरू किया । कुपित राणा ने उसे विविध प्रकार की यातनायें दीं । उनमें मुख्य है विष का प्याला देना, साँप की पेटी भेजना आदि । विरक्त मीराँ ने घर बार छोड़कर तीर्थयात्रा की[2] ।

मीराकृत नौ ग्रन्थ बताये जाते हैं[3] । पं•रामचन्द्र शुक्ल केवल चार ही प्रामाणिक मानते हैं - नरसी जी का मायरा, गीतगोविन्द टीका, राग गोविन्द और राग सोरठा के पद[4] ।

1• गौरीशंकर हीराचन्द ओझा - उदयपुर का इतिहास - पृ•358-360

2• डॉ• अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन कृत हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास - अनुवादक - किशोरीलाल गुप्त - पृ•88

3• डॉ•कृष्ण देव शर्मा - मीराँबाई पदावली - पृ•19
कृष्णदेव शारी - मध्यकालीन कृष्ण काव्य - पृ•247,248

4• रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ•179

मीराँ की भक्ति रागानुगा भक्ति है । यह भक्ति गोपीभाव की माधुर्य भक्ति है । मीराँ की माधुर्य भावना में जो भक्ति की तल्लीनता, प्रेम की जो टीस, अनुभूति की जो गहराई और प्रामाणिकता पाई जाती है, वह अन्य किसी कवि में नहीं[1] ।

मीराँ की माधुर्य भक्ति का विवेचन करते हुए परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं - "इस प्रेम का अवसान इन्द्रियों द्वारा उपभोग, शरीरादि मात्र की आसक्ति व स्वार्थ लाभ में ही नहीं हो जाता । यह नितान्त नित्य, एकरस एवं स्वार्थ रहित अतएव कामगंध हीन हुआ करता है । ऐसे प्रेम में कामवासना को भी स्थान नहीं, काम गंधहीन होने पर भी उस गोपी भाव की प्राप्ति होती है[2] ।

माधुर्य भाव का इतना सीधा स्पष्ट प्रकाशन मध्ययुग के अन्य किसी कवि में नहीं मिलता । कृष्ण भक्त कवियों में मीराँ बाई का स्थान सर्वोच्च है, उनका जीवन ही वस्तुत: कृष्ण की माधुर्य भक्ति का जीवित उदाहरण है[3] । उन्होंने माधुर्य भाव से अपनी भक्ति भावना का स्वरूप निर्धारित किया और स्वयं विरहिणी बनकर अपने आराध्य श्रीकृष्ण से प्रणय भिक्षा माँगी[4] ।

अपने पदों में मीराँ गिरिधर गोपाल की प्राणप्रिया पत्नी बनी हुई है । वह पृथ्वी पर नहीं प्रेम वृक्ष की सबसे ऊँची डाली पर, बैठी है[5] ।

मीराँ के हृदय से निर्झर की भाँति भाव आए और अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो गए । भाव, अनुभाव और संचारी भावों के बादलों में उनकी कविता चन्द्रिका नहीं छिपी, वरन् निर्मल हृदयाकाश से बरस पड़ी ।

---

1. कृष्णदेव शारी - मध्यकालीन कृष्ण काव्य - पृ.248
2. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - मीराबाई की पदावली - पृ.41
3. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य - द्वितीय खंड - पृ.392
4. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - [पंचम सं.] पृ.565
5. वही - पृ.584

हृदय की भावना मन्दाकिनी की भांति कलकल करती हुई आई और मीरां के कंठस्थ सरस्वती की संगीत धारा में मिल गई । वह भावना संगीत का सार बनी और उसीमें मीरां के हृदय की अनुभूति मिली[1] ।

मीरां की कविता में आत्मनिवेदन है, विरह है और वह है आध्यात्मिक, सांसारिक नहीं । मीरां अन्तस्तल से गाती है -

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।"

उन्होंने गिरधर गोपाल को रिझाया, उन्हें अपना लिया । वे कृष्ण को अपने पति के रूप में देखती है :-

"जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।"

मीरां अत्यन्त उदार मनोभावनापन्न भक्त थीं । उन्हें किसी पंथ विशेष पर आग्रह नहीं था । जहाँ कहीं भी उन्हें भक्ति या सांनिध्य मिला है उसे ही उन्होंने सिर माथे चढाया है[2] । उनकी भक्ति हृदय की है, ज्ञान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं । वह किसी परंपरा अथवा सम्प्रदाय का अनुसरण नहीं करती, वह तो एक ऐसे हृदय का सहज उद्गार है जो न तो सामाजिक बन्धनों को स्वीकार करती है न धार्मिक मर्यादाओं को मानती है । मीरां का समूचा काव्य एक स्वच्छन्द प्रेमी की भावाभिव्यक्ति है । भक्ति के मधुर रस से पूर्णत: आप्लावित है उनकी पदावली । वह सहज भावनाओं की एक ऐसी अक्षय निधि है, जो हृदय की कोर से संजोई गई है और आंसुओं से सिक्त की गई है ।

---

1. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (पंचम सं.) - पृ.583

2. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य - पृ.194

सूर पूर्व हिन्दी कृष्ण काव्य परंपरा

हिन्दी में कृष्ण काव्य की परम्परा सूरदास आदि अष्टछापी कवियों से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व 14वीं शताब्दी में प्रचलित हो चुकी थी[1]। हिन्दी की सभी उपभाषाओं में कृष्ण काव्य रचा गया। कुछ इतिहासकारों में यह भ्रांति पाई जाती है कि कृष्ण काव्य की रचना ब्रज भाषा में ही हुई। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रजभाषा में कृष्णकाव्य की सर्वाधिक रचना हुई, किन्तु मैथिली, अवधी आदि अन्य भाषाओं में भी कृष्ण काव्य की समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। 14 वीं शताब्दी से ही पुरानी हिन्दी, ब्रज, मैथिली, तथा अवधी में कृष्ण काव्य का प्रणयन होने लगा था।

जयदेव की परम्परा में विद्यापति ने मैथिली में कृष्ण काव्य का ऐसा मधुर साहित्यिक रूप प्रस्तुत किया जो सूरदास आदि आगामी ब्रज कवियों केलिए अनुकरणीय बना। उन्होंने राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं के मधुर भावों से युक्त अनेक पदों की रचना की जिनपर गीत गोविन्द का स्पष्ट प्रभाव है। नायिका का नख शिख, वय: संधि अभिसार, मान, विरह आदि का ऐसा भावोन्माद वर्णन विद्यापति ने किया है कि वह हिन्दी के परवर्ती रीतिकालीन शृंगार वर्णन जैसा जान पड़ता है। स्वयं शैव होते हुए भी विद्यापति ने राधा और कृष्ण की प्रेमलीला का ऐसा मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया हैकि आगे आनेवाले वैष्णव कवियों केलिए भी वह प्रेरणास्पद रहा।

कृष्ण काव्य की प्रमुख धारायें

1. मुक्तक कृष्ण-गीत-काव्य की लौकिक शृंगारी परंपरा मैथिली में विद्यापति से आरंभ और पुष्ट हुई।

---

1. डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह - सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य [द्वितीय सं॰] - पृ॰ 142

2. पुरानी ब्रज भाषा या पिंगल में कृष्ण भक्ति परक फुटकल छन्दों की रचना भी 14 वीं शताब्दी या उसके भी पहले होने लगी थी, इसका प्रमाण "प्राकृत पैंगलम्" में प्राप्त कुछ दोहे हैं[1]। प्राकृत पैंगलम के स्तुतिपरक पद्यों में कृष्ण की वंदना के भी दो चार पद मिलते हैं।

3. ब्रज भाषा में कृष्णाख्यानक प्रबंध काव्यों की रचना की परम्परा भी हमें 14 वीं शताब्दी से उपलब्ध होती है। प्राचीनतम प्राप्त रचना सधार अग्रवाल कृत "प्रद्युम्न चरित" है जो 1354 ई. में रची गई थी[2]। अग्रवाल जैन थे, अतः उनकी रचना में कृष्ण भक्ति का वैष्णवीय भाव नहीं मिलता। फिर भी रुक्मिणी-विवाह, सत्यभामा-रुक्मिणी विवाद, कृष्ण प्रद्युम्न द्वन्द्व आदि इसके कई प्रसंग कृष्ण जीवन से सम्बन्धित हैं[3]। सूरदास से लगभग सौ वर्ष पूर्व विष्णुदास ने "रुक्मिणी मंगल, "स्नेह लीला" तथा महाभारत कथा नामक काव्यों की रचना की जिनमें कृष्ण भक्ति का पूर्ण प्रकाशन हुआ है[4]। भक्ति के साथ साथ शृंगार का वही समन्वय विष्णुदास की स्नेहलीला और रुक्मिणी-मंगल में विद्यमान है जो आगे के सूरदास, नंददास आदि कृष्ण भक्त कवियों में पाया जाता है। इस दृष्टि से विष्णु दास एक परम्परा निर्माता के रूप में सूरदास आदि के लिए प्रेरणा स्रोत बने। नन्ददास आदि की "रुक्मिणी मंगल' रचनाओं की अग्रजा विष्णु दास का रुक्मिणी मंगल है, इसमें सन्देह नहीं। हिन्दी में भ्रमरगीत परम्परा के प्रवर्तन का पूर्ण श्रेय सूरदास को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि विष्णुदास अपनी स्नेह लीला में यह प्रसंग सूर से 100 वर्ष पूर्व प्रस्तुत कर चुके थे।

4. कृष्णकाव्य शनैःशनै संगीतज्ञ कवियों और गायकों का कंठहार बन गया। जयदेव, विद्यापति, गोपाल नायक, बैजू नायक बावरा आदि

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी - सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य - भूमिका पृ. 9 [द्वितीय सं.]
2. कृष्णदेव शारी - मध्यकालीन कृष्णकाव्य [प्र.सं.] - पृ. 12
3. डॉ. शिवप्रसाद सिंह - सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य [द्वि.सं.] - पृ. 143
4. वही - पृ. 149

प्रसिद्ध गायकों ने स्वयं अपनी कवि प्रतिभा से कृष्ण प्रेम की स्वर धारा बहाई[1]। बैजू बावरा के जो पद रागकल्पद्रुम में संगृहीत हैं उनमें से कई कृष्ण सम्बन्धी हैं[2]। ये पद गोपी-प्रेम, विरह, रास आदि कृष्णकथा के विविध पक्षों से संबद्ध हैं।

5· सूर से पूर्व कुछ अन्य भाषा भाषी कवियों के पद भी प्राप्त हैं। असमिया के आदि कवि शंकरदेव ने ईसा की पन्द्रहवीं शती के अंत में ब्रज मण्डल की यात्रा की थी। इस यात्रा के बीच में उन्होंने ब्रजभाषा में कुछ पद रचे थे जिनमें अधिकांश कृष्ण गोपी प्रेम सम्बन्धी हैं[3]।

सूर के पूर्व गुजरात के भालण कवि ने कृष्ण लीला सम्बन्धी कुछ पद ब्रज भाषा में रचे थे। उनमें बाललीला तथा गोपी विरह का वर्णन है[4]। गुजराती कवि केशव कायस्थ की कृष्ण-क्रीडा काव्य में दो तीन पद ब्रज भाषा के मिलते हैं, जिनमें राधा का नाम और कृष्ण की माखनचोरी वर्णित है[5]।

सूर से पूर्व नामदेव जैसे महाराष्ट्र संतों ने ब्रजभाषा में अपनी वैष्णवी भक्ति भावना प्रकट की[6]। नामदेव के अभंग ब्रज भाषा में रचित हैं। हिन्दी के प्रथम कृष्ण भक्त कवि का पद नामदेव को दिया जा सकता है[7]। ये विठोबा के अनन्य भक्त थे।

1· डॉ· सरोजिनी कुलश्रेष्ठ - हिन्दी साहित्य में कृष्ण - पृ·67
2· सूरपूर्व ब्रज भाषा साहित्य - पृ·223
राग कल्प द्रुम में आये बैजू के पदों को श्रीनर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने संगीत कवियों की हिन्दी रचनाओं में संकलन किया है।
3· सूरपूर्व ब्रज भाषा साहित्य - पृ·227
4· हिन्दी साहित्य - सं·धीरेन्द्र वर्मा - द्वितीय खंड - पृ·352
जवाहरलाल चतुर्वेदी - गुजरात के शुक-पिक पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ - पृ·114
5· सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य - पृ·236
6· रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ·69
7· रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ·69

सूर के समकालीन भानुदास एक महाराष्ट्र भक्त थे जिन्होंने ब्रज भाषा में सरस कृष्ण काव्य की रचना की ।[1] हिन्दीतर कवियों की कृष्ण काव्य रचना जहाँ ब्रज भाषा की व्यापक मान्यता द्योतित करती है वहाँ यह भी प्रामाणित करती कि सूरदास से पूर्व समूचे भारत की प्राय: सभी भाषाओं और बोलियों में कृष्ण लीलाओं का गान होने लगा था ।

6· नामदेव, कबीर, रैदास आदि संत कवियों ने राम की तरह कृष्ण नाम को भी आराध्य माना । ये अवतारवाद के विरुद्ध थे और अमूर्तोपासक थे किन्तु इन्होंने कृष्ण नाम को पर ब्रह्म निराकार रूप में अवश्य भजा है । इन्होंने माधव, मुरारि, गोविन्द आदि कृष्ण नामों से अनेक पदों में ब्रह्म को सम्बोधित किया है । गोविन्द को संबोधित करते हुए कबीर कहते हैं -

गोविन्द तुम थे डरपौं भारी
सरणाई आयो क्यूँ गहिए यह कौन बात तुम्हारी ।।
xx xx xx
तारण तरण तरण तू तारण और न दूजा जानौं ।
कहे कबीर सरनाई आयौं आन देव नहिं मानौं ।[2]

इस पद का सूर के विनयसम्बन्धी कई पदों से भावसाम्य द्रष्टव्य है ।

रैदास भी सौन्दर्य-मूर्ति {माधव} पर न्योछावर हैं । वे कहते हैं - हे माधव, यदि तुम इस प्रेम सम्बन्ध को तोड भी दो, तो भी हम नहीं तोड सकते, क्योंकि तुम से तोडने पर भला हमारा और कौन है, जिससे सम्बन्ध जोडें ? -

---

1· सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य - पृ·230

2· सन्तकाव्य संग्रह {परशुराम चतुर्वेदी - किताब महल} तृतीय संस्करण आत्मनिवेदन वाला पद - 13 वाँ पद - पृ·190

जउ तउ गिरिवर तउ हम मोरा ।
जउ तउ चंद तउ हम भये चकोरा ।
माधवे तुम तोरहु तउ हम नहिं तोरहिं ।
तुम सिउं तोरि कवन सिउं जोरहिं ।।[1]

रैदास की उपर्युक्त पंक्तियों से मिलती जुलती कई पंक्तियाँ मीरा के पदों में हैं ।

स्पष्ट है कि हिन्दी में कृष्ण काव्य का उद्गम सूरदास आदि अष्टछाप अष्टछापी कवियों से बहुत पहले हुआ था । ब्रजभाषा, मैथिली आदि में कृष्ण काव्य का सृजन 14 वीं शताब्दी में ही होने लगा था ।

डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, डॉ॰ दीनदयालु गुप्त जैसे विद्वानों की धारणा थी कि सूरदास आदि अष्टछापी कवियों से पूर्व कृष्ण भक्ति काव्य ब्रज भाषा में नहीं रचा गया था[2] । पर यह धारणा तर्क संगत नहीं है । संभव है विष्णुदास आदि सूरपूर्व कृष्ण भक्त कवियों की रचनायें इनके दृष्टिपथ में नहीं आई हों । परिणामतः इन्होंने सूर को ब्रजभाषा और हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य धारा का आदि कवि मान लिया है । वास्तव में सूर और वल्लभ के पहले ही कृष्ण लीला गान की परंपरा मैथिली, ब्रज और अवधी में प्रचलित हो चुकी थी । भक्त कवियों ने इसको विकसित किया । पं॰रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - सूर सागर किसी चली गीति काव्य परंपरा का - चाहे वह मौखिक ही रही हो - पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है[3] । वास्तव में न केवल आगामी गीति काव्य अपितु समस्त कृष्णाख्यानक काव्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी की समृद्ध परंपरा का ही विकसित रूप है ।

---

1. सन्तकाव्य संग्रह [परशुराम चतुर्वेदी - किताब महल [तृतीय सं॰]
   आत्मनिवेदन वाला पद - 13 वाँ पद - पृ॰190
2. डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा - ब्रजभाषा व्याकरण - पृ॰12
   डॉ॰ दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय प्रथम भाग - पृ॰24,27
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰160 और सूरदास - पृ॰114

सुरोत्तर कृष्ण काव्य

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति की यह धारा शताब्दियों तक अव्याहत बहती रही । यद्यपि सूर की सी सर्वतन्त्र स्वतंत्र प्रतिभा इस क्षेत्र में पुन: प्रकट नहीं हुई, तथापि इसकी श्रीवृद्धि करनेवाले कवियों की संख्या कम नहीं है । कृष्ण के दिव्य चरित ने प्रदेश और काल के भेद के बिना हमारे कवियों को प्रेरित और प्रभावित किया है । यह क्रम अद्यावधि जारी रहता है । यह ठीक है कृष्ण के स्वरूप में, चरित्र में कवियों की कल्पना शक्ति ने पर्याप्त अन्तर उपस्थित किया है । रीति काल की शृंगारिकता ने कृष्ण को घोर शृंगार परता में डुबो दिया । मुसलमान कवियों की प्रेम भावना ने उनको प्रेमियों के सर्वोच्च आदर्श के रूप में उपस्थित किया है । अत्यन्त आधुनिक कविता में भी कृष्ण और उनकी दिव्य लीला ने अपने लिए स्थान बना लिया है । अत: यही कहा जा सकता है कि कृष्ण के प्रति यह आकर्षण उस समय तक जारी रहेगा जिस समय तक मानवता बनी रहेगी ।

मलयालम का वैष्णव साहित्य

केरल और उसकी भाषा मलयालम

भारत के दक्षिण पश्चिम कोने में स्थित केरल राज्य प्रकृति देवी का क्रीडास्थल है। उसके उत्तर पूर्व भाग में सह्यपर्वत एक प्रहरी के समान खड़ा है। पश्चिम में अरब सागर है और उसका दक्षिण भाग कन्याकुमारी है [भाषावार प्रान्तों की स्थापना के साथ कन्याकुमारी तमिलनाडु में मिला दी गई है] जहाँ अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी का संगम होता है। लाखों यात्री यहाँ सागर स्नान करते हैं और स्थानीय देवी मन्दिर की मनमोहिनी मूर्ति के दर्शन से चरितार्थ होते हैं। केरल प्रदेश दर्शकों केलिए एक वाटिका के समान है। भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा केरल शिक्षा क्षेत्र में अग्रणी है। यहाँ के 69.17 प्रतिशत जनता शिक्षित है[1]।

केरल की भाषा मलयालम है, जो द्राविड भाषाओं में प्रमुख है। दक्षिण की प्रमुख द्राविड भाषायें है तमिल, मलयालम, तेलुगु और कन्नडा जिनमें प्राचीनता की दृष्टि से तमिल का प्रथम स्थान है। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि मलयालम की उत्पत्ति तमिल से हुई[2]। डॉ॰ गुण्डर्ट, आट्टूर कृष्णपिषारटि, उल्लूर परमेश्वरय्यर, डॉ॰ गोदवर्मा जैसे विद्वानों के मतानुसार मलयालम और तमिल दोनों की उत्पत्ति मूल द्राविड भाषा से हुई है[3]। तथ्य यह है कि केरल में प्राचीन काल में साहित्य रचना संस्कृत और तमिल में होती थी। मलयालम में साहित्य रचना ईसा की नवम शती से लक्षित होती है[4]।

---

1. Malayala Manorama Year Book 1982, p.746
2. Dr.Cadwell - Comparative Grammar, p.24

   प्रो॰ राजराजवर्मा - केरल पाणिनीयं - पृ॰13,14

   पी॰ गोविन्द पिल्ले - मलयालम भाषा चरित्रम् - पृ॰9
3. डॉ॰ के॰एम॰ जार्ज - साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ॰36
4. A. Sreedhara Menon - Kerala History (1967) p.36

केरल की संस्कृति में भक्ति

दक्षिण भारत में भागवत् भक्ति का विशेष विकास तथा व्यवस्थित प्रचार का कार्य बहुत पहले ही शुरू हुआ था । इसका उल्लेख श्रीमद् भागवत में भी मिलता है[1]। भक्ति मार्ग के आचार्य भी अधिकतर दक्षिणी रहे हैं । कृष्ण भक्ति का विशेष प्रचार दक्षिण के आलवार सन्तों में मिलता है । ट्रावन्कोर के कुलशेखर आलवार[2] (नवीं शताब्दी ईस्वी के पहले)[3] महान कवि तथा परम वैष्णव थे[4]।

---

1. उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता । ....
   श्रीमद् भागवत् माहात्म्य - अध्याय - 1, श्लोक - 48-50
2. Kulasekhara Alwar was a King of Malabar - Cultural Heritage of India - Vol.2, Historical Evolution of Sri. Vaishnavism - V.Rangacharya, p.72
3. केरल चरित्रम् - भाग - 1, पृ.81 - Kerala History Association, - Dr. S.Krishna Swamy Iyengar-
4. परशुराम चतुर्वेदी - वैष्णव धर्म - पृ.87 History of Tirupati-Vol.1,p.166

भक्ति के विकास के सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है -

"भक्ति द्राविड उपजी, लाये रामानन्द ।
परगट कियो कबीर ने, सात द्वीप नौ खण्ड ।।"

इससे स्पष्ट है भक्ति का सोता दक्षिण की ओर से उत्तर भारत की ओर बहा[1] । अतः केरल की संस्कृति में अनादि काल से भक्ति का बीज दिखाई पड़ता है । केरलीय संस्कृति का सबसे बड़ा वरदान है समन्वयवाद[2] ।

मलयालम साहित्य का कालविभाजन

ईस्वी नवम शती से शुरू होनेवाला मलयालम साहित्य को स्थूल रूप से दो कालों में बाँटा जाता है[3] - प्राचीन काल और आधुनिक काल । एजुत्तच्छन के पूर्व तक का साहित्य [ई॰16 वीं शताब्दी तक] प्राचीन काल के अन्तर्गत और एजुत्तच्छन से शुरू होनेवाला साहित्य आधुनिक काल के अन्तर्गत माना जाता है ।

यह विभाजन अत्यन्त स्थूल दृष्टि से ही किया गया है । एजुत्तच्छन की कविता में आधुनिक साहित्य के स्फुरण विद्यमान है - इसमें सन्देह नहीं । परन्तु उनको आधुनिक साहित्यकार मानना तर्क संगत नहीं । एजुत्तच्छन के पूर्व तक के साहित्य को आदि काल के अन्तर्गत रखना ठीक है । पर उसके उपरांत बीसवीं शती के आरंभ तक के साहित्य को मध्यकाल एवं उसके बाद के साहित्य को आधुनिक काल के अन्तर्गत मान लेना ही अधिक युक्ति संगत है । आधुनिक विचारक इस दृष्टि का समर्थन करते हैं ।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰65
2. डॉ॰ एम॰जार्ज - भक्ति आन्दोलन और साहित्य [1978] - पृ॰476
3. उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर - केरल भाषा साहित्य चरित्रम् - भाग-1, पृ॰76

आदि कालीन साहित्य

गीत-

प्राचीन काल में अधिकतर धार्मिक तथा ग्रामीण गीत ही लिखे गये। ये गीत द्राविड वृत्तों में निबद्ध है। इनका प्रतिपाद्य राम या कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित है। शिव गणपति आदि अन्य देवताओं से संबद्ध गीत भी विद्यमान है। ये गीत बहुत ही लोकप्रिय थे और प्राय: साधारण जनता उन्हें कंठस्थ कर लेती थी। उनके समय के निर्धारण के योग्य कोई प्रमाण प्राप्त नहीं। वे काफी प्राचीन हैं, इसमें संदेह नहीं। साहित्यिक दृष्टि से इन गीतों का बड़ा महत्व है। इनके रचयिता भी अधिकतर अज्ञातनामा है। एक प्राचीन मलयालम गीत उदाहरणार्थ यहाँ उद्धृत है -

कण्णनामुण्णिये काणुमाराकणं ।	मुझे कन्हैया देखने को मिले ।
कारोटि वर्णने काणुमाराकणं ।	मेघवर्ण[कृष्ण] देखने को मिले ।
किंकिणीनादङ्ङळ् केळ्क्कुमाराकणं ।	किंकिणियों के नाद सुनने को मिले ।
कीर्तनं चोल्लि पुकऴ्त्तुमाराकणं[1] ।	उसके कीर्तन और प्रशंसा करने की सुविधा प्राप्त हो[2] ।

इससे यह प्रमाणित होता है कि वैष्णव धर्म और साहित्य केरल में अति प्राचीन काल से ही प्रवेश पा चुके थे।

रामचरितम्

मलयालम में भक्ति साहित्य चौदहवीं शताब्दी के पहले प्रणीत होने लगा था। इसका प्रमाण है रामचरितम्। यह मलयालम का प्रथम महाकाव्य है। इसके लेखक चीराम कवि [श्रीराम कवि] हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में कोई बात ज्ञात नहीं है।

---

1. कृष्णस्तुति - पृ.21 पद -7, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 138-अ, मानुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेंद्रम
2. कृष्णस्तुति गीत का हिन्दी भावानुवाद ।

रामचरितं का रचनाकाल अनुमानतः 13 वीं शती है।[1] रामायण के युद्ध कांड को लेकर इस बृहद् काव्य की रचना हुई है। इसकी भाषा तमिल मिश्रित मलयालम है। छन्दोविधान भी तमिल के आदर्श पर किया गया है। डॉ॰ गुंडर्ट, डॉ॰ काल्डवल्, पी॰ गोविन्द पिल्ले आदि पंडितों ने इस काव्य को प्रथम मलयालम वैष्णव काव्य सिद्ध किया है।[2] यह तो पहली मलयालम कृति है जिसमें वीर पुरुष श्रीराम के जीवन के सबसे मार्मिक अंश का विस्तृत वर्णन किया गया है। कवि ने मुख्यतः वाल्मीकि रामायण को उपजीव्य बनाया है। बीच बीच में कंब रामायण का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है।[3]

प्रायः भक्ति या उपासना को केन्द्र बिन्दु बना करके ही राम कथा के प्रसंग का वर्णन किया जाता है। लेकिन इस काव्य में भक्ति की अपेक्षा वीरता का ही अधिक प्रसार है। हो सकता है इसके रचनाकाल में केरल का सामाजिक वातावरण कलहों और युद्धों से कलुषित रहा हो।[4] युद्ध का इतना सुन्दर वर्णन मलयालम में और कहीं नहीं मिलता।

निरणम् कवि वृन्द

साहित्य पर तमिल का प्रभाव शताब्दियों तक जारी रहा। निरणम् कवियों की कृतियों में भी तमिल प्रभाव स्पष्ट पाया जाता है।

निरणम् कवि तीन हैं - माधव पणिक्कर, रामप्पणिक्कर और शंकरप्पणिक्कर। निरणम् एक गाँव का नाम है जो केरल के आलप्पि जिले के तिरुवल्ला तालुक के अंतर्गत है। यहीं इन कवियों का जन्म हुआ था। इनका समय सन् 1350 से 1450 के बीच माना जाता है।[5]

---

1. डॉ॰ के॰एम॰ जार्ज - साहित्य चरित्रम्, प्रस्थानङ्ङलिलूटे-भाग-4
   तमिष मिश्र साहित्यं - पृ॰ 177-178
2. Dr. Gundert - Malayalam English Dictionary (1872) Preface
   Dr. Caldwell - Comparative Grammar of Dravidian Languages, p.125
   पी॰गोविन्द पिल्ले - मलयालम भाषा चरित्रम् - पृ॰21
3. उल्लूर - केरल साहित्य चरित्रम - वाल्यं-1, पृ॰328
4. ए॰श्रीधर मेनन - केरल चरित्रम् - पृ॰207
5. उल्लूर - केरल साहित्य चरित्रम् - वाल्यं-1, पृ॰322
   आर॰नारायण पणिक्कर - केरल भाषा साहित्य चरित्रम्-वाल्यं-1, पृ॰270

माधव पणिक्कर

यद्यपि इनका जन्म निरणम् मे हुआ था तथापि ये निवास करते थे ट्रिवान्ड्रम के निकट मलयिन्कीष् गाँव में। ये वहाँ के प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर में उपासना करते थे[1]।

इन्होंने भगवद्गीता का मलयालम में अनुवाद किया। यह समस्त भारतीय भाषाओं में भगवद् गीता का प्राचीनतम अनुवाद माना जाता है[2]।

शंकर पणिक्कर

इन्होंने भारत माला की रचना की जिसमें भागवत के दशमस्कंध और महाभारत का संक्षेप में वर्णन है।

रामपणिक्कर

माधव पणिक्कर और शंकर पणिक्कर के भतीजा है राम पणिक्कर। इनकी रचनायें हैं कण्णश भागवतं, कण्णश रामायणं, शिवरात्रि माहात्म्य और भारतम। निरणम् कवियों की रचनाओं में काव्य कला की दृष्टि से रामपणिक्कर की रचनायें ही अधिक उत्कृष्ट हैं।

कण्णश भागवतम्

इसमें भागवत दशम स्कन्ध के आधार पर कृष्ण चरित का वर्णन है। कथावस्तु में कवि ने कोई अंतर उपस्थित नहीं किया है पर प्रतिपादन की रीति में कुछ मौलिकता प्रदर्शित की है। यह भाव और कला की दृष्टि से अति सुन्दर काव्य है

---

1. एन. कृष्ण पिल्ले - कैरलियुटे कथा - पृ. 127

2. डॉ. के.एम. जार्ज - साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङिलूटे - पृ. 194

कवि का हृदय कृष्ण की लीलाओं में ही अधिक रमा है । अत: कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में उन्हें अधिक सफलता मिली है । कवि भगवान के अनन्य भक्त हैं । जहाँ जहाँ अवसर मिलता है उनकी स्तुति करने में विशेष रुचि रखते हैं । इससे व्यक्त है कि भक्ति का प्रसार साहित्य के माध्यम से केरल में पर्याप्त रूप से होने लगा था । भक्ति व्यापक रूप से जन जीवन में स्थान पाने लगी थी । उसका इतना व्यापक प्रसार होने लगा कि वह एकुत्तच्छन में आकर पूर्णत्व पाने लगी-ऐसा विद्वानों का कथन है ।

कृष्ण लीला का एक प्रकरण यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है - सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनी हुई यशोदा दधि मथ रही थी । पुत्र प्रेम से उसके स्तनों से दूध बह रहा था । मथनी की रस्सी के बार बार खींचने से उसके स्तन कंपित हो रहे थे । वलय, कुंडल, हार, सब मंथन के कारण ढीले पड गये । उसी समय स्तन्यपान के लिए कृष्ण पहुँच गया । माता ने दधि मथन छोडकर बच्चे को अपनी गोदी में बैठा लिया और स्तन्यपान कराया । वह अपने पुत्र के मुख की तरफ देखती रह गई । चूल्हे पर रखा हुआ दूध उबल कर बहने लगा । बच्चे को जमीन पर रखकर यशोदा शीघ्र दूध की तरफ गई । कृष्ण को क्रोध आया । दान्त पीसते हुए उसने इधर उधर के सारे बर्तनों को तोड डाला । माता भी यह देखकर क्रुद्ध हुई उसने पुत्र को उलूखल से बांध डाला[1] ।

इसमें श्रीमद् भागवत का सच्चा अनुकरण है[2] । भागवत के आधार पर कृष्ण जीवन का अंकन ही कवि का ध्येय था ।

शिवरात्रि माहात्म्यम् में शिवरात्री की महिमा प्रतिपादित है । वैष्णव कवि ने यहाँ शिव की महिमा बतायी है ।

1• कण्णश्श भागवतम् - अध्याय - 7 श्लोक 2,3,4
मानुस्क्रिप्ट लैब्रेरी - हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या 273 अ

2• श्रीमद् भागवत - 10-9 - 4,5,6•

श्रीकृष्णास्तव

यह पन्द्रहवीं शताब्दी की एक उल्लेखनीय रचना है । इसका रचयिता अज्ञात है । इसमें सिर्फ अठासठ पद हैं, पर सारे पद भक्ति भावना और काव्य सौन्दर्य से भरे हैं ।

भारत संग्रहम्

इसी शताब्दी में कोलत्तुनाट राज्य के रामवर्मा ने भारत संग्रहम् नामक एक महाकाव्य लिखा । संस्कृत के महाभारत के आधार पर भारत संग्रहम् की रचना हुई है । इसमें पांडवों की कथा वर्णित है । कृष्ण को सर्वाधिक महत्व दिया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्णचरित को अंकित करने के लिए ही कवि ने महाभारत का आख्यान साधन के रूप में चुना है ।

श्रीकृष्ण विजयम्

इसके रचयिता शंकर वार्यर रामवर्मा के दरबारी कवि थे । श्रीकृष्णविजयम संस्कृत भाषा की एक अमूल्य रचना है । इसके संबन्ध में महाकवि उल्लूर ने लिखा है कि इसका श्रवण करके श्रोता आनन्द से उन्मत्त हो जाते हैं[1] । इसकी अलंकार योजना बहुत सुन्दर है और रस परिपाक की दृष्टि से भी यह सफल रचना है ।

श्रीकृष्णाभ्युदयम

शंकर कवि के एक शिष्य की रचना है श्रीकृष्णाभ्युदयम । लेखक का नाम धाम अज्ञात है । इसकी भाषा शुद्ध मलयालम है ।

---

1. उल्लूर - केरल साहित्य चरित्रम् - भाग - 2 - पृ. 1 ।

<u>रामकथाप्पाट्टु</u>

इस युग की एक महत्वपूर्ण कृति है रामकथाप्पाट्टु । अय्यप्पिल्ला आशान ने इसकी रचना की[1] । ये दक्षिण तिरुवितांकूर के कोवलम् के निकट रहनेवाले थे । सन् 1400 के निकट ये जीवित थे[2] । कवि ने अपने काव्य को रामकाव्य नाम दिया लेकिन यह काव्य रामकथाप्पाट्टु नाम से प्रसिद्ध हो गया[3] । त्रिवान्द्रम के श्री पद्मनाभ स्वामी मन्दिर में उत्सव के समय रामकथाप्पाट्टु के गीत गाये जाते थे ।

279 भागों में 3163 गीतों वाला बृहदाकार काव्य है यह । वाल्मीकि रामायण के आधार पर पुरुषोत्तम राम का चित्रण है इसमें, अवतार पुरुष राम का नहीं । यह वाल्मीकि रामायण का पूर्णतः अनुकरण नहीं करता । मूल कथा में से कई प्रकरणों को छोड़कर कल्पना के आधार पर कई नूतन संदर्भों को जोड़ा गया है इसमें । इसे एक स्वतन्त्र काव्य कहना भी असंगत न होगा ।

रामकथापाट्टु में युद्ध कांड को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान मिला है काव्य का आधा भाग युद्ध के चित्रण में व्यतीत होता है । मलयालम के प्रथम वैष्णव काव्य रामचरितम का संभवतः अय्यप्पिल्ला आशान पर प्रभाव पड़ा हो ।

छन्दों की विविधता इस काव्य की निजी विशेषता है। ग्रामीण जीवन से संबद्ध सरल उपमानों को ग्रहण करके कवि ने अलंकार योजना में अपनी अद्भुत क्षमता व्यक्त की है ।

---

1. उल्लूर - केरल साहित्य चरित्रम् - भाग - 1, पृ.250
2. एन. कृष्णपिल्ले - केरलियुटे कथा - पृ.152
3. वही - पृ.151

यह गेय काव्य है। इसकी रचना संस्कृत मिश्रित मलयालम में हुई है।[1] द्राविड़ के निकट प्रचलित तमिल शब्दों का प्रयोग भी काव्य में हुआ है।

इससे व्यक्त है कि चेरुश्शेरी के पहले वैष्णव साहित्य प्रचुर मात्रा में केरल में रचा गया था। यह सारा साहित्य भक्तिपरक था, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अन्य विषयों का प्रवेश उसमें बिलकुल नहीं हुआ था। स्वयं रामचरित इसका प्रमाण है। यह सिर्फ भक्ति को लक्ष्य स्वीकार करके नहीं लिखा गया था। भक्ति के साथ अन्य लौकिक भावों ने भी इसमें स्थान पाया है केरल के समस्त वैष्णव साहित्य में अध्यात्म के साथ आधि भौतिक का सामंजस्य लक्षित होता है। चेरुश्शेरी की कृष्णगाथा को भी इसी संदर्भ में समझने की आवश्यकता है।

कृष्णगाथा

चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी में वैष्णव काव्य मलयालममें प्रचुर मात्रा में लिखा गया। यह समय उत्तर भारत में भी वैष्णव काव्य की समृद्धि का था। केरल में इसी परंपरा में चेरुश्शेरी नंपूतिरि ने कृष्णगाथा रचकर मलयालम भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाया। चेरुश्शेरी हमारे अध्ययन का विषय है। उनकी रचनाओं और कलात्मक उपलब्धियों के विषय में हम विस्तारपूर्वक एक और अध्याय में विवेचन करेंगे।

भारतगाथा

कृष्णगाथा की शैली की और एक रचना है भारत गाथा। इसका कवि अज्ञात है। कुछ विद्वान भारत गाथा को चेरुश्शेरी की रचना मानते हैं।

---

1. रामकथापाट्टु - प्राक्कथन - डॉ॰ पी॰के॰ नारायण पिल्लै - पृ॰5

लेकिन इसकेलिए प्रमाण उपलब्ध नहीं है । भारतगाथा का आधार महाभारत है । पर इसमें बहुत सी ऐसी कथायें हैं जो महाभारत में नहीं ।

भागवतसुधाद्दु

प्रगीत शैली पर रचित मुक्तकों का संग्रह है भागवतसुधाद्दु । इसके रचयिता का पता नहीं । भागवत् के आधार पर इसकी रचना हुई है । इसकी विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण के प्रति सच्ची भक्ति का प्रतिपादन हुआ है । भाषा की स्वाभाविक मिठास, सरसता, नाद सौन्दर्य, संगीतात्मकता आदि गुण प्रत्येक पद में दिखाई पड़ता है ।

चम्पूकाव्य

संस्कृत में चम्पू काव्यों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । संस्कृत से प्रभावित रहने के कारण मलयालम में भी इस काव्य विधा का यथेष्ट विकास हुआ चम्पू काव्यों के कथानक अधिकतर वैष्णव धर्म से सम्बन्धित है । इस काव्य विधा का पर्याप्त विकास यद्यपि मलयालम में पाया जाता है तथापि हिन्दी में उसका कोई विकास दृष्टिगत नहीं होता । संस्कृत के चम्पू काव्यों की सरणि स्वीकार करते हुए मलयालम में अनेक रचनायें प्रणीत हुईं ।

साहित्यप्रेमी शासक

यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि केरल के शासक संस्कृत के संरक्षक थे और उनकी सभाओं में संस्कृत के बड़े बड़े कवि विराजमान थे । कोषिक्कोड के राजाओं को सामूतिरि (ज़मूरिन) कहकर पुकारते हैं । कोलत्तुनाट के राजाओं को कोलत्तिरी कहते हैं[1] । कोषिक्कोड के प्रसिद्ध ज़मूरिन शासकों तथा

---

1. दक्षिण में कोरप्पुज़ा से उत्तर में कासरकोड तक पूर्व में कुटकु पर्वत से पश्चिम में अरब सागर तक व्याप्त था कोलत्तिरियों का राज्य ।
केरल चरित्रम् - भाग-1 - केरला हिस्टरी असोसियेशन - 1973 - पृ.319

लेकिन इसकेलिए प्रमाण उपलब्ध नहीं है । भारतगाथा का आधार महाभारत है । पर इसमें बहुत सी ऐसी कथायें हैं जो महाभारत में नहीं ।

भागवतप्पाट्टु

प्रगीत शैली पर रचित मुक्तकों का संग्रह है भागवतप्पाट्टु । इसके रचयिता का पता नहीं । भागवत् के आधार पर इसकी रचना हुई है । इसकी विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण के प्रति सच्ची भक्ति का प्रतिपादन हुआ है । भाषा की स्वाभाविक मिठास, सरलता, नाद सौन्दर्य, संगीतात्मकता आदि गुण प्रत्येक पद में दिखाई पड़ता है ।

चम्पूकाव्य

संस्कृत में चम्पू काव्यों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । संस्कृत से प्रभावित रहने के कारण मलयालम में भी इस काव्य विधा का यथेष्ट विकास हुआ चम्पू काव्यों के कथानक अधिकतर वैष्णव धर्म से सम्बन्धित है । इस काव्य विधा का पर्याप्त विकास यद्यपि मलयालम में पाया जाता है तथापि हिन्दी में उसका कोई विकास दृष्टिगत नहीं होता । संस्कृत के चम्पू काव्यों की सरणि स्वीकार करते हुए मलयालम में अनेक रचनायें प्रणीत हुई ।

साहित्यप्रेमी शासक

यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि केरल के शासक संस्कृत के संरक्षक थे और उनकी सभाओं में संस्कृत के बड़े बड़े कवि विराजमान थे । कोष़िक्कोड के राजाओं को सामूतिरि [ज़मूरिन] कहकर पुकारते हैं । कोलत्तुनाट के राजाओं को कोलत्तिरी कहते हैं[1] । कोष़िक्कोड के प्रसिद्ध ज़मूरिन शासकों तथा

1. दक्षिण में कोरप्पुज़ा से उत्तर में कासरकोड तक पूर्व में कुटकु पर्वत से पश्चिम में अरब सागर तक व्याप्त था कोलत्तिरियों का राज्य ।
केरल चरित्रम् - भाग-1 - केरला हिस्टरी असोसियेशन - 1973 - पृ.319

कोलत्तुनाड के कोलत्तिरियों की सभा में बड़े बड़े कवि ही नहीं ज्योतिषी, वेदान्ती, मीमांसक, नैयायिक आदि वर्तमान थे ।

मान विक्रम राजा

सामूतिरि शासकों में ई॰ पन्द्रहवीं शती के एक सामूतिरि [मान विक्रम राजा] का साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्व है । ये कोषिक्कोट में सन् 1467 में राज्य करते थे[1] । ये बड़े प्रतिभा संपन्न कवि रसिक तथा सहृदय थे । उनके दरबार में उन्नीस कवि विराजमान थे जिन्हें साढे अठारह कवि कहते थे । वे संस्कृत के अठारह कवि और मलयालम के एक कवि थे । मलयालम कवि पुनम् नंपूतिरि थे । संस्कृत कवियों के सामने वे अर्ध कवि माने जाते थे । इससे व्यक्त होता है कि संस्कृत के सामने "भाषा" [मलयालम] को कम महत्व दिया जाता था । इन महान कवियों ने संस्कृत में कई ग्रन्थ रचे हैं । इन्होंने काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र पर भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं ।

पुनम् नंपूतिरि

पुनम् नंपूतिरि ने संस्कृत के चम्पू काव्यों के समान मलयालम में रामायण चम्पू लिखा । मलयालम तथा संस्कृत के शब्दों का सुन्दर समन्वय इसमें पाया जाता है । मलयालम के चम्पू काव्यों में सर्वश्रेष्ठ यह है[2] । संस्कृत के पण्डित उन्हें अर्धकवि मानने पर भी काव्य कला की दृष्टि से मलयालम इतिहासकार और कवि उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर उन्हें डेढ कवि ~~मान मानते प्रर~~ मानते हैं[3] । रावणोद्भव, रामावतार, ताटकावध, अहल्यामोक्ष आदि 20 अध्याय इस काव्य में है ।

1• उल्लूर - केरल साहित्य चरित्रम् - भाग - 2, पृ•24

2• वही - पृ•202

3• वही - पृ•204

वाल्मीकि रामायण के आधार पर इसकी रचना हुई है । उत्तररामचरित, आश्चर्यचूडामणि आदि ग्रन्थों का भी अवलंब लिया है । अन्य रसों की अपेक्षा यह कवि हास्य के चित्रण में विशेष दक्ष है ।

भारत चम्पू

रामायण चंपू की कोटि के एक और काव्य है भारत चम्पू । इसके कवि अज्ञात है । जैसा कि नाम से ज्ञात है इसका आधार है महाभारत । यह एक विशिष्ट साहित्यिक रचना है ।

इसी काल में कृष्णाक्तारम, कुचेलवृत्तम्, कंसवधम आदि चंपूकाव्य भी लिखे गए जिनमें वैष्णव धर्म का काफी प्रभाव है ।

कोलत्तुनाड के राजा और उनकी साहित्य सेवा

पन्द्रहवीं शताब्दी के कोलत्तुनाड के राजाओं में साहित्यिक दृष्टि से प्रमुख हैं केरल वर्मा [राज्यकाल सन् 1423-1446], रामवर्मा और उदय वर्मा [सन् 1446-1475] । ये केवल शासक ही नहीं, साहित्य के पुरस्कर्ता भी थे ।

राघवन, शंकर कवि आदि इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार केरल वर्मा के सभासद थे । राघवन ने पदार्थ चिन्तनम् और शंकर कवि ने श्रीकृष्ण विजयम की रचना की ।

केरलवर्मा का भतीजा है रामवर्मा । रामवर्मा ने भारत संग्रहम् नामक एक महाकाव्य लिखा है । केरलवर्मा और रामवर्मा दोनों भाषा प्रेमी तथा कवि थे ।

उदयवर्मा ने मलयालम भाषा और साहित्य को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया । कृष्णगाथाकार चेरुश्शेरी नंपूतिरि इन्हीं के सदस्य थे ।

स्तोत्रकाव्य

इन काव्यों के अतिरिक्त इस युग में बहुत से स्तोत्र काव्य भी प्रणीत हुए । इनमें आकर्षक शैली में गाढ़ भक्ति व्यंजित हुई है । इनके रचयिता प्रायः सबके सब अज्ञात नामा हैं । हो सकता है कि भक्ति प्राचुर्य के कारण उन्होंने अपना नाम गुप्त रखना ही उचित समझा । ये स्तोत्र अत्यन्त भावपूर्ण हैं जिन्हें पढ़कर जनता भक्ति रस सिंधु में डूब जाती थी । कृष्ण की बाललीला और रासक्रीडा स्तोत्रकार कवियों के प्रिय विषय हैं । कवित्व की दृष्टि से भी ये काव्य उत्तम हैं । प्रसादात्मकता इनकी निजी विशेषता है ।

वैष्णव काव्य पन्द्रहवीं शती के बाद

चेरुश्शेरी का युग अनेक कारणों से संक्रान्ति युग कहा जासकता है यहीं से मलयालम का साहित्य सामान्य रूप से और वैष्णव साहित्य विशेष रूप से विकास की दिशा पकड़ता है । चेरुश्शेरी के बाद का मलयालम साहित्य सभी दृष्टियों से उत्कर्ष का साहित्य है । भाषा परिष्कृत और परिमार्जित होकर उत्तरोत्तर विकास पाती रही । उसका स्वरूप स्वतन्त्र और अपने में संपूर्ण बन जाता है । उसका शब्दकोश बढ़ता है । भाव संवहन की शक्ति बढ़ती है । साहित्य का प्रतिपाद्य इतना वैविध्यपूर्ण और विशाल बन जाता है कि वह सभी दक्षिणी भाषाओं का अग्रणी बन जाता है । समृद्धि के संपूर्ण चित्र का अंकन भले ही मनमोहक हो, पर हमारे दायरे के बाहर की चीज़ है । इसलिए चेरुश्शेरी के बाद का मलयालम साहित्य का एक सामान्य दिग्दर्शन ही यहाँ संभव है ।

प्रस्तुत युग के सबसे प्रमुख साहित्यकार हैं पून्तानम् नंपूतिरि, तंचत्तु एषुत्तच्छन, कोट्टयम तंपुरान और उण्णायिवार्यर ।

इनमें एषुत्तच्छन संभवत: दक्षिण भारत के सबसे प्रसिद्ध वैष्णव कवि हैं । उनका जीवन काल सोलहवीं शती का पूर्वार्द्ध है[1] । उनकी अमर रचनायें हैं अध्यात्म रामायणं, महाभारतं, श्रीमद् भागवतम् आदि । अध्यात्म रामायण का केरल में वही स्थान है जो रामचरित मानस का उत्तर भारत में । महाभारतं एक स्वतंत्र काव्य है, जिसमें संपूर्ण महाभारत की कथाओं का स्वतंत्र प्रतिपादन है । काव्य कला की दृष्टि से एषुत्तच्छन की रचनाओं के समकक्ष ठहरनेवाले काव्य मलयालम में संभवत: अब तक नहीं लिखे गये हैं । वैष्णव साहित्य उनके ग्रन्थों में विकास की पराकाष्टा पर पहुँच जाता है ।

पून्तानम् नम्पूतिरि नामक वैष्णव सोलहवीं शताब्दी में जीवित थे[2] । ज्ञानप्पाना, श्रीकृष्णकर्णामृतं, संतानगोपालं आदि उनकी मुख्य रचनायें हैं । उनकी रचनायें गेय हैं और जनमानस में स्थिर प्रतिष्ठित हो चुकी हैं । जैसे सूर तथा अन्य अष्टछाप कवियों का सम्बन्ध वृन्दावन के श्रीनाथ मन्दिर से था उसी प्रकार गुरुवायूर के कृष्ण मन्दिर से सम्बद्ध था पूंतानं का जीवन । आज भी यह मन्दिर कृष्ण भक्तों का आकर्षण केन्द्र है ।

उण्णायिवार्यर कथकलि साहित्य के सबसे सशक्त कवि है । कथकलि एक दृश्य कला है जो केरल की अपनी उपलब्धि के रूप में विश्व के

1· उल्लूर - केरल साहित्य - चरित्रम् - भाग-2, - पृ·496
Travancore State Manual Vol.1, p.400

2· केरल भाषा साहित्य चरित्रं - भाग-2, पृ·40

रंगमंच पर प्रस्तुत है । इसका एक अपना साहित्य भी विद्यमान है[1] । उण्णायिवारियर का नलचरितम् कथकलि अपना सानी नहीं रखता । उसमें कवि की मौलिक प्रतिभा के सैकड़ों उदाहरण उपलब्ध हैं ।

कोट्टयम तंपुरान भी कथकलि काव्य के रचयिता हैं । उनकी मुख्य रचनायें हैं - बकवधं, कल्याण सौगन्धिकं आदि । इनके अतिरिक्त कथकलि साहित्य की श्रीवृद्धि करनेवाले कलाकार हैं इरयिम्मन तंपि, वी॰ कृष्णन्तंपि आदि ।

पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के बाद भी मलयालम में वैष्णव साहित्य की प्रचुर मात्रा में रचना हुई । वर्तमान साहित्यकारों को भी प्रभावित करने की शक्ति राम और कृष्ण में है । लेकिन समय का प्रभाव इस साहित्य पर भी पड़ा । वैष्णव कथा से सम्बन्धित आधुनिक साहित्य भक्ति मूलक या उपासना प्रधान नहीं है । साहित्य को उपासना की उपाधि बनाने का क्रम आज टूट चुका है । वर्तमान साहित्य सामाजिक समस्या को ध्यान में रखकर प्रणीत होता है । व्यक्ति जीवन की समस्या भी उसमें केन्द्रित रहती है । हिन्दी और मलयालम दोनों की स्थिति प्रायः यह है ।

---

1. अन्य केरलीय कलाओं के समान कथकलि का भी विकास मन्दिरों के प्रांगण में हुआ । कूत्तु, कूटियाट्टम आदि नृत्य प्रभेद भी मन्दिरों की छत्र छाया में विकसित हुए थे । कृष्ण भक्ति के प्रसार ने साहित्य, संगीत, नृत्य आदि सभी कलाओं को प्रोत्साहित किया । जयदेव के गीत गोविन्द (अष्टपदी) का प्रचार केरल के मन्दिरों में बहुत पहले ही हो चुका था । संभवतः उसी के अनुकरण में कोषिक्कोट के एक जमुरिन राजा ने कृष्णनाट्टम की पद्धति चलायी । कृष्णनाट्टम गुरुवायूर के कृष्ण मन्दिर में आज भी चलता है । दक्षिण केरल में और एक नृत्य रूप विकसित हुआ जिसे रामनाट्टम् कहते हैं । कृष्णनाट्टम और रामनाट्टम के समवाय से कथकलि नामक नवीन कला का आविर्भाव हुआ । इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका अधिकतर साहित्य वैष्णव धर्म से सम्बन्धित है ।

निष्कर्ष

मध्यकालीन भक्ति साहित्य का प्रेरणा स्रोत आलवारों की रचनायें हैं । आलवारों के उपरान्त दसवीं शताब्दी से आचार्यों का युग आरंभ होता है । इनमें नाथमुनि सर्वप्रथम आचार्य माने जाते हैं । नाथमुनि के बाद यामुनाचार्य का समय आता है । इन्होंने श्री संप्रदाय की नींव डाली और रामानु-जाचार्य को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया । रामानुजाचार्य वैष्णव आचार्यों में सबसे प्रमुख हैं । इनकी शिष्य परंपरा में रामानंद आविर्भूत हुए। हिन्दी भाषा के विकास में रामानन्द का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

रामानन्द की शिष्य परंपरा ने राम भक्ति का प्रचार किया । रामकाव्य के सबसे प्रधान कवि तुलसीदास हैं । तुलसी कृत रामचरित मानस हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है ।

निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों के आधार पर चैतन्य और वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया । वल्लभ मत पुष्टि मार्ग नाम से प्रख्यात है । वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने इस संप्रदाय की उन्नति की । उन्होंने अपने तथा अपने पिता के शिष्यों की एक मण्डली बनायी इसके आठ प्रमुख भक्त अष्टछाप कहे जाते हैं । सूरदास अष्टछाप के सुमेरु हैं । सूरदास के बाद अष्टछाप में नंददास का सर्वश्रेष्ठ स्थान है । अष्टछाप के अन्य कवि हैं - कृष्णदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी

सांप्रदायिक सीमा के बाहर भी अनेक कवियों ने कृष्ण भक्ति को वाणी दी । ऐसे कवियों में मीरां का सर्वश्रेष्ठ स्थान है ।

हिन्दी में कृष्ण काव्य का उद्गम सूरदास आदि अष्टछापि कविय से बहुत पहले हुआ था । हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति की यह धारा शताब्दिय तक अव्याहत बहती रही ।

द्राविड भाषाओं में प्रमुख मलयालम केरल की भाषा है । केरल की संस्कृति में अनादि काल से भक्ति का बीज दिखाई पड़ता है ।

मलयालम साहित्य को स्थूल रूप से दो कालों में बाँटा जा सकता है - प्राचीन काल और आधुनिक काल । प्राचीनकाल में अधिकतर धार्मिक तथा ग्रामीण गीत ही लिखे गये । चीराम कवि कृत रामचरितम मलयालम का प्रथम महाकाव्य है । युद्ध का इतना सुन्दर वर्णन मलयालम में और कहीं नहीं मिलता ।

निरणम् कवि तीन हैं - माधव पणिक्कर, राम पणिक्कर और शंकर पणिक्कर । राम पणिक्कर की रचना कण्णश भागवतम काव्य कला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर काव्य है । निरणम कवियों की कृतियों में भी तमिल प्रभाव स्पष्ट पाया जाता है ।

श्री कृष्णास्तव, भारत संग्रहम, श्रीकृष्ण विजयम, श्रीकृष्णाभ्युदयम्, रामकथापाट्टु आदि भी इस युग के उल्लेखनीय वैष्णव काव्य हैं ।

चेरुश्शेरी के पहले वैष्णव काव्य प्रचुर मात्रा में केरल में रचा गया था । चौदहवीं पन्द्रहवीं शती में भी अनेक वैष्णव काव्य केरल में लिखा गया ।

चेरुश्शेरी नंबूतिरि ने कृष्णगाथा रचकर मलयालम वैष्णव साहित्य को समृद्ध बनाया । कृष्णगाथा की शैली की और एक रचना है भारत गाथा । प्रगीत शैली पर रचित मुक्तकों का संग्रह है भागवतप्पाट्टु ।

संस्कृत के चम्पू काव्यों की सरणि स्वीकार करते हुए मलयालम में अनेक रचनायें प्रणीत हुईं । पुनम नंबूतिरि ने रामायण चम्पू लिखा । रामायण चम्पू की कोटि के एक और काव्य है भारत चम्पू ।

इस युग में अनेक स्तोत्र काव्य भी प्रणीत हुए ।

चेरुश्शेरी के बाद का मलयालम साहित्य सभी दृष्टियों से उत्कर्ष का साहित्य है । प्रस्तुत युग के सबसे प्रमुख साहित्यकार हैं पून्तानम नंपूतिरि, तुंचत्तु एषुत्तच्छन, कोट्टयम तंपुरान और उण्णायि वारियर । इनमें एषुत्तच्छन संभवत: दक्षिण भारत के सबसे प्रसिद्ध वैष्णव कवि हैं । इस युग के बाद भी मलयालम में वैष्णव साहित्य की प्रचुर मात्रा में रचना हुई ।

अध्याय - तीन

सूर और चेरुश्शेरी - जीवन झाँकी

जीवन वृत्त

बड़े खेद की बात है कि भारतीय मनीषा के उत्तमोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करनेवाले महान व्यक्तियों के जीवन वृत्त हम लोगों केलिए प्राय: अप्राप्य है। किंवदन्तियों और जनश्रुतियों पर ही अन्वेषकों को संतोष करना पड़ता है। हमारे प्राचीन काल के भक्त कवियों ने व्यक्तिगत जीवन की सूचना तक अपनी रचनाओं में देना उचित नहीं समझा। इससे यद्यपि उनकी स्वार्थ निरपेक्ष कर्मक्षमता तथा अप्रतिम विनयशीलता का आभास मिलता है, तथापि उनके व्यक्तिगत जीवन की जानकारी, जो काव्यास्वादन और उसके मूल्यांकन के आधुनिक दृष्टिकोण से आवश्यक बन गई है, असंभव हो जाती है। सूर या चेरुश्शेरी से उनके आत्मकथन की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। इसमें संदेह नहीं कि जीवन विषयक कुछ अंतरंग साक्ष्य दोनों के ग्रन्थोंमें मिलते हैं, कुछ बहिरंग साक्ष्य भी प्राप्य हैं, पर इनकी जन्म-मृत्यु-तिथि, जन्मस्थान, माता पिता आदि के विषय में सर्वमान्य रूप से हम कुछ भी नहीं कह सकते।

विद्वानों में मतैक्य की अपेक्षा मतभेद ही अधिक है । फिर भी इस विषय के सम्बन्ध में हम अपनी कुछ मान्यता स्थिर कर सकते हैं ।

किसी कवि का जीवन वृत्त जानने के दो साधन हैं - ‖1‖ अन्त:साक्ष्य और ‖2‖ बहि:साक्ष्य । अन्त:साक्ष्य में उन बातों को ग्रहण किया जाता है जिनका कवि ने अपने काव्य में प्रतिपादन किया है और बहिः साक्ष्य में कवि के समसामयिक अथवा परवर्ती विद्वानों का प्रतिपादन लिया जाता है । इन दोनों साधनों में अन्त: साक्ष्य का अधिक मूल्य है । बाह्य साक्ष्य में समसामयिक विद्वानों का कथन परवर्ती विद्वानों के कथन से अधिक प्रामाणिक है ।

अत: इन दोनों के आधार पर हम पहले सूर की जीवनी का संक्षिप्त परिचय देकर फिर चेकोटी की जीवनी की चर्चा करेंगे ।

सूर की जीवनी

सूरदास के बारे में अन्त: साक्ष्य के रूप में बहुत कम सामग्री उपलब्ध है ।

समय

जन्म संवत् को सूचित करनेवाला कोई ठोस अन्तसाक्ष्य उपलब्ध नहीं । सूर के समय पर प्रकाश डालनेवाला एक पद सूरसारावली में दिखाई पड़ता है । इसके अनुसार उनका रचनाकाल सं॰1607 है । प्रस्तुत पद इस प्रकार है -

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन
शिव विधान तप करयो बहुत दिन ताऊ पार नहीं भीन[1] ।

1• सूरसारावली - पद संख्या - 1002

इस अंश से प्रायः सभी विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सूरसारावली की रचना के समय सूरदास की आयु 67 वर्ष की रही होगी। ऐसी अवस्था में कवि का जन्म सं.1540 ठहरता है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से सूर की भेंट होने का तथा वल्लभ संप्रदाय में उनके दीक्षित होने का समय वि.सं.1567 निश्चित किया गया है[1]। इसी समय गुरु की कृपा से इन्हें हरि लीला का श्रेष्ठ दर्शन हुआ, जो वेद विधान के अनुसार तप करते रहने पर भी उन्हें अब तक नहीं हुआ था[2]।

साहित्य लहरी में प्राप्त एक दृष्टिकूट के आधार पर उसका रचनाकाल विभिन्न विद्वान सं.1607, सं.1617 और सं.1627 मानते हैं। वह पद इस प्रकार है -

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल संवत पेख।
नन्द नन्दन मास, छै से हीन तृतिया बार।
नन्द नन्दन जनम ते है बाम सुख आगार।
तृतीय ऋक्ष, सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन
नन्द नन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन[3]।"

डॉ. मुंशीराम शर्मा उक्त पद की व्याख्या इस प्रकार करते हैं[4]।

---

1. श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूरनिर्णय - पृ.85
2. सूरसारावली पद 1002 (पद पहले उद्धृत है)
3. साहित्य लहरी - पद 109
4. डॉ. मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ (द्वितीय सं.) - पृ.6,7

मुनि = 7, रसन = [रस नहीं] = 0 या रसना = 1 या कार्यों की दृष्टि से [रसास्वादन लेना और बोलना] = 2, रस [रसना के संदर्भ में उल्लेख है - षट्रस] = 6, दशन गौरी नन्द = 1 "अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार उलटकर पढ़ने से संवत् निकला 1607, 1617 या 1627.

साहित्य लहरी के उपर्युक्त पद के आधार पर पं. रामचन्द्र शुक्ल साहित्यलहरी का निर्माण काल सं. 1607 निश्चित करते हैं[1]। सं. 1607, 1617 या 1627 में से 67 वर्ष निकालकर सूरदास की जन्मतिथि का अनुमान किया जा रहा है। सं. 1607 से 67 वर्ष काटने पर उसका जन्म सं. 1540 वि. में, सं. 1617 से 67 वर्ष निकालने पर सं. 1550 में और सं. 1627 से 67 वर्ष निकालने पर सं. 1560 में हुआ होगा।

सूरदास की महाप्रभु वल्लभाचार्य से गऊघाट पर जब भेंट हुई तब वे [सूर] सन्यासी वेश में थे[2]। वल्लभ दिग्विजय के अनुसार यह घटना सं. 1567 के आसपास की है[3]।

सूरदास गोस्वामी विट्ठलनाथ के प्रवासकाल में जीवित थे। उन्हें गोस्वामी जी का यथेष्ट सत्संग प्राप्त हुआ था। गोस्वामी सं. 1628 में स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे[4]। अतः यह अनुमान हो सकता है कि सूरदास कम से कम सं. 1628 के बाद तक जीवित रहे होंगे।

पं. रामचन्द्र शुक्ल तथा कुछ अन्य विद्वान यह मानते हैं कि कवि का जन्म सं. 1540 में हुआ और सूरसारावली तथा साहित्य लहरी की रचना हुई सं. 1607 में[5]। पर प्रभुदयाल मीतल, ब्रजेश्वरवर्मा जैसे आलोचकों की मान्यता

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास - पृ. 140
2. चौरासी वैष्णवन की वार्ता - लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस [सं. 1985] वार्ता प्रसंग-1
3. डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास [तृतीय सं.] - पृ. 2
4. वही - पृ. 2
5. रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास - पृ. 140, 141
   हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 156

यह है कि उक्त दोनों ग्रन्थों की रचना तीन वर्षों में से एक में (सं॰1607, 1617 या 1627) हुई और कवि का जन्म हुआ सं॰1540 में अथवा 1550 में या 1560 में। परन्तु वे इसका कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करते कि वे दोनों ग्रन्थ एक साथ तीन वर्षों में कैसे लिखे गये।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सं॰1542 में हुआ था[1]। कहा जाता है कि सूर का जन्म चैतन्य महाप्रभु के जन्म के एक वर्ष पहले हुआ था[2]। ऐसी अवस्था में सूरदास का जन्म सं॰1541 ठहरता है।

पुष्टि मार्गीय ग्रन्थों की छानबीन करने के उपरान्त प्रो॰ भट्ट ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वल्लभ का जन्म सं॰1530 में हुआ[3]। पुष्टि मार्गीय परंपरा के अनुसार सूरदास आचार्य जी से 10 वर्ष छोटे थे[4]। इसके अनुसार सूर का जन्म सं॰1540 में हुआ है।

दीनदयालु गुप्त,[5] द्वारिकादास परीख तथा प्रभु दयाल मीतल,[6] ब्रजेश्वरवर्मा,[7] नन्ददुलारे वाजपेयी[8] इत्यादि विद्वानों ने सूर की जन्मतिथि सं॰1535 की वैशाख शु॰ 5 मंगलवार मानी है।

हम भी अधिकतर विद्वानों का मत स्वीकार करते हुए सूर का जन्म सं॰1535 अथवा सं॰1540 तर्क संगत स्वीकार करते हैं।

1• बलदेव उपाध्याय - भागवत संप्रदाय - पृ॰500

2• नलिनी मोहन सन्याल - भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास - पृ॰6

3• The evidence in support of the year A.D.1473 (सं॰1530) is earlier and stronger - 'The birth date of Vallabhacharya - the Advocate of Suddhadvait Vedant', Oriental Conference, Trivandrum, p.60 प्रो॰ भट्ट - बरोडा कालेज - सदा समस्त भारत ओरियंटल कांफ्रेन्स, ट्रिवान्ड्रम - पृ॰60

4• "सो श्री आचार्य जी सो बरस दस छोटे हुते - निजवार्ता-श्रीगोकुलनाथ जी-पृ॰24

5• अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (प्र॰सं॰) - पृ॰212

6• सूर निर्णय (प्र॰सं॰) - पृ॰52,53

7• कृष्ण भक्ति साहित्य - हिन्दी साहित्य - द्वितीय खंड - पृ॰384

8• महाकवि सूरदास - पृ॰88

मृत्यु

सूरदास दीर्घायु पर्यंत जीवित थे । डॉ० मुंशीराम शर्मा उनका निधन काल सं०1628 मानते हैं[1] । किन्तु सं०1638 तक उनका उपस्थित रहना अंत:साक्ष्य एवं बहि:साक्ष्य से प्रमाणित होता है । गोस्वामी विट्ठलनाथ का निधन काल सं०1642 निश्चित है[2] । अतएव सं०1638 और सं० 1642 के बीच में सूरदास का गोलोकवास हुआ होगा, यह स्पष्ट है । इस स्थिति में सं०1640 को उनका निधन काल मानने में कोई आपत्ति नहीं[3] ।

नाम

हिन्दी साहित्य में पाँच नाम ऐसे मिलते हैं जो सूरदास के ही नाम है[4] । वे हैं - सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम । इनके अतिरिक्त सूर सुजान, सूरजश्याम, सूरजश्यामसुजान आदि नाम भी मिलते हैं । ये सब या इनमें से कौन कौन हमारे प्रतिपाद्य कवि के नाम हैं - यह निश्चित रूप से कहना कठिन है ।

डॉ० जनार्दन झा के अनुसार सूरज और सूरश्याम महा कवि सूरदास के नाम नहीं । इन नामों के साथ लिखे पदों को वे प्रक्षिप्त मानते हैं[5] ।

---

1. सूरसौरभ (चतुर्थ सं०) - पृ०194
2. डॉ० दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय - भाग-1 (द्वि०सं०)-पृ०70
3. द्वारिकादास परीख तथा प्रभु दयाल मीतल - सूर निर्णय (प्र०सं०) - पृ०104
   डॉ० दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय-भाग-1, पृ०70
   व्रजेश्वर वर्मा - सूरदास - पृ०3
   रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ०615,616
4. गोस्वामी हरिराय - सूरदास की वार्ता - पृ०64,65
   मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ - पृ०17
   कृष्णलाल हंस - सूर दर्शन - पृ०16
5. डॉ० जनार्दन मिश्र - सूरदास (प्र०सं०) - पृ०7

डॉ॰ दीनदयालु गुप्त सब अभिधानों को सूर के ही नाम मानने के पक्ष में हैं[1]। डॉ॰ मुंशीराम शर्मा भी इस दिशा में डॉ॰ गुप्त से सहमत हैं[2]। डॉ॰ मीतल सूरदास का मूल नाम साहित्य लहरी के आधार सूरजचंद मानते हैं। उनके अनुसार सूर इसीका लघु रूप है[3]।

जाति और वंश परिचय

सूरदास उच्च जाति के थे - सारस्वत ब्राह्मण थे - ऐसा हम अनुमान कर सकते हैं। एक पद की अंतिम पंक्ति में उन्होंने लिखा है कि मैं ने भगवत् भक्ति केलिए अपनी जाति को भी त्याग दिया है[4]। उच्च जाति का त्याग ही कुछ महत्व रखता है।

गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र यदुनाथ जी तथा विट्ठलनाथ के सेवक श्रीनाथभट्ट दोनों ने सूरदास को स्पष्ट रूप से ब्राह्मण लिखा है[5]। ये सूरदास के समकालीन थे अत: इनके लेखों पर अधिक विश्वास किया जा सकता है।

सर जार्ज ग्रियर्सन, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, मुंशी देवी प्रसाद आदि सूरदास को चंदबरदाई का वंशज मानते हैं[6]। आगरा का एजुकेशनल गजट व कल्याण का "योगांक" भी उन्हें चन्द का वंशज स्वीकार करते हैं[7]। अत: इसमें कोई संदेह नहीं कि सूर सारस्वत ब्राह्मण थे।

---

1. डॉ॰ दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - प्रथम भाग - पृ॰196
2. डॉ॰ मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ-द्वितीय भाग - पृ॰ 90
3. द्वारिका दास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूर निर्णय - पृ॰48
4. "स्वामी के कारण तजी जाति अपनी" - सूरसागर - पद 2076
5. ततो ब्रजमागमत्ते सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीत:
   वल्लभ दिग्विजय - पृ॰50
6. नन्द दुलारे वाजपेयी - महाकवि सूरदास - पृ॰92
7. वही - पृ॰92

माता-पिता, पारिवारिक जीवन, निवास स्थान

सूरदास के माता पिता तथा सन्यास ग्रहण के पूर्व के उनके जीवन क्रम का कोई निश्चित विवरण नहीं मिलता । चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार सूर का निवास स्थान गऊघाट है[1]। यह स्थान आगरा-दिल्ली सड़क पर है । भक्त विनोदकार मियांसिंह यह श्रेय मथुरा को देना चाहते हैं[2]। श्री मुंशीराम शर्मा का कथन है कि सूर के पिता रामचन्द्र आगरा के निकट गोपाचल में रहते थे[3]। सूर से बड़े तीन भाई और थे और इनके माता पिता निर्धन थे[4]।

बाल्यकाल

सूर के बाल्यकाल की जानकारी का एकमात्र साधन हरिराय कृत भावप्रकाश है । इस ग्रन्थ से ज्ञात पड़ता है कि सूरदास केवल छः वर्ष की अवस्था तक अपने पिता के साथ रहे । उसके बाद गृहत्याग किया और अपनी जन्मभूमि से आठ मील की दूरी पर स्थित एक ग्राम में 18 वर्ष की अवस्था तक रहे । भक्त विनोद के लेखक श्री मियांसिंह ने लिखा है कि आठ वर्ष की अवस्था में सूर का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ । इसके पश्चात् वे मथुरा गये और वहाँ कुछ समय रहकर बाद में मथुरा और आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान में यमुना नदी के तट पर रहने लगे[5]।

साधु संगति से सूर ने ज्ञान पाया और किसी भक्त से गान विद्या सीखी होगी । वल्लभाचार्य से भेंट होने के पहले भी वे काव्य रचना करते थे ।

---

1. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस - सं. 1985) वार्ता प्रसंग-1
2. मुंशीराम शर्मा - सूरसौरभ - पृ. 15 में उद्धृत
3. मुंशीराम शर्मा - सूरसौरभ - पृ. 16
4. ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास - पृ. 11
   दीनदयालु गुप्त - सूरप्रभा (1966) - पृ. 8
5. कृष्णलाल हंस - सूरदर्शन - पृ. 32

उनको वाक् सिद्धि भी प्राप्त हुई थी[1]। सूर की कृष्ण भक्ति और वाक् सिद्धि समझकर ही वल्लभाचार्य ने इन्हें अपने संप्रदाय में दीक्षित किया। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि साहित्य और संगीत दोनों में वे बाल्यकाल से ही निष्णात थे। उनकी औपचारिक शिक्षा दीक्षा का कोई विवरण नहीं।

अंधा कवि

सूर दास अंधे थे यह सब स्वीकार करते हैं किन्तु वे जन्मान्ध थे या नहीं इसे लेकर काफी वाद विवाद हुए हैं। कवि ने स्वयं अपने को अनेक स्थानों पर अंधा कहा है[2]। "जन्म अंध दृग ज्योति विहीना" [मियाँ सिंह कृत भक्त विनोद] "जनमहि ते है नैन विहीना" [रघुराज सिंह कृत राम रसिकावली][3] जैसे बाह्य साक्ष्य से भी सूर की अंधता व्यक्त हो जाती है।

सूर को जन्मान्ध न मानने वाले लोग कहते हैं कि सूर जन्म से अन्धे नहीं थे, बाद में वे अंधे हो गए। इसके प्रमाण भी मिलते हैं। चौरासी वैष्णव की वार्ता में प्रतिपादित है कि सूर ने चौपड़ खेलते हुए लोगों को देखा[4]।

---

1. डॉ० दीनदयालु गुप्त - सूरप्रभा [1966] - पृ०9
2. [1] यहै जिय जानि कै अन्ध भव त्रास तैं।
   सूर कामी कुटिल सरन आयो ।। सू० सा० 1·5
   [2] सूरदास सौं कहा निहोरौ नैनन हूँ की हानि। सू०सा० 1-339
   सू०सा० 1-180, 1-192, 1-195, 1-198, 6"166 आदि पद
3. सूरदास की वार्ता : संपादक प्रेमनारायण टंडन [प्र०सं०] - पृ०26
4. खेल देखकर सूर ने कहा - "सो या चौपड़ मे एते लीन हैं जो कोउ आवते-जावते की सुधि नाही .... जो देखो या प्रानी कैसो अपनो जनमारो खोवत है।"
   अष्टछाप - सं०डॉ० धीरेन्द्र वर्मा [सूरदास की वार्ता में चौथी वार्ता]

रंगों हावभावों, जीवन तथा शरीर के सूक्ष्म व्यापारों का उनके काव्य में वर्णन है । जन्मांध केलिए इसप्रकार का वर्णन संभव नहीं[1] ।

विपक्ष के विद्वान इसका प्रतिवाद करते हुए लिखते हैं कि सूर दिव्य दृष्टि संपन्न कवि थे और उनकेलिए अभीप्सित वस्तु वर्णन केलिए चर्मचक्षु की आवश्यकता नहीं[2] ।

सूर ने कई पदों में अपने को स्पष्ट रूप से जन्मान्ध कहा है[3] । जन्मांध न होने पर क्यों वे अपने को जन्मांध कहे ? सो भी अनेक बार ? सूर के समकालीन कवि श्रीनाथ भट्ट ने स्पष्ट रूप से उन्हें जन्मान्ध कहा है - "जन्मान्धो सूरदासोऽभूत्"[4] अन्य समकालीन कवि प्राणनाथ ने भी सूर की जन्मांधता की ओर संकेत किया है[5] ।

---

1. (1) नन्ददुलारे वाजपेयी - महाकवि सूरदास - पृ.95
   (2) वही - सूर सन्दर्भ - पृ.34
   (3) श्याम सुन्दरदास - हिन्दी साहित्य - पृ.185
   (4) ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास (तृतीय सं.) - पृ.31
   (5) रामचन्द्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास (पन्द्रहवां सं.) - पृ.156, 157
2. डॉ. दीनदयालु गुप्त - वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप के कवि - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (पंचम भाग) - पृ.55

   द्वारिका दास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूरनिर्णय - पृ.64-65
3. "सूर की बिरियाँ निठुर होई बैठे जन्म अंध करयो"

   "रहो जात एक पतित, जनम को आंधरो सूर सदाको"

   "करम हीन जनम को अंधौ, मोतें कौन नकारो ।"
4. श्रीनाथ भट्ट - संस्कृत मणिमाला - श्लोक - 1 (सूरदास की वार्ता - सं. प्रेमनारायण टंडन - पृ.25
5. अष्ट सखामृत से सूर निर्णय में उद्धृत - पृ.70

केवल काव्य में वर्णित विषयों और वस्तुओं के आधार पर सूर को जन्मान्ध नहीं मानना तर्कसंगत नहीं है । कवि प्रज्ञावान् होते हैं । वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान ही काव्य का कारण नहीं है । उसकेलिए प्रातिभ ज्ञान [इन्ट्यूटीव नोलेज] ही अधिक आवश्यक है । वही काव्य की जनयित्री है । सूर में प्रातिभ-ज्ञान अत्युच्च कोटि का वर्तमान था । उसके आधार पर उन्होंने जगत के पदार्थों का सूक्ष्म वर्णन किया है । [प्रातिभ ज्ञान की असाधारण शक्ति का समर्थन आधुनिक विचारक भी स्वीकार करते हैं[1] ।

शिक्षा दीक्षा और ज्ञान

सूरदास का काव्य उनकी उच्च शिक्षा, विस्तृत अनुभव, लौकिक विषयों के गंभीर और सूक्ष्म ज्ञान तथा गंभीर आध्यात्मिक चिंतन का प्रत्यक्ष प्रमाण है । काव्य और संगीत दोनों में वे असाधारण रूप से व्युत्पन्न थे । काव्य के विषय में ऐसी कौन सी बात है, जो सूर सागर में न मिल सकें ? वस्तुतः सूरसागर हमारे साहित्य की सबसे प्रौढ रचना है[1] ।

सूर की आरंभिक शिक्षा के बारे में कोई बात ज्ञात नहीं है । चौरासी वैष्णवन की वार्ता में यह उल्लेख है कि जिस समय सूरदास अपने गाँव से चार कोस दूर के एक स्थान पर रहते थे, वहाँ वे पद बनाते थे, और गान विद्या का सब साज उन्होंने इकट्ठा कर लिया था[2] ।

वल्लभ से साक्षात्कार

सूरदास के जीवनवृत्त में सबसे महत्वपूर्ण घटना उनका महाप्रभु वल्लभाचार्य से साक्षात्कार होना है । यह घटना सन् 1510 ई० के आसपास की है ।

1• ब्रजेश्वरवर्मा - सूरदास [तृतीय सं०] - पृ०14

2• अष्टछाप - कांकरौली - पृ०9

बचपन से ही सूर सांसारिक माया मोह से विरक्त थे । गृहत्याग उन्होंने पहले ही किया था । आध्यात्मिक जीवन की ओर उनकी प्रवृत्ति प्रबल हो चुकी थी । ऐसी स्थिति में ही महाप्रभु वल्लभाचार्य से उनका साक्षात्कार हुआ[1] । महाप्रभु ने सूरदासको श्रीमद् भागवत के अनुसार भागवत्लीला सुनाई । आचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात सूर ने श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन सेवा का कार्य करते हुए अपना शेष जीवन बिताया । हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "महाप्रभु के संसर्ग में आने के बाद सूरदास ने अपना पुराना रास्ता छोड़ दिया और अपने गानों का मुख्य विषय भागवत् लीला को ही बना लिया[2] ।"

जीवन की अन्य प्रमुख घटनायें

श्रीनाथ जी का कीर्तन करते हुए सूर ने सहस्रों पद बनाये । उनकी प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गई । तत्कालीन भारत सम्राट अकबर ने भेंट की इच्छा प्रकट की । अकबर से सूर की भेंट दिल्ली या मथुरा[3] में हुई । भेंट का समय दीनदयालु गुप्त सं॰1636[4] और नन्ददुलारेवाजपेई सं॰1623 और सं॰1628 के बीच मानते हैं[5] । भेंट के समय अकबर ने सूरदास से अपना यशोगान सुनना चाहा तब सूर ने "मना रे करि माधो सों प्रीति" गाया । अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला कि परमेश्वर ने इतना बड़ा राज्य दिया है, सब मेरा यश गाते हैं, तुम भी कुछ गाओ[6] । तब सूरदास ने निम्न लिखित पद गाकर सम्राट को स्पष्ट रूप से बता दिया कि कृष्ण को छोड़कर न किसी के लिए हृदय में स्थान है और न किसी के यश का गान करना ही उन के लिए संभव है :-

---

1· ब्रजेश्वरवर्मा - सूर मीमांसा (1961) - पृ॰39
2· हजारी प्रसाद द्विवेदी - सूर साहित्य (1973) - पृ॰148
3· नन्ददुलारे वाजपेई : महाकवि सूरदास (1976) - पृ॰103
4· दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - पृ॰218
5· नन्ददुलारे वाजपेई - महाकवि सूरदास - पृ॰103
6· अष्टछाप - सूरदास की वार्ता - सं॰ धीरेन्द्रवर्मा

"नाहिन रह्यो मन में ठौर
नंद नंदन अछत कैसे आनिए उन और"

बाबा बेनी माधवदास रचित मूल गोसाईं चरित से सं॰1616 वि॰ में सूरदास की गोस्वामी तुलसीदास से श्रीविट्ठलनाथ जी का साथ आम्नाय पूरि जाते समय मार्ग में कामतानाथ पर्वत पर भेंट होना ज्ञात होता है। बाबा बेनी माधव दास ने इसका वर्णन किया है[1]।

सोरह सौ सोरह लगे कामद गिरि ढिग वास।
शुचि एकांत प्रदेश मंह आये सूर सुदास ।। (मूल गोसाईं चरित)

दो महान प्रतिभाओं का यह महान संगम अवश्य अत्यन्त दिव्य ही रहा होगा। भक्ति के दो प्रमुख स्तंभों का यह परस्पर मिलन अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्व का होता है। यद्यपि तुलसी प्रमुख रूप से राम भक्त थे फिर भी कृष्ण के प्रति भी उनकी आस्था कम नहीं थी। वे बड़े समन्वयवादी थे, भक्ति तथा दर्शन दोनों क्षेत्रों में। सूर की कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ भक्ति संभवतः इसमें प्रेरक रही होगी।

महाप्रभु वल्लभाचार्य की दृष्टि में सूर भक्ति के सागर हैं और विट्ठलनाथ जी की सम्मति में पुष्टिमार्ग के जहाज। उनका सूरसागर काव्यामृत का असीम सागर है। वे महात्यागी, अनुपम विरागी और परम प्रेमी भक्त थे। भगवान की लीला का गुणगान ही उनकी अपार, अक्षय और अक्षुण्ण सम्पत्ति थी[2]।

सूरदास ने आजीवन श्री गोवर्द्धन नाथ जी के चरणों में बैठकर ब्रजभाषा काव्य के रूप में जो भागीरथी बहाई उसका वेग आज भी तिलमात्र क्षीण नहीं हुआ है[3]।

---

1. नन्ददुलारे वाजपेयी - महाकवि सूरदास - पृ॰103 से उद्धृत
2. डॉ॰ रामचरण लाल शर्मा - हिन्दी साहित्य में अष्टछापी और राधा वल्लभीय काव्य - पृ॰36
3. धीरेन्द्र वर्मा - ब्रजभाषा व्याकरण - पृ॰12

चेरुशेरी का जीवन वृत्त

ऊपर हमने सूर के जीवनवृत्त का संक्षेप में प्रतिपादन किया । मध्य युग के मलयालम के प्रसिद्ध कवि चेरुशेरी का जीवन वृत्त संक्षेप में अब उपस्थित करेंगे ।

जैसे सूर के जीवन चरित्र की सामग्री अनुपलब्ध है उसी प्रकार चेरुशेरी की भी जीवनी की सामग्री अप्राप्य है । इस दिशा में जनश्रुतियों और इधर उधर विकीर्ण कुछ अंत:साक्ष्य-बाह्य साक्ष्यों का ही अवलम्बन लेना पड़ता है । हिन्दी में सूर की जीवनी पर अनुसंधान बहुत हो चुका है, पर मलयालम में चेरुशेरी की जीवनी पर बहुत कम ही अध्ययन अभी तक हुआ है । केवल चेरुशेरी के सम्बन्ध में ही यह बात नहीं एजुत्तच्छन, पूंतानम्, नंप्यार जैसे मलयालम के अन्य कवियों के सम्बन्ध में भी स्थिति प्राय: यही है ।

कृष्णगाथा की रचना करनेवाला कवि चेरुशेरी नम्बूतिरि है - इसमें प्राय: सभी इतिहासकार एकमत रखते हैं । चेरुशेरी का वास्तविक नाम क्या है जन्म कब और कहाँ हुआ आदि बातें निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । इस सम्बन्ध में अंत साक्ष्य से हमें कुछ भी सहायता नहीं मिलती । जनश्रुतियां अवश्य प्रचलित हैं, किन्तु उनकी प्रामाणिकता आंकने केलिए कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है । फिर भी इन्हीं से तथ्यों का आकलन करना पड़ता है ।

समय और जन्म स्थान

महाकवि उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर ने "केरल साहित्य चरित्रम्" में उनका समय सन् 1446 से 1476 के बीच माना है[1] । डॉ॰ चेलनाट अच्युत मेनोन, श्री॰ पी॰गोविन्द पिल्ले आदि विद्वानों का मत है कि उनका समय सन् 1475 और

1॰ महाकवि उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रम् - भाग-1 पृ॰126

सन् 1575 के बीच में है[1]। ये अवश्य 15 वीं शताब्दी के कवि थे। कई अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य देकर मलयालम के पंडित वडक्कुंकूर राजराजवर्मा ने उनके समय को सन् 1425 और 1525 के भीतर रखा है[2]। सन् 1445 से 1475 तक उदयवर्मा ने उत्तर केरल के कोलत्तुनाट् राज्य में राज काज किया था। उसी राजा के शासन काल में कृष्णगाथा की रचना हुई[3]। टी॰ बालकृष्णन नायर ने बताया है कि उदय वर्मा का समय कोल्लवर्ष 621 से 640 तक है[4]। और इसी समय में कृष्णगाथा की रचना हुई[5]।

उत्तर केरल के कोलत्तुनाट राज्य में 12 गाँव थे। उनमें एक है चेरुशोरी गाँव। सभी गाँवों में सबसे छोटे होने के कारण उसका नाम चेरुशेरी पड़ा। उस ग्राम में एक प्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार था। उस परिवार का नाम भी शायद चेरुशोरी था[6]। इसी परिवार में कृष्णगाथाकार कवि का जन्म हुआ। कुछ विद्वान कवि का वास्तविक नाम शंकरन मानते है लेकिन बाद में वह चेरुशोरी नाम से प्रसिद्ध हो गया[7]।

---

1. पी॰ गोविन्द पिल्ले - मलयालम भाषा चरित्रम [दूसरा सं॰] - पृ॰157-158
2. कवितिलक साहित्य रत्न वडक्कुंकूर राजराजवर्मा - कृष्णगाथा प्रवेशिका [पहला संस्करण] - सन् 27
3. ए॰ श्रीधर मेनन - केरल चरित्रम [1967] - पृ॰221
   मारोरि माधव वार्यर - कुंजन तो [मलयालम साहित्य का इतिहास] प॰भा॰पृ
4. कोल्लवर्ष - मलयालम वर्ष है। सन् 825 में इसका आरंभ हुआ। तिरुविताँकूर के उदयमार्तण्ड ने इसका आरंभ किया।
   श्रीकण्ठेश्वर जी पद्मनाभ पिल्ले - शब्दतारावली - पृ॰537
5. टी॰ बालकृष्णन नायर - चेरुशोरी भारतम् - भूमिका [1938] - पृ॰19
6. वही - पृ॰2,8,10
7. वही - पृ॰10

क्या पुनम् और चेरुशेरी दोनों एक है ?

उत्तर केरल में चेरुशेरी और पुनम प्रसिद्ध ब्राह्मण घराने थे। एक दूसरे से मिले रहते थे[1]। इसलिए कृष्ण गाथा की रचना करनेवाले पुनम नंपूतिरि है ऐसा बताने वाले विद्वान भी है[2]। कुछ लोग पुनम नामक प्रसिद्ध मलयालम चंपूकार और चेरुशेरी में भेद नहीं मानते। वटक्कुंकूर राजराजवर्मा बताते हैं - "पुनम् नामक केरल ब्राह्मण परिवार उत्तर केरल में आज भी है। उस परिवार के लोग अभिमान के साथ विश्वास करते हैं कि अपने पूर्वज कृष्णगाथाकार है। उत्तर मलयालम के लोगों का मत भी यही है[3]।"

शोध कार्य करते हुए विरक्कल टी. बालकृष्णन नायर ने कई प्रमाणों से स्थापित किया है कि चेरुशेरी और पुनम दो घराने मिल गए थे। इसलिए दोनों नामों से एक कुटुंब के व्यक्ति प्रसिद्ध हो गये[4]।

आश्रयदाता

सन् 1445 से 1475 तक उत्तर केरल के कोलत्तुनाट राज्य में [वर्तमान कालिकट-मलप्पुरम जिला के अंतर्गत] उदयवर्मा नामक राजा ने शासन किया था[5]। कवि चेरुशेरी उसी राजा के दरबार में रहते थे। राजा की आज्ञा से कवि ने कृष्णगाथा की रचना की - इसके बारे में अंतसाक्ष्य है।

आज्ञया कोल भूपस्य प्राज्ञस्योदयवर्मण:
कृतायां कृष्णगाथायां[6] ।।

---

1. अप्पन तम्पुरान - भूतलमाला दूसरा भाग - पृ.9
2. कटत्तनाट पोरलातिरि उदयवर्मा राजा और के.सी. नारायण नंप्यार - ज्ञानोदय मासिका - साहित्य चरित्रं प्रस्थानङ्ङळिलूटे - पृ.340 में उद्धृत
3. केरल साहित्य चरित्रम् - पहला भाग [1967] - पृ.241
4. टी.बालकृष्णन नायर - चेरुशेरी भारतम् - पृ.10
5. ए. श्रीधर मेनवन - केरल चरित्रम् [1967] - पृ.221
6. कृष्णगाथा का अन्तिम पद

कृष्णगाथा के आरंभ में भी कवि यह स्पष्ट करते हैं[1]। कहा जाता है कि पुनम् शंकरन नंपूतिरि को सन् 1454 में राजा ने एक पुरस्कार दिया[2]। अनुमान है कृष्णगाथा की रचना के उपलक्ष्य में ही राजा ने कवि को पुरस्कार दिया।

उदयवर्मा का शासनकाल ऐश्वर्य पूर्ण था। उनकी सभा में दो प्रसिद्ध कवि थे - कोट्टूर नंप्यार और शंकरन नंपूतिरि[3]। कोट्टूर की रचना है नलकथा, कुचेलकथा, पत्तुवृत्तं और सुभद्राहरणं[4]। शंकरन नंपूतिरि की रचना है कृष्णगाथा।

कृष्णगाथा लिखने की प्रेरणा चेरुश्शेरी को कैसे प्राप्त हुई, इसकी कथा मनोरंजक है। शतरंज खेलना उन दिनों राजाओं केलिए मनोरंजन का प्रमुख साधन था। एक दिन उदयवर्मा अपने सभासद चेरुश्शेरी के साथ शतरंज खेल रहे थे। पास ही में रानी अपने नन्हे बच्चे को पालने में लिटा कर लोरी सुना रही थी। रानी भी शतरंज की दाँव पेंच खूब जानती थी और ध्यान से खेल देख रही थी। जब उसने जान लिया कि अपने पतिदेव हारनेवाले हैं तब सुरीली तान में एक गाना गाकर राजा को सुझाया कि प्यादे को आगे बढाओ। राजा ने तुरन्त वैसा ही किया और बाजी मार ली। रानी का वह गाना राजा के कानों में गूँजता रहा। उस तान ने उनके मन को मोह लिया। उसी राग में एक सुन्दर काव्य रचा जाय तो कितना अच्छा हो, विचार आते ही राजा ने अपने आश्रित तथा प्रतिभा संपन्न कवि चेरुश्शेरी से अनुरोध किया कि रानी ने जिस राग में गाना गाया उसी में भागवत् के दशमस्कन्ध के आधार पर श्रीकृष्ण चरित पर गेय काव्य बनाया जाए[5]।

राजा की आज्ञा पाकर कवि ने कृष्णगाथा लिखी जिसकी कीर्ति की ध्वनिमा अब चारों दिशाओं में व्याप्त है।

---

1. कृष्णगाथा - कृष्णोत्पत्ति - 44-48
2. प्रो॰ पत्मनाभन उण्णि - गाथा साहित्य - साहित्य चरित्र प्रस्थानङ्ङळिलूटे-पृ॰1
3. टी॰बालकृष्णन नायर - चेरुश्शेरी भारतम् - पृ॰13
4. वही - पृ॰14
5. उळ्ळूर एस परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रम् [दूसरा भाग] [1970] पृ॰144

कवि का व्यक्तित्व

चेरुश्शेरी के व्यक्तित्व का गौरव उनकी कवित्व शक्ति और भक्ति पर प्रतिष्ठित है। कृष्णगाथा उनकी मौलिक प्रतिभा की देन है[1]। सांसारिकता से मोक्ष प्राप्त करने केलिए उन्होंने भक्तों को वैराग्य का मार्ग दिखाया[2]। वे काव्यानन्द तथा वेदान्त ज्ञान दोनों पर बल देते थे[3]। अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करने केलिए ही उन्होंने आराध्य की कथामनोहर गेय काव्य के रूप में प्रस्तुत की[4]। उनका यह भी विश्वास था कि उनकी कविता क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करेगी[5]। पतितों के उद्धार केलिए उन्होंने भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। और जन कल्याणकारी सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया[6]।

गाथाकार की भाषा एक नया आदर्श प्रस्तुत करती है। भाषा क्षेत्र में वे अत्यन्त स्वतंत्र थे, किसी प्रकार का बंधन नहीं स्वीकार करते थे।

वस्तुत: चेरुश्शेरी के पहले ही उत्तर केरल में गीतिकाव्य की समृद्ध परंपरा वर्तमान थी। कवि ने उसका अपने काव्य में अनुसरण किया। पौराणिक परंपरा का पालन करते हुए वे साहित्य जगत् में परिवर्तन लाए। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है[7]। शताब्दियों तक चेरुश्शेरी का प्रभाव केरल के साहित्य जगत् में बना रहा[8]। रसिक, जन प्रिय एवं प्रभावशाली कवि के रूप में चेरुश्शेरी सदा स्मरणीय रहेंगे।

---

1. डॉ॰ भास्करन नायर – हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य – पृ॰50
2. कृष्णगाथा – मंगलोदय प्रकाशन [1956] – पृ॰2
3. एम॰ माटोमी –कुंचन वरे [1962] – पृ॰226,227
4. कृष्णगाथा – मंगलोदय प्रकाशन – पृ॰676,677
5. डॉ॰ एम॰जार्ज – केरल की भक्ति साधना – अध्याय – 5
6. कृष्णगाथा – मंगलोदय प्रकाशन – पृ॰674
7. डॉ॰ सी॰एल॰ मेनोन – ग्लुस्सन एण्ड लिजु एज – पृ॰42
8. डॉ॰ एम॰जार्ज – भक्ति आन्दोलन और साहित्य [1978] – पृ॰421

चेरुश्शेरी संस्कृत के बड़े विद्वान थे । अपनी मातृभाषा मलयालम के प्रति उन्हें विशेष ममता थी, इसी कारण उन्होंने उसे अपनी काव्य रचना का माध्यम बनाया । वे उच्च कोटि के भक्त भी थे । श्रीमद् भागवत् तथा उसके द्वारा निरूपित कृष्णोपासना उनकी काव्य प्रेरणा रही । भगवान की दिव्य लीलाओं ने उनके भावुक हृदय को प्रेम लक्षणा भक्ति से उन्मथित किया होगा उनकी रचना - कृष्णगाथा - इसका प्रमाण है ।

तुलनात्मक दृष्टि

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि है सूरदास । शायद तुलसीदासको छोड़ दूसरा कोई उनकी कवित्वशक्ति को चुनौती दे नहीं सकता । जीवन की अंतर्वृत्तियों की आराधना में अत्यन्त सहजता से उनकी प्रतिभा प्रवेश करती है । यह सहजता अन्यत्र अलभ्य है । सूर की कालातिशायिनी जनप्रियता का संभवत: रहस्य यह है । मलयालम में चेरुश्शेरी का भी वैसा ही ऊंचा स्थान है जैसा हिन्दी में सूरदास का । कृष्णगाथाकार गाथा-पद्धति के सर्वोत्तम कवि हैं । इस क्षेत्र में कोई उनकी समानता नहीं कर सकता ।

गेयता कविता की प्राणशक्ति है । वही उसे शाश्वत बना देती है सूर की कविता अगर गेय नहीं होती तो संभव है वह इतनी जन प्रिय नहीं होती । चेरुश्शेरी के काव्य को भी चिरस्थायी बनाने वाला प्रमुख तत्त्व उसकी गेयता है ।

सूरदास ने काव्य में राग-रागिनियों को प्रचलित किया एवं उन्होंने कविता की रमणीयता भर दी । चेरुश्शेरी की बनायी पद्धति - गेय शैली में गाथा पद्धति - आज भी अपना प्रभाव बनाए रखती है। उस पद्धति पर आज भी काव्य प्रणीत हो रहा है ।

वैयक्तिक जीवन में सूर पूर्ण रूप से विरक्त थे । उनका जीवन भगवान की उपासना केलिए समर्पित था । कृष्ण के जीवन के विविध संदर्भों से सम्बन्ध गीतों की रचना में ही उनका सारा समय व्यतीत हुआ ।

सामाजिक उथल - पुथलों से वे कोसों दूर थे । ऐसे होने के कारण जीवन की प्रत्यक्ष विकृतियों से उनका शायद परिचय ही न था । वे एकदम आत्माराम थे । पर चेरुशेरी इस दिशा में सूर से भिन्न हैं । वे वैरागी या जितेन्द्रिय न थे । एक राजा के सभासद थे । इसलिए सांसारिक जीवन की जटिलताओं के निकट संपर्क में रहते थे । इस स्थिति में उनके व्यक्तित्व को एकदम भिन्न भाव प्रदान किये हैं । जीवन का यह अंतर उनके काव्य में भी स्फुटित होता है । चेरुशेरी की कविता सूर की अपेक्षा अधिक जीवन गन्धी रहती है ।

जहाँ तक काव्य की बात है सूर और चेरुशेरी में भिन्नता की अपेक्षा समता अधिक पायी जाती है । दोनों कृष्ण के अनन्य उपासक थे । दोनों ने श्रीमद् भागवत और उसके द्वारा प्रतिपादित भक्ति पद्धति का ही समर्थन किया । जहाँ सूर केलिए यह भक्ति पद्धति जीवन की अनिवार्यता थी वहाँ चेरुशेरी में यह उपार्जित ही पायी जाती है । जीवन की अनिवार्यता में जो सहजता विद्यमान है वह उपार्जन में पायी नहीं जा सकती । दोनों कवियों के व्यक्तित्व तथा काव्य में यह अंतर सर्वत्र स्पष्ट है । सूर की दृष्टि में भगवान की भक्ति ही सबसे बड़ी वस्तु है । जीवन के समस्त कष्टों और संकटों का वे प्रभु के स्मरण मात्र से निवारण करते हैं । वे अपने को उनकेलिए समर्पित करते थे । जो कुछ उनका देय था उसे स्वीकार कर तृप्त होते थे । यह समर्पण भावना चेरुशेरी में प्राप्त नहीं होती । चेरुशेरी सांसारिक जीव है । उनकी भक्ति भी तदनुसारिणी है । यही कारण है कि उनके वर्णन में सांसारिकता बहुत ही स्पष्ट पायी जाती है ।

निष्कर्ष

जिस प्रकार सूर के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं उसी प्रकार चेरुशेरी के जीवन के सम्बन्ध में भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं ।

सूर का जन्म वि.सं. 1535 अथवा सं.1540 में हुआ । शिक्षा, बाल्यकाल आदि के बारे में भी कोई विवरण प्राप्त नहीं । गौघाट में निवास करते थे । उनका देहान्त सं.1640 में हुआ ।

सूर वल्लभाचार्य के शिष्य थे । उन्होंने सं.1567 में वल्लभ से शिक्षा ग्रहण की । वल्लभ के आदेशानुसार उन्होंने श्रीमद् भागवत को गाया है । सूरदास नाम के अनेक व्यक्ति थे । सूर सारस्वत ब्राह्मण थे । वे अन्धे थे । कुछ लोग उनको जन्मान्ध नहीं मानते । हमारे विचार से वे जन्मान्ध थे । प्रातिभ ज्ञान के अनुसार ही उन्होंने काव्य में व्यक्तियों और रूपों का वर्णन किया है ।

सूरदास उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे । साहित्य, संगीत आदि विविध कलाओं में व्युत्पन्न थे । सूरसागर उनकी प्रतिभा और रचना कौशल का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है । वल्लभ का शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद सूर ने अपना जीवन क्रम ही बदल लिया । श्रीनाथ मन्दिर में निवास करते हुए भगवद् भजन में वे पूर्ण रूप से निमग्न थे । सूर सांसारिक मोह से सर्वथा अलग रहे । कृष्ण के अतिरिक्त और किसी की स्तुति करना वे पसन्द नहीं करते थे । सूर बालकृष्ण के उपासक थे । और उनकी भक्ति संपूर्ण शरणागति [प्रपत्ति] की भक्ति है ।

चेरुश्शेरी

चेरुश्शेरी का जीवन काल अनुमानत: सन् 1425 और 1525 के बीच में है । चेरुश्शेरी तत्कालीन कोलत्तुनाट [कालिकट के पास] के शासक उदयवर्मा के सभासद थे । चेरुश्शेरी घराने का नाम है । कवि का वास्तविक नाम अज्ञात है । कुछ लोग उनका इल्लीनाम शंकरन नंपूतिरि मानते हैं । वे भी ब्राह्मण थे । उदयवर्मा की प्रेरणा से ही कृष्णगाथा की रचना की । कृष्णगाथा का आधार श्रीमद् भागवत है । भागवत की भक्ति पद्धति कवि ने स्वीकार की ।

अध्याय - चार

सूर और पेट्रोरी की रचनायें

सूर साहित्य

महाकवि सूरदास के जन्मकाल, माता पिता, मृत्युकाल आदि की तरह उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में भी कम मतभेद नहीं है । इस विषय में अभी तक पर्याप्त खोज की जा चुकी है, फिर भी सूर की कही जानेवाली रचनाओं में वास्तव में कौन कौन सी उनकी कृतियाँ हैं, इस सम्बन्ध में अभी तक कोई सर्वमान्य मत स्थिर नहीं किया जा सका । केवल सूरसागर को सभी विद्वान एक स्वर से सूर की रचना मानते हैं, पर उसके कुल कितने पद थे, और कितने प्राप्त हैं, यह अभी विवादास्पद है ।

रचनाएं

नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण में सूर सागर के अतिरिक्त निम्न रचनाओं का परिचय दिया गया है ।

1. ब्याह लो[1] - विवाह संबन्धी 23 पद
2. पद संग्रह[2] - सामान्य धर्मोपदेश संबन्धी 417 पद
3. दशमस्कंध[3] - भागवत् दशमस्कंध की कथा के 1913 पद
4. नागलीला[4] - कालियदमन की कथा के 40 पद
5. भागवत्[5] - दशमस्कंध के अतिरिक्त भागवत् के शेष 11 स्कन्धों की कथा के 1126 पद।
6. सूर पचीसी[6] - प्रेम की महत्ता सूचक 25 दोहे।
7. गोवर्धन लीला बड़ी[7] - गोवर्धन धारण सम्बन्धी 300 पद
8. प्राण प्यारी[8] - राधा कृष्ण विवाह सम्बन्धी 32 पद
9. सूरसागर सार[9] - रामकथा और रामभक्ति सम्बन्धी 370 पद।
10. सूरदास जी के दृष्टिकूट[10] -
11. सूरदास जी का पद[11]
12. रामजन्म[12]
13. एकादशी माहात्म्य[13]

---

1. नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट - 1906, 1907, 1908 - पृ.323
2. वही - 1906, 1907, 1908 - पृ.324
3. वही - 1906, 1907, 1908 - पृ.325
4. वही - पृ.234
5. वही - 1922, 1913, 1914, - पृ.233
6. वही - पृ.233
7. वही - 1917, 1918, 1919 - पृ.372
8. वही - - पृ.373
9. वही - पृ.1909, 1911, 1912 - पृ.421
10. वही - 1900 - पृ.20
11. वही - 1902 - पृ.82
12. वही - 1917, 1918, 1919 - पृ.347
13. वही - पृ.347

इनके अवलोकन से यह विदित होता है कि इनमें से कुछ तो सूरदास के नहीं है, और कुछ सूरसागर के ही अंश, जो स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में उसी में से निकाल लिये गये हैं। सूरदास की प्रसिद्ध और प्रामाणिक रचनायें केवल तीन मानी गई हैं - सूरसारावली, सूरसागर और साहित्य लहरी[1]।

यह प्रसिद्ध है कि सूरदास ने सवा लाख पदों की रचना की थी। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में सूर के "सहस्रावधि" पद करने का उल्लेख है[2]।

साधारणतया भक्ति कालीन कवि भावपक्ष के एवं रीतिकालीन कवि कलापक्ष के कवि कहे जाते हैं। सूरदास यद्यपि भावपक्ष के कवि हैं तथापि उनकी भावरूपी भागीरथी में कला रूपी कालिंदी आ मिली है। इस संगम के फलस्वरूप उनका काव्य अतीव आनन्ददायक हो गया है[3]।

<u>सूरसारावली</u>

सूरसारावली का रचनाकाल सं॰1602 माना जाता है[4]। इसमें दो दो पंक्तियों के 1107 छन्द हैं। डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा इसे सूर कृत होना स्वीकार नहीं करते[5]। वे सूरसागर तथा सारावली में 27 अंतर बतलाकर अपने मत की पुष्टि करते हैं। उनके अनुसार वस्तु, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से इसे सूर की कृति नहीं माना जा सकता[6]।

---

1. डॉ॰ दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (प्रथम भाग) पृ॰279-298
   डॉ॰ मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ (चतुर्थ सं॰) - पृ॰98
   रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰156
2. चौरासी वैष्णवन की वार्ता - लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस (सं॰1985) वार्ता प्रसंग - 3
3. द्वारिकादास परीख तथा प्रभु दयाल मीतल - सूर निर्णय - पृ॰292
4. सूर निर्णय - पृ॰109
5. ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास (तृतीय संस्करण) - पृ॰90
6. वही - पृ॰90-104

डॉ॰ दीनदयालु गुप्त, प्रभुदयाल मीतल, द्वारिका दास परीख जैसे विद्वान इसे सूरदास की रचना मानने के पक्ष में है[1]।

प्रतिपाद्य - एक अवलोकन

सूरसारावली में समग्र सृष्टि की रचना का होली की लीला के रूपक द्वारा वर्णन किया गया है। संपूर्ण संसार और संसार के समस्त व्यापार सृष्टिकर्ता के होली के खेल रूप है[2]। यह रचना दार्शनिकता से पूर्ण है। इसे सूरदास की सैद्धान्तिक रचना कहा जा सकता है। इसका आधार "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" है जिसे वल्लभाचार्य ने श्रीमद् भागवत् का "सार समुच्चय रूप" कहा है।

"समस्त तत्व, ब्रह्मांड, देव, माया, काल, प्रकृति, पुरुष, श्रीपति और नारायण उसी एक गोपाल भगवान के अंश रूप है, जिनकी कथा भगवान की शाश्वत लीला है और जिसका समस्त ज्ञान, कर्म, उपासना और योग सब ब्रह्म रूप है[3]। यही सूरसारावली का सार तत्व है।

साहित्य लहरी

यह सूर की प्रसिद्ध रचना है। इसी में दृष्टिकूट के पद प्रथमत: मिलते हैं। इसकी रचना सं॰1607 या सं॰1617 अथवा सं॰1627 में हुई।

प्रामाणिकता

डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा साहित्य लहरी को सूरकृत और प्रामाणिक नहीं मानते[4]। उनके अनुसार साहित्य लहरी के प्रणयन की मूल प्रेरणा साहित्यिक है,

---

1• डॉ॰ दीनदयालु गुप्त : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास [पंचम भाग] वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप के कवि - पृ॰60
• द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल : सूर निर्णय - पृ॰108
2• आज्ञा करी नाथ चतुरानन करो सृष्टि विस्तार।
होरी खेलन की विधि नीकी रचना रचो अपार ।।
चौदह लोक करो नाना विधि रचि बैकुंठ पताल।
नाना रचना रचि विधाता होरी खेल रसाल ।।
सूर सारावली संपादक - प्रेमनारायण टंडन - पद - 16,17
3• डॉ॰मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ - पृ॰123
4• ब्रजेश्वरवर्मा - सूरदास [तृतीय सं॰] - पृ॰87-93

भक्ति परक नहीं । इसके दृष्टिकूट पदों में राधा और कृष्ण का वर्णन नहीं । कुछ पद श्रृंगार से सम्बद्ध है पर उनमें भी राधा का उल्लेख नहीं है । कुछ पद स्पष्टतया दाम्पत्य रति से सम्बद्ध है । डाक्टर वर्मा का तर्क यह भी है कि सूर सागर के सभी पदों में भक्ति भावना प्रकट है । परन्तु इसमें भक्ति भावना कम है । यदि इसे सं॰1627 की रचना मानें तो यह संभव नहीं दीखता कि सूरदास ने अपनी मृत्यु के कुछ ही समय पहले अपनी भक्ति भावना पूर्ण मनोवृत्ति में आकस्मिक परिवर्तन करके इस ग्रन्थ की रचना की हो[1] ।

सूर निर्णय के लेखकों ने केवल 118 वें पद को अप्रामाणिक माना है । उस एक पद को छोड़कर साहित्य लहरी को वे पूर्ण रूप से प्रामाणिक सिद्ध करते हैं[2] । उनका मत है कि सूरदास की समस्त रचनाओं का मुख्य आधार श्रीमद् भागवद् रहा है । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनको शरण में लेते ही पुरुषोत्तम सहस्रनाम और दशमस्कंध की अनुक्रमणिका के द्वारा श्रीमद् भागवद् की विविध लीलाओं का बोध कराया था । उसी के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवद् की कथाओं का सामान्य अनुवाद और दशम स्कन्ध की लीलाओं का विशेष रूप से विस्तार के साथ वर्णन किया है । यदि सूरदास ने इस ग्रन्थ की रचना न की होती तो उनके द्वारा भागवद् की लीलाओं का पूर्ण रूप से वर्णन न हो पाता[3] ।

प्रायः सभी विद्वान साहित्य लहरी को सूर कृत मानते हैं । हम भी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि साहित्य लहरी सूरदास की ही रचना है।

---

1. ब्रजेश्वरवर्मा - सूरदास [तृतीय सं॰] - पृ॰93

2. द्वारिका दास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूर निर्णय - पृ॰143,145,146

3. सूर निर्णय, 145,146॰

प्रतिपाद्य-दृष्टकूट पर विचार[1]

इसमें 118 दृष्टिकूट के पदों का संग्रह है । दृष्टकूट सूरसागर तथा अन्य रचनाओं में भी यत्र तत्र मिलते हैं । यह शैली बुद्धि प्रधान होती है । सामान्य अन्वय करने पर इसका अर्थ बिलकुल स्पष्ट नहीं होता, छिपा ही रहता है । बुद्धि लड़ाने पर ही अर्थ स्पष्ट होता है ।

कलापक्ष

साहित्य लहरी का कलापक्ष की दृष्टि से विशेष महत्व है । इस रचना में सूरकाव्य का कलापक्ष अत्यन्त निखरे हुए रूप में मिलता है । कवि की मौलिक प्रतिभा का, उच्च कल्पनाशक्ति का तथा श्लेषादि अलंकार प्रयोग के कौशल का परिचय साहित्य लहरी में मिलता है ।

---

1. दृष्टिकूट ऐसी कविता है जिसका अर्थ शब्दों के साधारण अर्थ से स्पष्ट न हो, बल्कि प्रसंग या रूढ अर्थों से जाना जाय जो कवि को अभीष्ट हो । ऐसी कविता में एक ही शब्द का प्रयोग एक ही पद में विभिन्न अर्थों में किया जा सकता है ।
   डॉ॰ प्रेमनारायण टंडन - ब्रजभाषा सूर कोश प्रथम खण्ड - पृ॰890

   श्लेष, यमक आदि अलंकारों तथा अनेकार्थ वाची विशिष्ट शब्दों के समावेश से जो वाच्यवाचक अर्थ की अपेक्षा रूढ अर्थ अथवा प्रसंग से समझा जावे, उसे दृष्टिकूट कहते हैं ।
   प्रभुदयाल मीतल - साहित्य लहरी - भूमिका - पृ॰2

डॉ॰ भगीरथ मिश्र ने साहित्य लहरी को शृंगार और नायिकाभेद के ग्रन्थों में स्थान दिया है[1]। प्रभुदयाल मीतल के अनुसार "साहित्य लहरी के समस्त पदों में नायिकाभेद और भावभेदादि के अतिरिक्त अलंकारों का क्रम बद्ध कथन है[2]।" हिन्दी में आगे चलकर विकसित होने वाली रीतिकालीन परंपरा का प्रारम्भिक स्वरूप इस रचना में बराबर मिलता है। कुछ विद्वानों ने इसका नामाल्लेख अलंकार वर्ग के ग्रन्थों में ही किया है[3]।

सूरसागर

सूरदास की सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे बृहद् रचना है सूरसागर। इस ग्रन्थ के सूरकृत होने में किसी को संदेह नहीं। इसके अनेक संस्करण उपलब्ध है[4]। वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित सूरसागर में श्रीमद्भागवत् के प्रथम से लेकर द्वादश स्कन्ध तक के पद है। लखनऊवाले संस्करण में केवल दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध की लीलाओं के ही पद संगृहीत हैं।

पदों की संख्या

जनश्रुति के अनुसार सूरसागर में सवालाख पद हैं। लेकिन पाँच हज़ार पद से अधिक पद उपलब्ध नहीं हैं। पदों की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद काफी है। श्याम सुन्दर दास ने लिखा है कि सूरसागर सवा लाख पदों का संग्रह कहा जाता है पर इसके अभी तक जो संस्करण मिले हैं उनमें से किसी में 6 हज़ार पदों से अधिक प्राप्त नहीं है[5]।

---

1. डॉ॰ भगीरथ मिश्र – हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास – पृ॰40
2. प्रभु दयाल मीतल – साहित्य लहरी – भूमिका – पृ॰55
3. डॉ॰ भगीरथमिश्र – हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास – पृ॰37
4. सूरसागर के संस्करणों में वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण मुख्य हैं।
5. श्यामसुन्दरदास हिन्दी भाषा का इतिहास [सं॰1994 वि॰का सं॰]–पृ॰323

बाबू राधाकृष्णदास सूरसागर में सवालाख पदों की जनश्रुति ठीक मानते हैं। वे कहते हैं कि उन्होंने एक लाख पद तो श्री वल्लभाचार्य के शिष्य होने के पश्चात् सारावली की समाप्ति तक ही बना दिये थे। अत: इसके पश्चात् और भी पद बनाये गये होंगे[1]।

"शिव सिंह - सरोज" के लेखक 60 हजार पदों को देखना स्वीकार करते हैं[2]। यद्यपि उन्होंने उस प्रति का उल्लेख नहीं किया जिसमें 60 हजार पद संगृहीत है।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण का आधार इस समय तक के प्रकाशित समस्त संस्करण तथा सभा द्वारा भिन्न भिन्न स्थानों से खोज किये सूर के पद हैं। इसमें बंबई और लखनऊ से प्रकाशित संस्करणों के तो समस्त पद आ ही गये हैं और नई खोज में प्राप्त पदों का भी समावेश है। इसमें कुल 4936 पद हैं। यह अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों से बड़ा है।

<u>सूरसागर और भागवत</u>

यद्यपि सूरदास ने श्रीमद् भागवत का आधार बनाकर यह ग्रन्थ लिखा है तथापि यह श्रीमद् भागवत का अनुवाद नहीं है[3]। रामकुमार वर्मा के अनुसार सूरसागर में भागवत के समान बारह स्कन्ध अवश्य है, किन्तु उन स्कन्धों का विस्तार सूरदास ने अपनी काव्य दृष्टि के अनुसार ही किया है[4]।

---

1. राधा कृष्ण दास - सूरसागर की भूमिका - पृ.2
2. श्रीशिवसिंह सेंगर - शिवसिंह सरोज [सन् 1926 का संस्करण] - पृ.506
3. डॉ.मुंशीराम शर्मा - सूरदास और भागवत् भक्ति - पृ.47
4. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ.529-30

दशम स्कन्ध की कथा को ही सूरदास ने प्रधानता दी है । अन्य स्कन्धों में केवल कुछ पद मात्र दिखाई पड़ते हैं । सूरसागर में नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से संपादित कुल मिलाकर 4936 पद हैं । इनमें दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में 4160 पद हैं और उत्तरार्द्ध में 149 अन्य सभी स्कन्धों में कुल मिलाकर 627 पद मात्र है । भागवत् में भी दशम स्कन्ध अन्य स्कन्धों की अपेक्षा आकार में बड़ा है, लेकिन सूरसागर में दशमस्कन्ध का अन्य स्कन्धों से जितना अन्तर है उतना भागवत् में नहीं दिखाई पड़ता ।

सूरसागर का महाकाव्यत्व

आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षण चाहे सूरसागर पर लागू न हों पर वह अपने वर्तमान रूप में एक विशाल काय महाकाव्य ही है, जो कई छोटे छोटे ग्रन्थों में विभाजित किया जा सकता है । गीति काव्य होने के कारण उसके पदों पर जो मुक्तक काव्य की छाप लगी हुई है, वह भी उसमें वर्णित भिन्न भिन्न लीलाओं को स्वतंत्र काव्य रचना का महत्व प्रदान करने वाली है । सूरसागर के एक एक विषय के पदों को संगृहीत करके कई सुन्दर खण्डकाव्यों का निर्माण किया जा सकता है । कुछ विद्वानों ने इस दिशा में प्रयास किया भी है । सूर के विनय संबन्धी कुछ पद हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा सूर पदावली नाम से एक पृथक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हैं । सत्य जीवन वर्मा ने सूर के नयन सम्बन्धी पदों को संकलित करके एक स्वतंत्र ग्रन्थ का रूप दे दिया है । इसी प्रकार रामचन्द्र शुक्ल जी ने भ्रमरगीत वाले पदों को भ्रमरगीत सार के नाम से प्रकाशित किया है ।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.160

विषय वस्तु

सूरसागर वास्तव में सागर है, रत्नाकर है । मरजीवा बनकर जो इसमें जितना ही अधिक गहरा गोता लगाता है, उसे उतना ही अधिक रत्नों की प्राप्ति होतीहै ।

सूरकाव्य का मुख्य विषय कृष्ण की विविध लीलाएं हैं । ये लीलाएं कृष्ण के शैशव से लेकर यौवन तक की विविध कार्य कलापों में व्याप्त पड़ी हैं । भागवत् की कथा का अनुकरण तो किया है, पर अपने ढंग से उसमें नया रंग भर दिया है । कृष्ण चरित्र के वर्णन में सूर ने भागवत के बारहों स्कन्धों से सामग्री ग्रहण की । कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारों को भी अपने ग्रन्थ में स्थान दिया । पौराणिक परंपरा के अनुरूप कई राजाओं का भी उसमें वर्णन मिलता है[1] ।

विनय के पद

सूरसागर का आरंभ मंगलाचरण से होता है[2] जिसमें करुणामय स्वामी हरि की असीम कृपा का उल्लेख करके उनके चरणों की वन्दना की गई है । दूसरे पद में अमूर्त, अव्यक्त ब्रह्म की अगम्यता, अनिर्वचनीयता और अचिन्त्यता का प्रतिपादन है और साथ ही सगुण ब्रह्म के लीलागान की विशिष्टता भी प्रकट की जाती है । इसके बाद अनेक पदों में भक्त वत्सल भगवान की करुणा और मनुष्य के कर्मों की हीनता एवं व्यर्थता का प्रतिपादन है । कवि के इसी विनयपूर्ण दृष्टिकोण के कारण इन पदों को विनय के पद कहते हैं । विनयके 247 पद मिलते हैं[3] ।

---

1. डॉ॰दीनदयालु गुप्त - सूर प्रभा [1966] - पृ॰16
2. चरन कमल बंदौं हरि राई । जाकि कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरस
   बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
   सूरदास स्वामि करुनामय बार बार बंदौं तिहि पाइ ।।
   - सूरसागर प्रथम स्कन्ध - विनय - मंगलाचरण - पद-1
3. काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित पुस्तक के आधार पर ।

प्रथम स्कंध

विनय के बाद प्रथम स्कन्ध शुरू होता है । इसमें केवल 120 पद हैं [ना॰प्र॰स॰संस्करण] भागवत् के प्रथम स्कन्ध में 19 अध्याय है । इन 19 अध्यायों की कथा सूर ने 120 पदों में अत्यन्त संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत की है । इस स्कन्ध में कवि ने भक्ति और भगवान की महिमा तथा संसार की असारता का वर्णन किया है । इसमें भी विनय के कुछ पद हैं । कवि इसमें गेय पदों का व्यवहार किया है । पूरे स्कन्ध की रचना मानों भक्ति के माहात्म्य के ही लिए की गई हो[1] ।

इसके अतिरिक्त श्रीमद् भागवत् के निर्माण का प्रयोजन, शुकदेव की उत्पत्ति, व्यास अवतार, महाभारत की कथा का संक्षिप्त परिचय, सूत शौनक सम्वाद, भीष्म की प्रतिज्ञा, भीष्म का देहत्याग, श्रीकृष्ण का द्वारकागमन, युधिष्ठिर का वैराग्य, पाण्डवों का हिमालय गमन, परीक्षित का जन्म, ऋषि का शाप, भीष्म का देह त्याग आदि कई प्रसंगों का भी वर्णन है ।

द्वितीय स्कंध

इस स्कन्ध में केवल 38 पद हैं । [का॰ ना॰ प्र॰स॰] ये पद भक्ति माहात्म्य, नाम महिमा, भक्ति साधन आदि विषयों का वर्णन करते हैं । स्कंध का आरंभ शुकदेव के द्वारा सात दिन तक हरिकथा कहने के प्रस्ताव से होता है[2] । भागवत् के द्वितीय स्कन्ध में सृष्टि की उत्पत्ति, विराट पुरुष, चौबीस अवतार, ब्रह्मा की उत्पत्ति आदि का वर्णन है । यह सूरसागर में भी है । इसके अतिरिक्त सूरसागर के द्वितीय स्कन्ध में भक्ति महिमा, सत्संग, महिमा, भक्ति साधन, आत्म ज्ञान आदि का भी प्रतिपादन है ।

---

1. ब्रजेश्वर वर्मा – सूरदास [तृतीय सं॰] – पृ॰98
2. हरि हरि, हरि हरि सुमिरन करौ । हरि चरनारविंद उर धरौ ।
   सुकदेव हरि चरननि सिरनाइ । राजा सौं बोल्यौ या भाइ ।
   तुम कह्यौ सप्त दिवस मैं आइ । करौ हरि कथा सुनौ चितलाइ ।
   चिंता छाडि भजौ जदुराइ । सूर तरौ हरि के गुन गाइ ।।
   – सूरसागर 2-1

तृतीय स्कन्ध

इस स्कन्ध में केवल 13 पद हैं। इनमें विदुर जन्म, प्रपंच सृष्टि, हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की कथायें, उद्धव विदुर संवाद, मैत्रेय से विदुर को ज्ञान प्राप्ति, सप्तर्षि और चार मनुष्यों की उत्पत्ति, देवासुर जन्म, वाराह अवतार, कपिल अवतार, देवहूति का कपिल से भक्ति संबन्धी प्रश्न, भक्ति महिमा और देवहूति की हरि पद प्राप्ति आदि कथाओं का वर्णन है।

चतुर्थ स्कन्ध

इस स्कन्ध में भी 13 पद हैं। अधिकांश पद वर्णनात्मक हैं। प्रमुख प्रकरण हैं दत्तात्रेय अवतार, यज्ञपुरुष अवतार, पार्वती विवाह, ध्रुव कथा, पृथु अवतार तथा पुरंजन आख्यान आदि। अन्तिम पद में गुरु और ज्ञान की महत्ता का प्रतिष्ठापन है[1]।

पंचम स्कन्ध

सूरसागर का सबसे छोटा स्कन्ध है यह। इसमें केवल 4 पद हैं। इसमें ऋषभदेव और जड भरत की कथा सूचित होती है।

षष्ठ स्कन्ध

इसमें केवल आठ पद हैं। स्कन्ध का आरंभ अजामिलोपाख्यान से होता है। अजामिल के उद्धार को तर्कसम्मत कारणों से उचित सिद्ध करने का इसमें

---

1. अपुनपो आपुन ही में पायो
सब्दहि सब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।
ज्यो कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढत फिरत भुलायो।
फिरि चितयो जब चेतन ह्वै करि अपने ही तन छायो।
....
सूरदास समुझे की यह गति मनहीं मन मुसुकायो।
कहि न जाइ या सुख की महिमा ज्यो गूँगे गुर खायो।। - सूरसागर - 4-13

प्रयत्न किया गया है । इसके बाद बृहस्पति, विश्वरूप वृत्रासुर और दधीचि की कथा है । दो पदों में गुरु के प्रति उत्कट भक्ति भाव प्रकट है[1] ।

सप्तम स्कन्ध

नृसिंह अवतार, त्रिपुर वध और नारद उत्पत्ति - ये तीन कथायें आठ पदों में संक्षेप में दी गई हैं । इसमें रामनाम की महिमा का भी प्रतिपादन है ।

अष्टम स्कन्ध

इसमें 17 पद हैं । पहली कथा गजेन्द्रमोक्ष की है जो किंचित् भिन्नता के साथ भागवत् की कथा का अनुकरण करती है । कथा कथन की अपेक्षा भगवान की शरणागत वत्सलता में कवि का मन अधिक रमता है । कूर्म अवतार की भी कथा दी गई है । इसमें मोहिनी तथा सुन्द उपसुन्द की जो कथा प्राप्त होती है[2] वह श्रीमद्भागवत् में नहीं मिलती । वामन अवतार भी अत्यन्त संक्षिप्त है और अन्त में मत्स्य अवतार का सार भी दिया गया है ।

नवम स्कन्ध

दशम स्कन्ध को छोड़कर अन्य सभी स्कन्धों से यह बड़ा है । इसका आरंभ पुरुरवा की कथा से होता है । इस प्रसंग में नारी के आकर्षण से बचने का उपदेश है[3] । आगे च्यवन ऋषि की कथा आती है जिसका उद्देश्य

---

1. सूरसागर 6-5,6
2. वही - पृ.8-10,11
3. वही - 9-2

हरि भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है[1]। उसके बाद समुद्र विवाह प्रसंग है[2]। अंबरीष की कथा में हरि भक्ति की उत्कृष्टता दिखाई गई है[3]। सौभरि ऋषि की कथा में विषयासक्ति की व्यर्थता और भक्ति-वैराग्य की महत्ता प्रतिपादित होती है[4]। गंगावतरण के प्रसंग में कवि गंगा के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट करते हैं[5]। उसके बाद परशुराम अवतार की कथा है।

नवम स्कन्ध में रामकथा का सविस्तार प्रतिपादन है। यद्यपि कवि ने अनेक उपाख्यानों को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है तथापि राम कथा को उन्होंने जितना महत्व दिया उतना संभवत: और किसी पर नहीं। कृष्णोपाख्यान ही इसका एकमात्र अपवाद है। संपूर्ण रामकथा 157 पदों में वर्णित है। इसका अत्यन्त हृदयद्रावक ढंग से ही कवि ने प्रतिपादन किया है। दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध के अतिरिक्त यदि और कहीं सूर की काव्य प्रतिभा चमकी है तो इसी रामावतार के प्रसंग में[6]। कवि ने सीता का सुकुमार, व्यथित करुण चित्र सबसे अधिक आत्मीयता के साथ उतारा है।

रामोपाख्यान के बाद इसी स्कन्ध में कच देवयानी कथा और देवयानी ययाति विवाह भी वर्णित है।

दशम स्कन्ध

भगवद् भक्ति का प्रतिपादन ही सूर का एकमात्र उद्देश्य था। उनके आराध्य देव हैं श्रीकृष्ण। अत: कृष्ण लीला का गान उनके काव्य का वास्तविक विषय है। कृष्ण लीला ही दशम स्कन्ध का विषय है। कवि की अक्षय कीर्ति का

---

1. सूरसागर - 9-3
2. वही - 9-4
3. वही - 9-56
4. वही - 9-8
5. वही - 9-9-12
6. डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास [तृतीय संस्करण] - पृ॰62

आधार यही स्कन्ध है । "सूर के कवित्व की कोमलता, कमनीयता कला वैलक्षण्य, विलास व्यंग्य और विदग्धता - सब का स्रोत यही तो है[1] ।"

दशम स्कन्ध के दो भाग हैं - पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । इनमें पूर्वार्द्ध की कथाही कवि को अधिक प्रिय है। इसीमें कृष्ण की विविध लीलाओं का विकास मिलता है ।

पूर्वार्द्ध

भागवत् कथा की बाह्य रूप रेखा मात्र लेकर सूर उसे अत्यन्त स्वच्छंदता पूर्वक वृहद् आकार देते हैं और उसी में अपनी रुचि और भाव के अनुकूल रंग भरते हैं[2] । पूर्वार्द्ध का आरंभ विधिवत् मंगलाचरण से होता है । इसके बाद कृष्णजन्म की कथा वेगवती निर्झरिणी के रूप में कवि के मानस से मानों फूट पड़ती है[3] । जन्म समय के हर्षोद्रेक का भावपूर्ण चित्रण है[4] । भगवान की जन्मलीला, मथुरा से गोकुल आना[5], पूतना वध[6], शकटासुर और तृणावर्त का वध[7], नामकरण[8], अन्न प्राशन[9], वर्षगांठ[10], कर्णछेदन[11], घुटनों के बल चलना[12], बालवेष[13],

---

1. डॉ॰ मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ [संशो॰ संस्करण] - पृ॰113
2. डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास [तृ॰सं॰] - पृ॰64
3. सूरसागर 10-3
4. वही - 10-4-48
5. वही - 10-4
6. वही - 10-49-56
7. वही - 10-61-84
8. वही - 10-85-87
9. वही - 10-88-93
10. वही - 10-94-96
11. वही - 10-180-187
12. वही - 10-97-180
13. वही - 10-183

चन्द्रप्रस्ताव,[1] कलेवा,[2] माटी खाना,[3] माखनचोरी,[4] गोदोहन,[5] वृन्दावन प्रस्थान,[6] वत्स-बक-अघासुर वध,[7] ब्रह्मा द्वारा गोवत्सहरण,[8] राधाकृष्ण का प्रथम साक्षात्कार,[9] क्रीडा,[10] राधा का श्याम के घर जाना,[11] श्याम का राधा के घर आना,[12] गोचारण,[13] धेनुकवध,[14] कालियदमन,[15] दावानलपान,[16] प्रलम्बवध,[17] मुरली,[18] चीरहरण,[19] पनघट,[20] गोवर्धन पूजा,[21] दानलीला,[22] मानलीला,[23] राधाकृष्ण का विवाह,[24] श्रीकृष्ण का अंतर्धान होना,[25] गोपीगीत,[26] रास नृत्य तथा जलक्रीडा,[27]

1· सूरसागर - 10-188-200
2· वही - 10-211-212
3· वही - 10-253-259
4· वही - 10-264-340
5· वही - 10-400-401
6· वही - 10-402-410
7· वही - 10-427-437
8· वही - 10-487-492
9· वही - 10-669-687
10· वही - 10-684-691
11· वही - 10-700-706
12· वही - 10-707-712
13· वही - 10-448-50,497
14· वही - 10-499
15· वही - 10-521-570
16· वही - 10-498,590-603
17· वही - 10-604
18· वही - 10-620-623
19· वही - 10-765-799
20· वही - 10-1399-1405
21· वही - 10-811-950
22· वही - 10-1460
23· वही - 10-1035-1070
24· वही - 10-1071-1085
25· वही - 10-1086-1127
26· वही - 10-1128-1131
27· वही - 10-1132-1183

सुदर्शन विद्याधर शाप मोचन तथा शंखचूड़ वध,[1] मुरलीवादन,[2] श्रीकृष्ण का ब्रजागमन,[3] वृषभासुर वध,[4] केशी वध,[5] व्योमासुर वध,[6] यमघट लीला,[7] दानलीला,[8] ग्रीष्मलीला,[9] यमुना गमन,[10] राधा माधव मिलन,[11] बसंत लीला,[12] अक्रूर का ब्रज आगमन,[13] धनुष की लीला,[14] कुवलया वध,[15] हस्ती वध,[16] वसुदेव-देवकी का दर्शन,[18] यज्ञोपवीत उत्सव,[18] कृष्ण का कुब्जा के घर जाना[19] आदि इस स्कन्ध के प्रमुख प्रकरण हैं।

1· सूरसागर - 10-1184-1210
2· वही - 10-1330-1338
3· वही - 10-1368-1385
4· वही - 10-1386-1387
5· वही - 10-1396
6· वही - 10-1397-1397
7· वही - 10-1399-1459
8· वही - 10-1460-1478
9· वही - 10-1750-2022
10· वही - 20-2023-2039
11· वही - 10-2827-2828
12· वही - 10-2844-2922
13· वही - 10-2923-2959
14· वही - 10-3049-3052
15· वही - 10-3053-3059
16· वही - 10-3060-3064
17· वही - 10-3090-3093
18· वही - 10-3094-3107
19· वही - 10-3105-3110

सूर की मनोवृत्ति जितनी तन्मयता से भगवान के बालरूप वर्णन में रमी है, उतनी अन्यत्र नहीं । प्रेम ही सूर का प्रधान क्षेत्र था और उसीके सभी रूपों का जितना विस्तृत और वरिष्ठ वर्णन सूर सागर में है उतना और कहीं नहीं[1] ।

इसी स्कन्ध में गोपियों का विरह वर्णन और भ्रमर गीत वर्तमान है । भ्रमरगीत के अन्तरगत सूर ने निर्गुण भक्ति की अपेक्षा सगुण भक्ति की उपादेयता और महत्ता सिद्ध की है, ज्ञान के स्थान पर प्रेम की विजय दिखाई है ।

दशम स्कन्ध सूरसागर का हृदय है । कवि की प्रसिद्धि और लोक प्रियता का आधार यही स्कन्ध है । इसमें सूर के काव्य कौशल का सच्चा परिचय मिलता है । सौन्दर्य, प्रेम और माधुर्य की व्यंजना बड़े स्वाभाविक ढंग से इसमें की गई है । यही स्कन्ध सूर को लोकोक्ति के अनुसार साहित्याकाश के सूर्य का स्थान प्रदान करता है ।

उत्तरार्ध

दशम स्कन्ध का उत्तरार्ध जरासंध के द्वारका आगमन से आरंभ होता है । इसमें केवल 149 पद हैं । भागवत में भी दशम स्कन्ध दो भागों में विभक्त है । पूर्वार्ध में 49 अध्याय और 2011 श्लोक तथा उत्तरार्ध में 41 अध्याय और 1933 श्लोक हैं । परन्तु सूरसागर के दशम उत्तरार्द्ध में विषयों का संक्षिप्त वर्णन है । प्रमुख घटनायें हैं - जरासंध से युद्ध, द्वारका निर्माण, कालयवन दहन, मुचुकुन्द का उद्धार, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी हरण, प्रद्युम्न जन्म, सत्यभामा और जाम्बवती से विवाह, भौमासुर वध, प्रद्युम्न विवाह, उषा अनिरुद्ध विवाह, नृगराज का उद्धार, बलराम का ब्रजागमन, सांब विवाह, कृष्ण का हस्तिनापुर जाना, जरासंध वध, शिशुपाल वध, शाल्व का द्वारका पर आक्रमण, शाल्ववध, दन्तवक्र और बल्वलका वध, सुदामा-दारिद्र्य-भंजन, कुरुक्षेत्र में आगमन और नन्द यशोदा तथा गोपियों से मिलना, वेदस्तुति, नारद स्तुति, सुभद्रा-अर्जुन विवाह, भस्मासुर वध, भृगु परीक्षा आदि । इन प्रकरणों में भागवत् का अनुकरण ही पाया जाता है । कृष्ण राजनीतिक पुरुष के रूप में भी चित्रित हैं ।

---

1. डॉ॰मुंशीराम शर्मा-सूरसौरभ [चतुर्थ सं॰] - पृ॰113

एकादश स्कन्ध

इस स्कन्ध में केवल चार पद हैं। प्रथम दो छोटे छोटे गेय पद हैं जिनमें भक्ति भावना व्यंजित है। तीसरे पद में नारायण अवतार और अन्तिम में हंस अवतार का उल्लेख है।

द्वादश स्कन्ध

इसमें केवल पाँच पद हैं जिनमें बुद्ध अवतार, कल्कि अवतार और कलि धर्म का निर्देश है। स्कन्ध के अन्त में परीक्षित के अंत समय के लिए संतोष पूर्वक तैयार रहने तथा जनमेजय यज्ञ का उल्लेख है। इस प्रकार भागवत् कथा के अनुसार सूरसागर की समाप्ति होती है।

आलोचना

"महात्मा सूरदास की लोकरंजनकारी काव्यकृति में हिन्दी साहि के भक्तिकाल का जो कृष्णकाव्य समाहित है, वह प्राणवंत, उल्लासमय, सत्य सुन्दर एवं मांगलिक भावों के प्रकाश पुंज से ओत-प्रोत है .... हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में जो प्रेम भक्ति धारा प्रवाहित हुई, जिसमें निमग्न होकर भारतीय जनता अपने क्लेश कालुष्य से मुक्त हुई, वह भारतीय चिंतन और भारतीय साधना परंपरा की एक बहुत भारी उपलब्धि है।"[1]

सूरदास ने अपनी उक्तियों द्वारा निर्गुणोपासना की नीरसता और अग्राह्यता दिखाकर सगुण भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखा है कि "सूर ने मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर

---

1. डॉ० दीनदयालु गुप्त - वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप के कवि - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पंचम भाग - पृ०55

जीवन के प्रति अनुराग जगाया या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी[1]।"

सूर काव्य में सार्वजनिक प्रेमानुभूतियों का सजीव स्वाभाविक और रसपूर्ण चित्रण है। "इसमें अलौकिक नायक कृष्ण के संसर्ग से लोक की वृत्तियों को समेटकर कवि की ईश्वरोन्मुख आध्यात्मिक अनुभूति की व्यंजना है जिसकी सिद्धि ही उसका चरम लक्ष्य था और जो लोकदृष्टि को हटाकर देखने से मानवहित-कारिणी और परमानन्ददायिनी भी प्रतीत होती है[2]।"

सूर की रचनाओं में भक्ति के ऐसे अक्षुण्ण सिद्धान्त निहित है जो मानवमात्र को सृष्टि पर्यन्त उपयोगी रहेंगे। इसीलिए यह मानव समाज भक्त प्रवर महात्मा सूरदास का चिर ऋणी रहेगा[3]।

---

1. रामचन्द्रशुक्ल - त्रिवेणी - पृ.88
2. डॉ. दीनदयालु गुप्त - सूरप्रभा [1966] - पृ.47
3. डॉ. रामचरण लाल शर्मा - हिन्दी साहित्य में अष्टछापी और राधावल्लभीय काव्य - पृ.37

चेरुश्शेरी की रचनायें

चेरुश्शेरी के नाम, समय, स्थान आदि की तरह उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में भी बहुत मतभेद है । इस विषय में खोज आपेक्षित दृष्टि से बहुत कम ही हुई है । चेरुश्शेरी के नाम से दो रचनायें उपलब्ध हैं - कृष्णगाथा और भारत-गाथा । इनमें से भारतगाथा का कर्तृत्व विवादास्पद है । इसपर आगे विचार किया जायेगा ।

गाथा

गाथा शब्द का अर्थ है गान । प्राचीन काल से यागादि वैदिक कर्मों के लिए प्रयुक्त गीत भी इस नाम से समझे जाते थे । कुछ केरलीय गीतिधारा को संस्कृत और मलयालम विद्वानों ने गाथा नाम दे दिया है[1] ।

वृत्त मंजरिकार श्री राजराजवर्मा ने उन सभी छन्दों को गाथा नाम दिया है, जो वर्णों या मात्राओं की विषमता या नियमों के भंग के कारण प्रसिद्ध छन्दों के अन्तर्गत नहीं होते । व्यवहार में तो "मंजरी" नामक द्राविड छन्द में लिखी हुई कवितायें ही गाथा कहलाती हैं । गाथा पूर्णतया मलयालम की निजी संपत्ति है ।

कृष्णगाथा की लोकप्रियता के साथ गाथा एक साहित्य शैली के रूप में परिवर्तित हो गयी । इस शैली के सबसे उत्कृष्ट काव्य है कृष्णगाथा ।

---

1. डॉ॰ एन॰ ई॰ विश्वनाथय्यर - आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य - पृ॰29

कृष्णगाथा

प्रस्तुत काव्य केलिए कृष्णगाथा, कृष्णप्पाट्टु, चेरुशेरी, चेरुशेरी गाथा आदि नाम है । कवि ने इस काव्य केलिए कृष्णगाथा नाम रखा - ऐसा हम अंत साक्ष्य से समझ सकते हैं । काव्य का अन्तिम पद है -

'आख्या कोलभूपस्य प्रागस्योदयवर्मण:
कृतायां कृष्णगाथायां कृष्ण स्वर्गारोहणम् ।'

काव्य के बीच में भी कई स्थानों में गाथा शब्द का प्रयोग काव्य केलिए प्राप्त होता है[1] । पी॰ गोविन्द पिल्ले, उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर जैसे पण्डितों ने कृष्णगाथा नाम स्वीकार किया है । मंगलोदय मासिक पत्रिका में प्रथम बार कृष्णप्पाट्टु नाम दिखाई पड़ा । अधिकतर मलयालम शब्दों के प्रयोग को देखकर उन्होंने कृष्णगाथा के लिए कृष्णप्पाट्टु नाम रखा है[2] ।

रामायण, महाभारत और भागवत् के आधार पर मलयालम में कई रचनायें हुई हैं । मलयालम में श्रीमद् भागवत् के आधार पर लिखे गये काव्यों में कृष्णगाथा सर्वश्रेष्ठ है ।

विषयवस्तु

जैसा कि पहले कहा गया कृष्णगाथा श्रीमद्भागवत् पर आधारित है । भागवत् के दशमस्कन्ध के दो भागों के आधार पर इस काव्य के भी दो खण्ड हैं ।

1· 'गाथायायह चोल्लुन्नु भाषयायि - (भाषा में - मलयालम में - गाथा के रूप में बताता हूँ) - कृष्णोत्पत्ति 34 वीं पंक्ति और देखिए स्वर्गारोहण प्रसंग में 902, 907, 1003, 1013, 1020, 1038, 1058 जैसे पंक्तियों को ।

2· साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे - गाथा साहित्य, लेखक - पद्मनाभन उण्णि पृ॰338

कृष्णावतार से लेकर कृष्ण के स्वर्गारोहण तक की कथा विविध भागों में प्रतिपादित है । कंस वध तक की कथा प्रथम भाग में तथा पाण्डवों की स्वर्ग प्राप्ति तक की कथा दूसरे भाग में आती है । चेरुशेरी ने संपूर्ण भागवत् का ग्रहण नहीं किया है । प्रथम नौ स्कन्ध पूर्ण रूप से छोड दिये गये हैं । द्वादश स्कन्ध को भी स्वीकार नहीं किया । दशम और एकादश स्कन्ध का कुछ भाग चेरुशेरी ने अपना आधार बनाया है ।

भागवत् के दशम स्कन्ध की प्राय: सभी मुख्य कथायें कृष्णगाथा में भी आती है । किसी का कोरा अनुवाद नहीं है । कवि की भावना से सब कथाओं में नवीन चेतना और हृदयावर्जन की शक्ति आयी है । कई उद्भावनायें कृष्णगाथा में सुलभ हैं जिनकी कल्पना तक भागवतकार ने नहीं की है ।

विविध अध्याय

गुण और आकार दोनों दृष्टियों से कृष्णगाथा का महत्व है । इसमें 8400 से अधिक द्विपदी छन्दों में 47 अध्याय हैं । इनमें 230 द्विपदी छन्द स्तुति गीत हैं ।

कृष्णगाथा का आरंभ कृष्णोत्पत्ति से होता है । भागवत् कर्ता व्यास की कृपा की प्रार्थना से काव्य का आरंभ होता है[1]। फिर गुरुजनों और बड़ों की वन्दना कवि करते हैं[2]। इस काव्य में कृष्ण भक्त कवि का दर्शन कर

---

1. व्यासनायुण्मोर मामुनि तन कृपा
   दासनामेन्निल पूरण्मोण्मे - [मामुनि व्यास की कृपा मुझ दास पर बरसना चाहिए।
   कृष्णोत्पत्ति 23, 24 पंक्तियाँ ।

2. आर्य वन्दयारायुण्मोरे वन्दिच्चुकोण्टु -
   निर्मिक्कुन्नु । श्रेष्ठ जनों की वन्दना करते हुए मैं काव्य का आरंभ करता हूँ -
   वही - 43,44 पंक्तियाँ

सकते हैं । कवि की प्रतीक्षा है कि मृत्यु के बाद स्वर्ग में पहुँचते समय देवता उनका स्वागत करेंगे[1] ।

कृष्णगाथा में भागवत् का अनुवाद

चेरुश्शेरी ने भागवतकार का पूर्ण रूप से अनुकरण किया है । कई स्थलों में भागवत् का पूर्ण रूप से अनुवाद कृष्णगाथा में मिलता है । उदाहरण केलिए कृष्णगाथा के पावस वर्णन में 26 से 30 तक पंक्तियों का भाव इस प्रकार है "काले काले बादलों के घिर आने से सूर्य[2] बिंब अदृश्य हो गया जैसे माया से आच्छादित मनुष्य ज्ञान को भूल जाते हैं । यह श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध के बीसोऽध्याय के चौथे पद का अनुवाद है । आकाश में नीले और काले बादल घिर आते, बिजली कौंधने लगती, बार बार गड़गड़ाहट सुनायी पड़ती, सूर्य , चन्द्रमा और तारे ढके रहते । इससे आकाश की ऐसी शोभा होती है जैसे ब्रह्म स्वरूप होने पर भी गुणों से ढके जाने पर जीव की होती है[3] ।"

कृष्णगाथा के शरद् वर्णन में भी ऐसा एक प्रसंग हम देख सकते हैं । "माया में मग्न मनुष्य अपनी आयु को समाप्त होते समझते नहीं । यह इस प्रकार है जैसे पानी में रहने वाले मछली को पानी के समाप्त होने का पता नहीं[4] ।"

---

1. The poet was a great devotee of Krishna, so much so, that in the closing passages of his wonderful poem he indulges in the bold hope that when he went to heaven, which he was sure to do, he would be received by angelic forms with the kindness and consideration which were his dues[3] — Sadasyatilaka T.K. Velu Pillai - The Travancore State Manual Vol.I, Malayalam literature P.479
2. चीर्त्तुम मेघ्ङ्ङल पार्त्तु परम्पर्याम / भास्करबिंब मरञ्ञु पोयि / माययाल मूटप्पेट्टुम मानसं तन्निल / ज्ञानं मरञ्ञु पोकुन्नपोले ।
   - कृष्णगाथा - प्रावृड्वर्णन - 26-30
3. मान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः
   अस्पष्ट ज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ।। भागवत 10(पूर्वार्द्ध)20-4
4. वारियिल निन्नुल्ल मीनङ्ङळेल्लामे / वारि कुरञ्ञतिरञ्ञीलल्लो / माययिल निन्नुल्ल मन्दन्मारेल्लारुं / आयुस्सु पोकुन्नतेन्न पोले ।।
   - कृष्णगाथा शरद वर्णन 10 से 14 तक पंक्तियाँ

भागवत् के त्रिंशोऽध्याय 37 वाँ श्लोक में इस प्रकार हम देखते हैं "छोटे छोटे गड्ढों में भरे हुए जल के जलचर यह नहीं जानते कि इस गड्ढे का जल दिन पर दिन सूखता जा रहा है - जैसे कुटुम्ब के भरण पोषण में भूले हुए मूढ यह नहीं जानते कि हमारी आयु क्षण क्षण क्षीण हो रही है[1]।

कृष्णगाथा का काव्य सौष्ठव

भक्ति के साथ साथ काव्य चमत्कार भी कृष्णगाथा में हम देख सकते हैं सरस और मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में कृष्णगाथाकार वाचाल हो जाते हैं। अनेक आलोचक मानते हैं कि सरस प्रसंगों के चित्रण में गाथाकार भागवत् से भी आगे हैं[2]। कहीं कहीं भागवत में आयी कथाओं को विस्तृत रूप से चित्रण करते दिखाई पड़ते हैं। और कहीं कुछ प्रसंगों को संक्षिप्त रूप से चित्रण करते हैं। अयुक्त भागों के त्याग में और मूल के सौन्दर्य को हानि पहुँचाये बिना नवीन कल्पनाओं को मिलाने में कृष्णगाथाकार अत्यन्त समर्थ हैं। शाब्दिक अनुवाद उनका काम नहीं था। वटक्कुंकूर राजराजवर्मा का कहना है - "भागवत् पाठ से जो भक्ति और संस्कार

---

1. नैवा विदन् क्षीयमाणं जलं गाध जलेचरा: ।
   यथाऽऽयुरन्वहं क्षय्यं नरा:मूढ: कुटुम्बिन: ।।
   - भागवत त्रिंशोऽध्याय 37 वाँ श्लोक ।

   इसी प्रकार और देखिए - कृष्णगाथा के शरद्वर्णन में 30 से 34 तक पंक्तियों का अनुवाद भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध के 20- वाँ अध्याय 44 वाँ श्लोक में है कृष्णगाथा के शरद्वर्णन में 50 से 62 तक पंक्तियों का साम्य भागवत के दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के 21 वाँ अध्याय दूसरे और तीसरे श्लोकों से है। भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध के 22 वाँ अध्याय के चीरहरण प्रसंग के प्रथम दोनों श्लोकों का भाव कृष्णगाथा के हेमन्तलीला के प्रथम दस पंक्तियों में देख सकते हैं।
2. पी.के. नारायण पिल्लै - कृष्णगाथ भूमिका - पृ.52 [एन.बी.एस. संस्करण]

कवि को प्राप्त हुए उन्हीं ने कवि को इस महनीय ग्रन्थ के सृजनकार्य की प्रेरणा दी है। तब भी इसका स्वतन्त्र कृति होना तर्क संगत नहीं। इसे "मलयालम् का नवीन भागवत् दशम्" कह सकते हैं।[1]"

संस्कृत शब्दों की विरलता, सरस प्रसंगों की बहुलता, शृंगार-हास्य-भक्ति की रंजकता पदावली की कोमलता और अन्य अनेक विशेषतायें कृष्णगाथा को अमर काव्य बना सकी है। भक्ति यद्यपि इसकी मूल चेतना रही है तो भी साहित्य समीक्षकों की दृष्टि में कृष्णगाथा में वह गौण है। लौकिक शृंगार, वात्सल्य, एवं हास्य के चित्रण में यह बड़ी सफल कृति रही है।

मलयालम साहित्य का सबसे श्रेष्ठ काव्य कृष्णगाथा

उळ्ळूर के शब्दों में मलयालम् साहित्य के सबसे श्रेष्ठ काव्य कृष्णगाथा है।[2] अगर कोई मलयालम साहित्य की सभी विशेषताओं से पूर्ण किसी एक काव्य का नाम पूछें तो कृष्णगाथा का नाम बता सकते हैं। मलयालम् में चेरुश्शेरी नम्पूतिरि की सर्जनात्मक रचना के समान सरल और विस्तृत कविता और कोई नहीं है। शब्द रचना और शैली में कृष्णगाथा द्राविड है। लेकिन इसके प्रयोग करने के रूप में इसने संस्कृत के श्रेष्ठ काव्यों की रीति स्वीकार की है।[3]

---

1. वटक्कुंकूर राजराजवर्मा - कृष्णगाथा प्रवेशिका - पृ.38
2. उळ्ळूर एस. परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रम् - दूसरा भाग (तीसरा संस्करण) - पृ.138
3. If one were asked to choose a single volume representing the highest poetic achievement of the Malayalees, the choice would all probability fall on Krishna Gatha, and yet no poem in our language is simpler and mor e lucid in expression than this monumental work of Cherussery Namboodiri. In vocabulary and prosody it is typically Dravidian, but in the wealth and splendour of its figures of speech it follows the traditions of the best Sanskrit classics -
Progress of Cochin - Editor T.K. Krishna Menon (1932)
Chapter - 28 Prof.P. Sankaran Nambiyar, p.329

केरल भाषा कविता की प्राप्त आकृतियों में कमनीयता और प्राचीनता की दृष्टि से यह काव्य प्रमुख है[1]। मलयालम में "लटकन्नाट्टु" [उत्तर केरल के लोकगीत जो अत्यन्त प्रसिद्ध है] के अतिरिक्त दूसरा कोई काव्य विभाग किसी भी समय में कृष्णगाथा के समान सरल या ललित नहीं बन चुके हैं[2]।

कवि ने संगीत की सुधा में कृष्णकथा की मधुधारा को सम्मिलित करके सहृदयों केलिए एकदम अलौकिक मधुर भोज्य तैयार किया है[3]। चेरुशेरी का काव्य सौन्दर्य पाठकों को अपनी ओर हठात् आकर्षित करनेवाला है[4]।

भारतगाथा

चिरक्कल टी• बालकृष्णन नायर ने इसका प्रथम बार संपादन किया इसके अनुसार पर मतभेद है। पर बालकृष्णन नायर इसे चेरुशेरी की ही रचना मानते हैं[5]। अपने पक्ष के समर्थन में भी नायर निम्न लिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं -

कृष्णगाथा का आरंभ और अन्त कोलत्तुनाट् के शासक उदयवर्मा के स्मरण के साथ किया जाता है। भारतगाथा में भी राजा का उल्लेख मिलता है[6]। दोनों काव्यों के अन्तिम पद में समानता दिखाई पड़ता है - यथा -

"आज्ञया कोल भूपस्य प्राज्ञस्योदयवर्मण:
कृतया भाषया दोष: क्षमेर भारत गाथाया[7]।।"

"आज्ञया कोल भूपस्य प्राज्ञस्योदयवर्मण:
कृतायां कृष्णगाथायां कृष्ण स्सर्गतिरीरिता[8]।"

1• डॉ• रामचन्द्र देव - मलयालम् साहित्य - एक सर्वेक्षण - पृ•18
2• डॉ• एम•लीलावति - मलयालम् कविता साहित्य चरित्रम् - पृ•74
3• डॉ• रामचंद्र देव - मलयालम् साहित्य - पृ•18
4• The Travancore State Manual - Vol.1, - T.K. Velu Pillai Malayalam Literature-p.479
5• टी• बालकृष्णन नायर - चेरुशेरी भारतम् - भूमिका - पृ•17
6• चेरुशेरी भारतम् अध्याय - 1, 75-76 पंक्तियाँ
7• भारत गाथा का अन्तिम पद
8• कृष्णगाथा का अन्तिम पद

दोनों रचनाओं की शैली में भी साम्य है। वे दोनों काव्यों में निम्न लिखित समानता लक्षित करते हैं - भाषा दोनों की समान है। छन्द भी समान है। उदयवर्म राजा की सूचना दोनों काव्यों में मिलती है। स्वर्गारोहण जैसे प्रसंग दोनों काव्यों के एक से हैं। पी.के. नारायण पिल्ले भी टी.रामकृष्णन नायर के मत से सहमत हैं[1]।

किन्तु इन समानताओं के आधार पर दोनों रचनाओं का एक कर्तृत्व बहुत से विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है। उनके अनुसार छन्द के अतिरिक्त दोनों में कोई विशेष समानता प्राप्त नहीं। यह संभव है कि एक ही कवि की दो कृतियाँ कलात्मक दृष्टि से भिन्न कोटि की हों, परन्तु भारत गाथा और कृष्णगाथा में कलात्मक दृष्टि से जो अन्तर दिखाई पड़ता है वह बहुत ही गहरा है दोनों में कोई सादृश्य इस दृष्टि से नहीं है। शब्दावली भी दोनों की भिन्न है। इस पक्ष के समर्थक हैं :- उळ्ळूर एस. परमेश्वरय्यर, मार्टोरि माधव वार्यर आदि[2]। उळ्ळूर के मतानुसार कोलतिरी राजा की आज्ञा से किसी दूसरे नंपूतिरि से भारत गाथा की रचना की होगी। कृष्णगाथाकार के सामने भारतगाथा कार को कवि कहने में भी उळ्ळूर संदेह प्रकट करते हैं[3]।

केवल प्रतिपादन रीति की समानता पर दो भिन्न रचनाओं को एक ही लेखक की कृति मानना तर्क संगत नहीं है। भारतगाथा को वर्तमान स्थिति में चेरुश्शेरी की रचना स्वीकार करना प्राप्त प्रमाणों के आधार पर युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता।

---

1. पी.के. नारायण पिल्ले - कृष्णगाथा की भूमिका - पृ.42-45
2. मार्टोरि माधव वार्यर - कुंचन वरे [मलयालम साहित्य का इतिहास] - पृ. पृ.258,261
3. उळ्ळूर एस. परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रम्-भाग-2, - पृ.150-157

सूरसागर और कृष्णगाथा

सूरदास रचित तीन ग्रन्थ प्रामाणिक हैं, पर सूरसागर ही उनकी कीर्ति की पताका है। उसे केवल काव्य न कहकर धार्मिक काव्य कहना ही समीचीन है। हज़ारों पदों में उनका काव्य व्याप्त है। चेरुश्शेरी कृत दो ग्रन्थ कहे जाते हैं। फिर भी सर्वमान्य एक ही काव्य है - कृष्णगाथा। कृष्णगाथा दो भागों में विभाजित है। उसके 47 अध्याय हैं। वह एक सुन्दर जनप्रिय गेय काव्य है। सूरसागर का हिन्दी साहित्य में जो स्थान और आदर प्राप्त है वही कृष्णगाथा को मलयालम साहित्य में भी प्राप्त है। चेरुश्शेरी इस एकमात्र महान ग्रन्थ की रचना से कवि सार्व भौमों में परिगणित हो रहे हैं।

कृष्णगाथा में भागवत् का दशम स्कन्ध और आंशिक रूप से एकादश स्कन्ध ही स्वीकृत है। जबकि सूर ने संपूर्ण भागवत् को ग्रहण किया है। इसका कारण संभवतः यह है कि कृष्णगाथा एक सोद्देश्य कृति है। राजाज्ञा का परिपालन उसकी रचना की मुख्य प्रेरणा है। इसलिए कवि ने अपने लिए आवश्यक प्रसंगों का ही वर्णन किया है। पर सूर सोद्देश्य रचनाकार नहीं थे। भगवद् भक्ति और प्रेम की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त उनका कोई लक्ष्य ही न था। जीवन और काव्य उनकी दृष्टि में अभिन्न था। भगवान ही उनका एक मात्र ध्येय था। पर ये सारी विशेषतायें कृष्णगाथा में प्राप्त नहीं होती। सूर विरक्त पुरुष थे जबकि चेरुश्शेरी सांसारिक व्यापारों में निमग्न। यह अंतर दोनों कवियों के स्व व्यक्तित्व से संबन्ध है जो दोनों के काव्य में अभिव्यक्ति पाता है।

सूरसागर और कृष्णगाथा दोनों काव्यों में श्रीकृष्ण के चरित का आख्यान है। कृष्ण की बाल्य और यौवन लीलाओं का दोनों में विशद वर्णन है। इसलिए दोनों में वात्सल्य तथा शृंगार रस का समुचित परिपाक पाया जाता है। वात्सल्य रस संचार में सूर संसार भर के कवियों में अतुलित हैं। चेरुश्शेरी भी इस क्षेत्र में सूर के समकक्ष न होते हुए भी उनका स्थान ऊंचा है।

निष्कर्ष

सूरदास की प्रसिद्ध और प्रामाणिक रचनायें केवल तीन मानी गई हैं सूरसारावली, साहित्य लहरी और सूरसागर । सूरसारावली [सं॰1602] में 1107 छन्द हैं । इसकी प्रामाणिकता पर मत भेद है । इसे सूर की सैद्धान्तिक रचना कहा जा सकता है । साहित्य लहरी में दृष्टिकूट के पद मिलते हैं । अधिकतर विद्वान इसे सूर कृत मानते हैं । साहित्य लहरी का कलापक्ष की दृष्टि से विशेष महत्व है ।

सूरदास की सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे बृहद् रचना है सूरसागर । नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में कुल 4936 पद हैं । भागवद् के आधार पर लिखने पर भी यह पूरा अनुवाद नहीं है ।

सूर काव्य का मुख्य विषय कृष्ण की विविध लीलायें हैं । सूरसागर में बारह स्कन्ध हैं । काव्य का आरंभ मंगलाचरण से होता है । विनय के 247 पद मिलते हैं ।

सूर की अक्षय कीर्ति का आधार दशम स्कन्ध है । दशम स्कन्ध के दो भाग हैं - पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । कृष्ण लीला गान ही इस स्कन्ध का मुख्य विषय है । भ्रमर गीत के अन्तरगत सूर ने निर्गुण भक्ति की अपेक्षा सगुण भक्ति की उपादेयता और महत्ता सिद्ध की है । ज्ञान के स्थान पर प्रेम की विजय दिखाई है

चेरुशेरी के नाम से दो रचनायें उपलब्ध हैं - कृष्णगाथा और भारत गाथा । भारतगाथा का कतृत्व विवादास्पद है । गाथा शब्द का अर्थ है गान । गाथा शैली के सबसे श्रेष्ठ काव्य है कृष्णगाथा । भागवद् दशमस्कन्ध के आधार पर इस काव्य के भी दो खण्ड हैं । भागवत के दशम और एकादश स्कन्ध का कुछ भाग चेरुशेरी ने अपना आधार बनाया है ।

47 अध्यायों में 8400 से अधिक द्विपदी छन्द कृष्णगाथा में हैं। कई स्थानों में भागवत का पूर्ण रूप से अनुवाद कृष्णगाथा में मिलता है। भक्ति के साथ साथ काव्य चमत्कार भी कृष्णगाथा में प्राप्त है। उल्लूर के शब्दों में मलयालम साहित्य के सबसे श्रेष्ठ काव्य कृष्णगाथा है।

चिरक्कल टी॰ बालकृष्णन नायर, पी॰के॰ नारायण पिल्लै आदि भारत गाथा को चेरुशेरी की रचना मानते हैं। कृष्णगाथा और भारत गाथा में कलात्मक दृष्टि से बहुत अंतर है। उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर, आटोरी माधव वार्यर जैसे विद्वान भारतगाथा को चेरुशेरी कृत नहीं मानते। भारतगाथा को वर्तमान स्थिति में चेरुशेरी की रचना स्वीकार करना प्राप्त प्रमाणों के आधार पर युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता।

अध्याय - पाँच

सूरसागर और कृष्णगाथा के कतिपय मार्मिक प्रकरणों का तुलनात्मक अध्ययन

सूरदास और वेंगोबी दोनों ने कृष्ण लीला वर्णन हेतु श्रीमद् भागवत् को आधार बनाया है, किन्तु उनके काव्य सूरसागर और कृष्णगाथा भागवत् के अनुवाद नहीं है। दोनों ने अनेक प्रसंगों पर भागवत् का अनुकरण अवश्य किया है। भागवत् आध्यात्मिकता से बोझिल है जबकि सूरसागर और कृष्णगाथा माधुर्य भाव से परिपुष्ट।

सूर और चेरुश्शेरी दोनों ने अनेक मौलिक प्रसंगों की अवतारणा की है। इसकी चर्चा अन्यत्र की गयी है। उनका उद्देश्य कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन करना है। अनेक प्रसंगों तथा घटनाओं के माध्यम से उन्होंने अपने आराध्य की अद्भुत लीलाओं का प्रतिपादन किया है। इस अध्याय में हम उपर्युक्त काव्यों के कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रकरणों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

निम्न लिखित प्रसंग इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं :-

1. बाललीला - माखनचोरी - वेणुवादन
2. चीरहरण
3. रासलीला
4. अक्रूर की ब्रज यात्रा
5. श्याम बलराम का मथुरा प्रवेश तथा कुब्जा प्रसंग
6. उद्धव की ब्रजयात्रा तथा भ्रमर गीत
7. प्रकृति चित्रण

1· बाललीला

कृष्ण के जीवन के समस्त व्यापार भक्तों की दृष्टि में केवल लीलायें हैं। लीला केलिए ही कृष्ण ने अवतार लिया था। लीला का कोई बाह्य प्रयोजन नहीं। लीला का प्रयोजन स्वयं लीला ही है। [नहि लीलाया: किंचिद् प्रयोजनं, लीलाया: एव प्रयोजनत्वात्-वल्लभाचार्य]।

लीलाओं में बाललीला का अपना महत्व है। वहीं रस स्वरूप भगवान [रसो वै स:] अपने भक्तों के साथ दिव्य केली करते हैं। इसका वर्णन भक्त कवियों ने दिल खोलकर किया है। कृष्ण की बाललीलायें विविध आयामों से युक्त हैं। इनमें माखनचोरी, वेणुवादन, गोचारण आदि आते हैं। लीलाओं में हृदयहारी एक है कृष्ण की माखनचोरी।

माखनचोरी और वेणुवादन प्रसंग : सूरसागर में

सूरदास ने माखनचोरी प्रसंग में श्रीमद् भागवत् से भाव ग्रहणकर अपनी कल्पना के बल पर उसे रंजित कर दिया है। श्रीमद् भागवत् 10·8·21-31 [पूर्वार्ध] में कृष्ण तथा बलराम की बाललीलाओं का वर्णन है। उन ग्यारह श्लोकों के भाव को सूर ने ग्रहण किया है।

दोनों शिशु घुटनों और हाथों के बल चलते हैं[1]। नन्हें नन्हें पांव घसीटते हुए गोकुल की कीचड में घूमते हैं[2]। किंकिणी के रुनझुन रुनझुन रव सुनाई

1· सूरसागर - 10-104 [कुल पद संख्या - 722]

2· वही - 726

पड़ते हैं[1]। बच्चों को हृदय से लगाकर माता स्तनपान कराती है[2]। उनकी मन्द मुस्कान, छोटी छोटी दँतुलियाँ एवं भोले भाले मुखों को देखकर माता आनन्द सागर में डूबने लगती हैं[3]।

कृष्ण और बलराम दोनों के कौमार चापल्य का सूर ने विस्तार से प्रतिपादन किया है। गोपियाँ यशोदा के पास आकर बालकों की शरारत भरी करतूतों की फरियाद करती हैं : ये बालक गाय दुहने का समय न होने पर भी बछड़ों को खोल देते हैं, डाँटने पर ठठाकर हँसते हैं[4]।

कृष्ण की अवस्था पाँच छः वर्ष की हो गई है। उसने एक दूसरा कार्य आरंभ कर दिया है, और वह कार्य है चोरी करने का। कृष्ण एक ग्वालिन के घर गया और द्वार के पास किसी को न देखकर इधर उधर देख धीरे से भीतर घुस गया। मक्खन से भरी मटकी देखी। उसमें से माखन ले लेकर खाने लगे। मणियों से जटित खंभ में अपना प्रतिबिंब देखकर इशारे से उससे कहने लगा कि यार, आज प्रथम बार मैं मक्खन की चोरी करने आया हूँ तो यह अच्छा संग बना। वह स्वयं खाने और प्रतिबिंब को भी खिलाने लगा[5]।

---

1. खीजत जात माखन खात।
   अरुन लोचन भौंह टेढ़ी, बार बार जँभात।
   कबहुँ रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात।
   कबहुँ झुकि के अलक खैंचत नैन जल भरि जात।
   कबहुँ तोतर बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात।
   सूर हरि की निरखि सोभा, निमिष तजत न मात। - सूरसागर - 718
2. सूरसागर - 725
3. वही - पृ. 728
4. श्रीमद् भागवत 10-8-29 में इसका वर्णन है। सूर ने इसका अनुकरण किया है।
5. गए स्याम तिहि ग्वालिनि के घर।
   देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत उत चितै, चले तब भीतर।
   हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ।
   सूनै सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ।
   माखन भरी कमोरी देखत, लै-लै लागे खान।
   चितै रहे मनि-खंभ-छाँह-तन, तासौं करत सयान।
   प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग।
   आपु खात, प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग ? - सूरसागर-883

इसके पश्चात् तो सखाओं के साथ माखनचोरी केलिए जाने लगा[1]। चतुरता से चोरी करना एवं पकड़े जाने पर जवाब देना और बहाने बनाने में भी सूर के कृष्ण बड़े चतुर हैं। एक बार पकड़े जाने पर कृष्ण का गोपी से कहना है कि 'गोरस में चींटी देखकर उसे निकालने केलिए मैं ने दही के पात्र में हाथ डाला'[2]। यह कथन उसकी बाल चतुराई के श्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है।

घर में एक बार पकड़े जाने पर अपनी निर्दोषता सिद्ध करने केलिए माता से कहता है - 'माँ मैं ने मक्खन नहीं खाया। मेरे मित्रों ने मेरे मुँह पर मक्खन लपेट दिया है। तुम्हीं देखो, मक्खन का पात्र तो सींके पर ऊँची जगह लटका हुआ है। मैं अपने छोटे हाथों से उसे कैसे प्राप्त करूँगा ? तुम्हीं सोचो। मुँह पर का दही पोंछते हुए कृष्ण ने हाथ में रखे हुए मक्खन के दोने को पीठ के पीछे छिपा लिया[3]।

भागवतकार ने चलते ढंग से इन कौमार लीलाओं का वर्णन किया है। किसी विशेष तन्मयता का परिचय उनके वर्णन से प्राप्त नहीं होता। पर भागवतकार का बालवर्णन सूर और चेरुश्शेरी दोनों कवियों केलिए प्रेरणास्रोत रहा है, इसमें सन्देह नहीं।

<u>मुरली वादन</u>

मुरली की महिमा गाते हुए सूरदास की लेखनी मानों अघाती नहीं। सूर कहते हैं जब हरि अपने अधरों पर मुरली धारण करते हैं, अर्थात् उनका

---

1. सूरसागर - 888
2. वही - 897
3. मैया मैं नहीं माखन खायो।
   ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायो।
   देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचै धरि लटकायो।
   हौं जु कहत नान्हें कर अपनैं मैं कैसैं करि पायो।
   मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्ही, दोन पीठ दुरायो।। सूरसागर 952

वादन करते है, तब सकल चराचर निश्चल और विमुग्ध होते हैं । पवन चलता नहीं । यमुना का जल बहता नहीं । पक्षी मोहित होते हैं । मृग समूह विस्मृत होते हैं । कृष्ण की शोभा के आकर्षण से जड चेतन सारा संसार विमोहित है । बडे बडे ऋषि-गण ध्यान मनन आदि व्यापार छोडकर कृष्ण छवि देखने रहने में ही जन्म साफल्य मानते हैं और स्वयं सूरदास उन लोगों को परम भाग्यशाली मानते हैं जो कृष्ण के दिव्य रूप दर्शन पा सके हैं[1] ।

कृष्ण जब मुरली बजाने लगते हैं, उनकी स्वरधारा में आमग्न होकर देवता लोग भी एकटकी लगाकर देखने लगते हैं[2] । सिद्धों की समाधी टूट जाती है । "खग मृग" मौन रह जाते हैं । वे फलों और तृणों को छोड देते हैं[3] । वेणु की ध्वनि सुनकर बछडे भी दूध पीना छोड देते हैं । सरिता की गति रुद्ध हो जाती है । गोपिकायें सुध बुध भूल जाती हैं[4] ।

इस प्रकार के अनेक पदों में सूर ने कृष्ण के वेणुवादन का वर्णन किया है ।

कृष्णगाथा में माखनचोरी तथा मुरलीवादन प्रसंग

माखनचोरी[5] कृष्णगाथा का अत्यन्त रमणीय प्रकरण है । चेरुशेरी की प्रतिभा और मौलिकता की झलक हमें यहाँ प्राप्त होती है । "कृष्ण छिपे छिपे गोपिकाओं के घर पहुँचते हैं और माखन और पकवान चुराकर खाने लगते हैं ।

---

1. सूरसागर - 10-620 - पृ.480
2. वही - 10-623
   श्रीमद् भागवत 10-21-12 में देवांगनाएं कृष्ण के मुरलीनाद से विचलित होती
3. सूरसागर - 10-623 भागवत 10-21-13 में यही स्थिति देख सकते हैं ।
4. सूरसागर 10-623
5. कृष्णगाथा के तीसरे अध्याय उत्तुक्कल बन्धन में 218 वीं पंक्ति से यह प्रसंग शुरू होता है ।

पहले नेत्र उन पदार्थों पर पड़ते हैं और फिर हाथ। इस प्रकार जीभ में आनन्द आ जाता है[1]। अपने और पड़ोस के सभी घरों के माखन पर कृष्ण के हाथ पड़ते हैं। गोपिकाओं के माखन खाने के साथ ही साथ कृष्ण उनके हृदय को भी चुरा लेते हैं[2]।

माखन की चोरी करने केलिए कृष्ण विभिन्न उपाय ग्रहण करते हैं। ऊखल पर चढ़ते हैं। फिर भी छिकहट को पकड़ नहीं पाते। ऊखल के ऊपर एक पीठ रखते हैं और माखन लेने लगते हैं कि पीठ गिर पड़ता है। कृष्ण छिकहर में झूलते हुए रोते हैं और यशोदा आती है। यशोदा कृष्ण को उठा लेती हैं और पूछती है कि ऐसा तुम ने क्यों किया। कृष्ण का उत्तर है माता माखन सुरक्षित रहे हैं कि नहीं - यही देख रहा था। यह उत्तर सुनकर यशोदा हँसती है[3]।

अधिकाधिक माखन खाने केलिए कृष्ण विभिन्न उपाय ग्रहण करते हैं[4]। एक बार माता ने उसे माखन दिया[5]। कृष्ण ने कहा सिर्फ एक ही हाथ को माखन मिलने पर दूसरा हाथ दुखी होगा। जैसे अकेले बड़े भाई को माखन मिलने पर मैं दुखी होता हूँ। यह सुनकर माता फिर माखन लेने जाती है। जल्दी ही कृष्ण माखन मुँह में डालकर कहता है कि एक कौआ माखन ले गया। माता फिर दोनों हाथों में माखन देती है[6]।

---

1. उलूखल बन्धन पंक्ति 220-226 का भावानुवाद
2. वही - पंक्ति 232-234
3. वही - पंक्ति 240-290
4. वही - पंक्ति 335-336
5. वही - पंक्ति 337-340
6. वही - पंक्ति 341-346

सभी घरों में कृष्ण माखन की चोरी करता है। यशोदा ग्वालिन द्वारा दिए गए उलाहनों के फलस्वरूप कृष्ण से क्रोध करती है। छड़ी ले उसे पीटती है। कृष्ण ज़ोर से रोने लगता है[1]। एक ग्वालिन के कहे अनुसार यशोदा कृष्ण को उलूखल में बांधती है[2]। रस्सी के पर्याप्त न होने पर वह बराबर रस्सी मांगती है। किन्तु वह कृष्ण को बांधने में असमर्थ रह जाती है[3]। अपने बच्चे की अलौकिक महिमा से अभिभूत होने पर वह उसे छोड़ देती है। यशोदा के अमर्षयुक्त वाक्यों, दयार्द्र ग्वालिनियों की सहानुभूति पूर्ण सिफारिशों, कृष्ण की खींचातानी आदि के वर्णन द्वारा कवि ने प्रसंग को अलौकिकता से मुग्ध रखा है। यों भी यह घटना कृष्ण की अलौकिकता को द्योतित करनेवाली है तथापि कवि ने सर्वत्र उसे लोकसाधारण बनाने की चेष्टा की है। कृष्ण का मुख अमित करुण और क्षमाशील है। उसका चित्रण प्रभावोत्पादक है। उलाहना देनेवाली स्त्रियों का हृदय परिवर्तित होता है। यह सब कवि ने बिलकुल स्वाभाविक ढंग से ही चित्रित किया है।

सूरसागर तथा कृष्णगाथा में यह प्रसंग अत्यन्त सरस और स्वाभाविक हुआ है। बालकृष्ण की स्वाभाविक चेष्टाओं के चित्रण में ये दोनों कवि श्रीमद् भागवतकार की अपेक्षा अधिक सफल हुए हैं।

मुरलीवादन

कृष्ण की मुरली का जो महत्व सूरसागर और श्रीमद् भागवत् में प्राप्त होता है, वही कृष्णगाथा में भी मिलता है। चेरुशेरी की दृष्टि में मुरली कोई जड़ वस्तु नहीं है। वह जड़ चेतन को हठात आकर्षित करनेवाली एक चेतन सत्ता है। वह कृष्ण की चिर संगिनी है। मुरली के माध्यम से ही गोपियां

---

1. उलूखलबन्धन - 774-776
2. वही - पृ. 781-784
3. वही - पृ 786-800

कृष्ण की ओर आकर्षित होती है । अपने त्रैलोक्य विमोहक स्वर से यह मुरली समस्त जगत् को अपने वश में कर लेती है[1]। पेरूशेरी ने वेणु के प्रभाव का बड़ा ही विशद वर्णन किया है[2]।

कृष्णगाथा में सिर्फ वेणु के वर्णन केलिए एक संपूर्ण अध्याय को कवि काम में लाते हैं[3]। वे कहते हैं कि कृष्ण की मुरली के स्वर में एक विचित्र जादू है। मुरली रव सुनकर मयूर नाचने लगते हैं, समस्त प्राणि निश्चेष्ट होकर खड़े रहते हैं। वेणुनाद से मुग्ध होकर मृग कृष्ण के निकट आते हैं। गायें कान उठाकर उसकी मधुर ध्वनि सुनती हैं, निश्चेष्ट रह जाती हैं। पक्षीगण अपना कलरव छोड़कर निर्निमेष नेत्रों से कृष्ण की रूपमाधुरी का आस्वादन करते हैं। सचेतन प्राणी में ही नहीं नदी और मेघ जैसे अचेतन पदार्थों पर भी मुरली नाद का प्रभाव पड़ता है[4]।

तुलना

सूरसागर और कृष्णगाथा दोनों काव्यों के प्रसंगों में काफी समानता है। दोनों श्रीमद् भागवत् के ऋणी हैं, पर उनकी शैली अलग है। दोनों काव्यों में बालकृष्ण की लीलायें सहज और सरस हैं, रूपमाधुरी दिव्य अलौकिक है। माखनचोरी के उपक्रम भिन्न हैं, कृष्ण द्वारा स्वीकृत उपाय वैविध्यपूर्ण हैं। मुरली वादन अतीव प्रभावोत्पादक है। दोनों काव्यों की गोपिकायें समान रूप से कृष्ण प्रेम में निमग्न हैं। वर्ण्यवस्तु की समानता के होते हुए भी अभिव्यंजना शैली में एकरसता का दोष नहीं आया है। भाषागत भिन्नता के बावजूद सूरसागर और कृष्णगाथा भावसाम्य के कारण सहृदयों को समान आह्लाद प्रदान करने में समर्थ हुए हैं।

---

1. वेणुगानम् - 265-270
2. वही - 265-362
3. वही - 14 वाँ अध्याय - कृष्णगाथा
4. वही - 290-300

बाललीला वर्णन प्रकरण में भागवतकार से भी बढ़कर सूर और चेरुश्शेरी को सफलता मिली है - इस में सन्देह नहीं । ऐसा ज्ञात पड़ता है जैसे भागवतकार ने सूत्र रचे हों और सूर और चेरुश्शेरी दोनों ने उन सूत्रों पर भाष्य किये हों । अतः माखनचोरी एवं वेणुवादन का यह प्रसंग दोनों काव्यों के अत्यन्त मार्मिक प्रकरण है ।

चीरहरण लीला - सूरसागर में

सूरदास ने चीरहरण लीला की रूपरेखा श्रीमद् भागवत् [10·22·1-28] से ही ग्रहण की । काव्य को सरस बनाने के लिए सूर ने यत्रतत्र मौलिक उद्भावनायें भी की है । सूरसागर का यह प्रसंग 35 पदों में [10-1383-1417] परिव्याप्त है ।

व्रज कुमारियों ने रवि एवं शिव की पूजा की और यह प्रार्थना की कि श्याम सुन्दर उन्हें पति मिलें[1] । हेमन्त ऋतु में एक दिन सभी कुमारियां प्रतिदिन की भांति यमुना पुलिन पर अपने वस्त्र उतार कर श्री कृष्ण का गुणगान करती हुई बड़े आनन्द के साथ जल क्रीड़ा करने लगीं । तभी कृष्ण वहाँ पहुँचते हैं और किनारे पर रखे हुए उनके वस्त्राभूषणों का हरण करके कदम्ब तरु पर चढ़ते हैं -

"वसन हरे सब कदम चढ़ाए"[2]

---

1. सूरसागर - 1400

व्रज बनिता रवि कौं कर जोरैं ।
सीत-भीति नहिं करति छहौ रितु त्रिविध काल जल खोरैं ।।
गौरी पति पूजति, तप साधति, करत रहति नित नेम ।
भोगं रहित निसि जागि चतुर्दसि, जसुमति सुत के प्रेम ।।
हमकौं देहु कृष्ण पति ईस्वर, और नहीं मन आन ।
मनसा बाचा कर्म हमारै, सूर स्याम कौ ध्यान ।।

2. सूरसागर - 1402

तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः
हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहास मुवाच ह ।। —
भागवत् 10-22-8 का अनुकरण सूरने किया है ।

तब भी गोपियां आंखें मूंदते हुए कृष्ण प्राप्ति हेतु प्रभु से प्रार्थना करती रही -

"हम पावें पति स्याम सुजान ।"[1]

जल से जब वे बाहर आती है तब अपने वस्त्राभूषणों को न पाकर चकित हो जाती है, और फिर जल में प्रवेश करती है । वे थर थर कांपने लगती है और आश्चर्य के साथ सोचती है कि -

"को लै गयौ बसन आभूषन"[2]

कदम्ब शाखा से नवनागरी ने उनको दर्शन दिये । कृष्ण ने कहा तुम्हारा व्रत पूरा हुआ है । बाहर आ जाओ, क्यों तुषार सहन करती हो ।[3] मैं तुम्हारा वस्त्राभूषण सब लौटा दूंगा - अगर तुम हाथ जोड़कर मेरा प्रणाम करो तो । गोपियां उत्तर देती हैं -

तट पर बिना बसन क्यों आवैं, लाज लगती है भारी ।
चोली हार तुमहि को दीन्हौ, चीर, हमहि द्यो डारी ।[4]"

कृष्ण उनसे पुनः कहते है कि बाहर आकर हाथ जोड़ने पर वे वस्त्र लौटा देंगे ।

अन्त में गोपियां तट पर आ जाती है । अपने हाथों से वे गुह्यांगों का आवरण करती हैं । लेकिन कृष्ण उनको आज्ञा देते हैं कि वे हाथ उठाकर प्रणाम करें । अपना अहंकार छोड़कर कृष्ण की आज्ञा का पालन करने पर उनको वस्त्र लौटा दिये जाते हैं । वस्त्र पाकर वे सब हर्षित होती हैं -

---

1. सूरसागर - 1403
2. वही - 1403
3. वही - 1404
4. वही - 1406

"अम्बर भूषन सबनि परिहरे, हरष भई सुकुमारि[1]।"

यह प्रसंग कवि की मौलिक उद्‌भावना का परिचय है। इसमें कवि ने गोपियों की आसक्ति को धीरे धीरे भागवत् भक्ति में परिणत होते हुए दिखाया है। कृष्ण के आचरण गोपिकाओं के हृदय को उद्वेलित करने में सहायक हुए हैं।

पानी के भीतर गोपियों की पीठ मीजना उनकी अपनी उद्‌भावना है[2]। भागवत् में ग्वालबालों के साथ कृष्ण यमुना तट पर पहुँचते हैं[3]। सूरसागर के कृष्ण अकेले यमुना तट पहुँचते हैं[4]। भागवत की गोपिकाएँ कात्यायनी की पूजा करती हैं[5]। पर सूर की गोपियाँ रवि एवं शिव की पूजा करती हैं[6]। सोलह सहस्र गोपकुमारियों का वस्त्राभूषण हरण भी सूर की नवीन कल्पना है[7]।

कई प्रसंगों में सूर ने भागवत् का पूर्णतः अनुसरण किया है जैसे, गोपियों का शीत से काँपना[8], गुह्यांगों को छिपाकर पानी से बाहर निकलना[9], कृष्ण के आदेश पर अपने हाथों को ऊपर उठाना[10], कृष्ण का आगामी शरद् ऋतु की रात्रि में रास रचना का आश्वासन देना[11], आदि प्रसंग। सूर की अद्भुत काव्य कुशलता के कारण ये प्रसंग भी मौलिक जैसे दिखाई पड़ते हैं।

---

1. सूरसागर - 1413
2. वही - 1386
3. श्रीमद् भागवत 10-22-8
4. सूरसागर - 1396
5. भागवत् 10-22-1
6. सूरसागर - 1400
7. सूरसागर - 1402
8. वही - 1385
9. वही - 1411
10. वही - 1417
11. वही - 1417

कृष्णगाथा में चीरहरण लीला

कृष्णगाथा में हेमन्तलीला नामक अध्याय में 270 पंक्तियों में कृष्ण की चीरहरण लीला का चित्रण है । हेमन्त लीला के पहले हेमन्त वर्णन नामक एक अध्याय इस काव्य में है । ऋतु वर्णन प्रसंग में हेमन्त का विशिष्ट स्थान है । कृष्णगाथाकार ने चीरहरण का वर्णन इसी प्रकरण में किया । पर भागवतकार ऋतुवर्णन में चीरहरण का प्रतिपादन नहीं करता । इस केलिए अलग स्थान चुन लिया है । यह गाथाकार की नवीन उद्भावना है । शायद कृष्णगाथा को महाकाव्य का स्वरूप देने केलिए ही कवि ने ऋतु वर्णन आवश्यक माना है ।

भागवत की गोपकुमारियाँ हेमन्त के प्रथम महीने में कात्यायनी व्रत रखती हैं[1] । कृष्णगाथाकार ने 74 पंक्तियों में हेमन्त का सुन्दर चित्रण किया है ।

कात्यायनी देवी की आराधना के उपरान्त गोपियाँ यमुना में स्नान करती हैं । वृक्ष पर बैठे हुए कृष्ण मुरली वादन करते हैं । गोपियाँ जब समझ लेती हैं कि कृष्ण ने उनके चीरों को हरण किया तब वे घबराती हैं और वस्त्र लौटा देने की प्रार्थना कृष्ण से करती हैं । तब कृष्ण उनका वस्त्र उठाकर कदम्ब वृक्ष पर चढ जाते हैं[2] । कृष्ण गोपिकाओं से पानी से बाहर आने का अनुरोध करते हैं[3] । गोपिकायें अपने हाथों से गुह्य भागों को छिपाकर बाहर आती हैं[4] । हाथ जोड़कर ईश्वर का नमस्कार करने की आज्ञा कृष्ण देते हैं[5] । गोपिकायें एक हाथ से अपने गुह्य भागों को छिपाकर दूसरे हाथ से ईश्वर का

---

1. श्रीमद् भागवत् 10-22-1
2. हेमन्तलीला - 41,52 पंक्तियाँ
3. वही - 77-78
4. वही - 139,140
5. वही - 171,172

नमस्कार करती है । कृष्ण के अनुसार एक हाथ से ईश्वर का नमस्कार करने पर दूसरा हाथ काट डालना ही न्याय है[1]। इसलिए दोनों हाथों से नमस्कार करना चाहिए[2]। गोपिकायें आँखें बन्द कर दोनों हाथ जोड़कर कृष्ण के सामने खड़ी होती है[3]। छेड़-छाड़ कुछ समय तक जारी रहती है । अन्त में कृष्ण उनका वस्त्र लौटा देते हैं । अपने अपने चीर धारण कर गोपियाँ घर लौटती है, किन्तु उनका मन कृष्ण ने चुरा लिया था ।

भागवत और सूरसागर में एक हाथ से नमस्कार करने की सूचना नहीं । यह चेरुश्शेरी की मौलिक उद्भावना है । मलयालम भागवत् में भी एक हाथ से नमस्कार करने का उल्लेख है[4]। शायद चेरुश्शेरी से भाव ग्रहण कर मलयालम भागवतकार ने ऐसा किया होगा ।

आध्यात्मिक अर्थ

इस प्रसंग में आध्यात्मिक अर्थ भी गुम्फित है । कृष्ण तत्वतः परम पुरुष परमात्मा है और गोपियाँ जीवात्मा । परमात्मा एक है और जीवात्मा अनेक । परन्तु उनका संयोग पाना ही जीवों का आत्यन्तिक लक्ष्य है । यह लक्ष्य तब सिद्ध होता है जब जीव अपनी अहम की भावना का पूर्णतः परित्याग करें । जब तक "अहम" है तब तक प्रभु से मिलना असंभव है ।

इस लीला में कृष्ण परमात्मा के, गोपियाँ जीव के, यमुना संसार के, चीर संकोच तथा लोक लज्जा के और कदम्ब वृक्ष काम के प्रतीक है ।

संसार रूपी यमुना में जीव रूपी गोपियाँ निमज्जित रहती हैं । वे कृष्ण रूपी परमात्मा से अपार प्रेम करती हैं । जब तक वस्त्र आदि सांसारिक वस्तुओं की कामना रहती है तब तक जीव परम पुरुष से पूर्णतः नहीं

---

1. हेमन्तलीला - 180-182 पंक्तियाँ
2. वही - 183-184
3. वही - 186-190
4. श्रीमद्भागवत् - एषुत्तच्छन - 21 वाँ संस्करण - पृ.229

मिल पाते । गोपिकायें लोकलाज तथा संकोचरूपी चीर के कारण ज्ञान वृक्ष पर आरूढ़ परमात्मा कृष्ण के सामने अपने निजी रूप में प्रकट नहीं हो पाती । परमात्मा कृष्ण उन जीवरूपी गोपियों के प्रेम की परीक्षा लेकर उन्हें अपने निकट लेने का निश्चय करते हैं और चीर हरण लीला की भूमिका बनाते हैं ।

इसी प्रकार कृष्ण गोपियों के चीर हर लेते हैं । गोपियाँ उसका रहस्य नहीं समझ पातीं । धीरे धीरे ज्ञान के आलोक में उनकी लज्जा रूपी मर्यादा छूटती है और वे कृष्ण के सामने प्रकट होती हैं । गोपिकायें भौतिक वस्तुओं की कामना पूर्णत: छोड़ती हैं और कृष्ण का संयोग पाती हैं । इसी अर्थ को सूर, वेंकटेशी जैसे कृष्ण काव्य कार कवियों ने चीर हरण लीला से अभिव्यक्त किया है ।

तुलना

इस प्रसंग में सूर ने कुछ मौलिक उद्‌भावनायें की हैं । उन्होंने राधा कृष्ण मिलन की वेदिका तैयार की और उससे सम्बद्ध करके चीर हरण लीला का वर्णन किया है । भागवत् में यह बात नहीं पायी जाती । सूर का चीरहरण वर्णन अधिक स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक प्रेम विकास के अनुकूल है । भागवत् के समान कृष्ण गाथा में भी राधा का चित्रण नहीं ।

चीरहरण प्रसंग में भागवतकार से बढ़कर सूर और वेंकटेशी को अधिक सफलता मिली है । इस सन्दर्भ में डॉ॰ ब्रजेश्वरवर्मा का कथन है "भागवत् की चीरहरण लीला वर्षा और शरद् के प्रकृति चित्रणों से संबद्ध है । अत: सूरसागर की चीरहरण लीला का वातावरण भागवत् की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक प्रेम विकास के अनुकूल है । इसी प्रकार सूर सागर के कृष्ण भागवत् के अनुसार जब नग्न दशा में गोपियों को तट पर बुलाते हैं तब यह नहीं कहते कि नग्न होकर

---

1. डॉ॰ ब्रजेश्वरवर्मा - सूरदास [तृतीय संस्करण] - पृ॰ 68

यमुना स्नान करना अनुचित है । सूरदास औचित्य अनौचित्य का प्रश्न ही नहीं उठाते[1]।

श्रीमद् भागवत् से सूरसागर की तुलना करते हुए डॉ॰ हरवंश लाल शर्मा का भी इसके सम्बन्ध में मत यही है[2]।

कृष्णगाथा का कृष्ण इस संदर्भ में सिर्फ कामुक पुरुष है । वह कुमारियों से छल भरी बातें करता है, उनका लज्जा संकोच छुड़ाता है, उन्हें कठपुतलियों के समान नचाता है । सेठजी भी सूरदास के समान औचित्य अनौचित्य का विचार नहीं करते । वे भक्ति और आध्यात्मिकता की सीमा से बाहर आकर ही चीरहरण का वर्णन करते हैं ।

गाथाकार का चीरहरण प्रसंग अत्यन्त हृदयहारी है । उनकी दृष्टि कृष्ण की गोपिकाओं के प्रति सरल प्रेम की अभिव्यक्ति पर अटकी हुई है । उनकी गोपियाँ अधिक सरल हैं और दुनियादारी से कोसों दूर । कृष्ण के प्रति उनके प्रेम में कोई दुराव छिपाव नहीं । वह शुद्ध पुरुषोचित और सरल प्रेम है । उसके प्रतिपादन में कवि ने कहीं भी दिव्य प्रेम का आभास नहीं दिया है । वह किशोरियों का सहज सरल स्नेह है । कृष्ण भले ही अधिक अनुभव सम्पन्न प्रतीत होते हों, पर उनका प्रेम भी मानवीय स्तर पर वर्तमान है । पर सूर की बात यह नहीं है । उन्होंने साधारण मानवीय प्रेम को एक हद तक दिव्य और त्यागमय बनाया है । उनकी गोपिकाओं का कृष्ण प्रेम अधिक गंभीर और हृदयस्पर्शी है । उसमें अधिक गहनता है । कृष्ण भी गोपिकाओं के प्रेम की इस विशेषता को समझ लेते हैं । उनका अभिनन्दन करते हुए वे कहते हैं :-

---

1. ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास [तृतीय सं॰] - पृ॰68
2. हरवंशलाल शर्मा - सूर और उनका साहित्य - पृ॰149

तुमहिं हेतु यह वपु ब्रज धार्यो ।
तुम कारण बैकुंठ बिसारी ।।
अब प्रन करि तुम तनहि न गारो ।
मैं तुम ते कहुँ होत न न्यारो ।।
मोहि कारन तुम अति तप साध्यो ।
तन मन अरि मोकों आराध्यो[1] ।।

चीर हरण प्रसंग के चित्रण में सूरदास और पेरुमोरी में कई समानतायें मिलती हैं । दोनों ने भागवत से कथावस्तु ग्रहण की । पर स्वतंत्र कल्पना का समावेश भी किया है दोनों ने । दोनों के कृष्ण के व्यवहार में समानता है । गोपिकाओं की कामना-पूर्ति में कृष्ण उत्सुक हैं । ब्रज तरुणियाँ की आत्मसमर्पण प्रकट है । भागवतकार की आध्यात्मिक दृष्टि पेरुमोरी की अपेक्षा सूर ने अधिक ग्रहण की है । अतः सूरसागर और कृष्णगाथा में यह प्रसंग अपनी अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण पाठकों केलिए हृदयग्राही बन गये हैं ।

रासलीला - सूरसागर में

सूरदास ने रासलीला का संपूर्ण प्रसंग श्रीमद् भागवत [10-29-33] से ग्रहण किया है । शारदीय पूर्णिमा में मुरली ध्वनि से आकृष्ट होकर गोपियाँ गृह, कुल-पति आदि को छोड़कर कृष्ण के पास दौड़ आती हैं[2] । कृष्ण तरुणियों को घर लौटने तथा पति सेवा निरत होने का उपदेश देते हैं[3] । युवतियाँ इस अप्रत्याशित उपदेश से वेदना विह्वल होती हैं[4] । वे प्रार्थना करती हैं कि कृष्ण उनसे रमण करे[5] । गोपियों के हार्दिक प्रेम का अभिनन्दन करते हुए कृष्ण उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हैं रास क्रीडा शुरू होती है :-

---

1· सूरसागर - 1417
2· वही - 1607 [10-29-10 का भाव]
3· वही - 1633, 1634 [भागवत् 10-29-23 का भाव]

रास रस रचौ, मिलि संग बिलसौ, सबै हरि कहि जो निगम बानी ।
हंसत मुख मुख निरखि, बचन अमृत बरषि, कृपारस भरे सारंग पानी ।।
ब्रज-जुवति चहुं पास, मध्य सुन्दर स्याम, राधिका बाम अति छबि
बिराजै ।
सूर नव-जलद-तनु सुभग स्यामल कांति, इंदु बहु पाति बिच अधिक
छाजै[1] ।।

रास के मध्य में गोपियाँ इस बात पर गर्व करती है कि कृष्ण पूर्णतया उनके अधीन हो चुके है[2]। उनके गर्वशमन केलिए कृष्ण अन्तर्धान होते है[3]। विरहकातर गोपियाँ विलाप करती है[4]। वे वन वन में प्रिय को खोजती है :-

"ढूंढति बाट-घाट बन बन में, मुरछि, नैन जल ढारि[5] ।"

कृष्ण का रूप लक्षण बताकर खोजती है :-

"कोउ कहुं देखे री नंदलाल । सांवरी ढोटा नैन बिसाल ।।
मोर मुकुट बनमाल रसाल । पीतांबर सोहै मनि माल[6] ।।"

उनके हार्दिक शोक से आर्द होकर कृष्ण प्रकट होते है[7]। अपूर्व उत्साह एवं उल्लास के साथ रास नृत्य का पुन: आरंभ होता है[8]।

गोपियों के गर्वशमन का उल्लेख भागवत् और सूरसागर दोनों में विद्यमान है[9]। जीवों में जब अहं की भावना होती है तब परमात्मा उनसे दूर रहता है । परमात्मा का मिलन तभी संभव होता है जब अहं का तिरोभाव होता है । गर्व के शमित होने पर गोपियाँ पुन: कृष्ण परमात्मा के दर्शन पाती है, अपने को चरितार्थ मानती है ।

1· सूरसागर - 1653
2· वही - 1702
3· वही - 1704
4· वही - 1706
5· वही - 1706
6· वही - 1707
7· वही - 1746
8· वही - 1750-1798
9· श्रीमद् भागवत् 10-29-48 सूर सागर 1704

सूर ने रासलीला प्रसंग का कुछ अतिरंजित करके वर्णन किया है जैसे, कृष्ण की मुरली ध्वनि से रास रस का अनुमान कर, बैकुंठवासी नारायण भवन में पड़ते हैं । सुर और सुरललनायें विमोहित होती हैं । मुनिगण अपना ध्यान छोड़ गोकुल की तरफ निकल पड़ते हैं । शिव, नारद एवं शारदा हत बुद्धि हो जाती हैं[1]। भागवत में भी इस अवस्था विशेष की सूचना मिलती है[2]।

अभी सभी लोग सोये हुये ही थे कि गोपियां और कृष्ण भोर में ब्रज को लौट गए । इस कारण रास क्रीड़ा का रहस्य किसी को ज्ञात नहीं हो सका । इस प्रकार हरि ने कुलवधुओं की लज्जा बचा ली[3]। भागवत् के गोप योगमाया से मोहित थे । अतः वे यह समझते थे कि हमारी पत्नियां हमारे पास ही हैं[4]। भागवतकार और सूरसागरकार दोनों यह समझते हैं कि इस प्रकार का सामूहिक रास विलास कदाचित लोक संग्रह की भावना के विपरीत पड़ेगा । अतएव दोनों उसे लोकदृष्टियों से अलग रखते हैं ।

सूर कुछ अंशों में भागवत् से भिन्न भी हैं । भागवतकार के रास प्रकरण में राधा का कोई उल्लेख नहीं है । केवल "अनया राधितो" कहकर एक गोपी विशेष के कृष्ण की विशिष्ट प्रेयसी होने का संकेत दिया जाता है[5]। वहीं सूरसागर में राधा बनती है[6]। कृष्ण के साथ राधा का विवाह भी सूर करा देते हैं[7]। पर भागवत में इसकी सूचना तक नहीं । संभवतः सूर ने ब्रह्म वैवर्त पुराण से यह प्रसंग ग्रहण किया होगा[8]।

श्रीमद् भागवत् के अनुसार कृष्ण का वेणुनाद सुनकर ब्रजरमणियां झट गृह छोड़कर उनके पास पहुंचती हैं, किन्तु सूरसागर में कृष्ण सोलह सहस्र

---

1. सूरसागर - 1686, 1797, 1770 इत्यादि ।
2. भागवत - 10-33-19
3. सूरसागर - 1787
4. भागवत् 10-33-38
5. ~~सूरसागर - 1686~~ , श्रीमद् भागवत 10-30-28
6. डॉ॰ विश्वनाथ शुक्ल : हिन्दी कृष्ण भक्तिकाव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव- तथा डॉ॰ हरवंशलाल शर्मा : सूर और उनका साहित्य - पृ॰176 |- पृ॰185
7. सूरसागर - 1689-1703
8. ब्रह्म वैवर्त पुराण - कृष्ण जन्म खण्ड - अध्याय 15 - पृ॰502, 503

गोपियों को बंसी ध्वनि के द्वारा नाम लेकर रास केलिए बुलाते हैं[1]। तरुणियों के भूषण विपर्यय का उल्लेख जो कि सूरसागर में है भागवत् में नहीं मिलता । कृष्ण राधा तथा अन्य गोपियों के नृत्य नैपुण्य एवं उल्लास का तन्मयतापूर्वक सूर वर्णन करते हैं जबकि भागवत में केवल गोपियों की ही नर्तन कुशलता का वर्णन है । भागवत् में कृष्ण के परस्त्रियों के साथ रमण करने के अनौचित्य[2] का प्रश्न उठा करके उसका समाधान किया है[3]। यह प्रसंग सूर ने पूर्णतः छोड़ दिया है ।

जिस राधा और कृष्ण के प्रेम को, रासलीला जैसे प्रसंगों को, सूर जैसे भक्तों ने अपनी गूढातिगूढ़ चरम भक्ति का व्यंजक बनाया उसको लेकर आगे के कवियों ने श्रृंगार की उन्मादकारिणी उक्तियों से हिन्दी काव्य को भर दिया[4]।

कृष्णगाथा में रासलीला

कृष्णगाथा में दो अध्यायों में [गोपिकादुख, रासक्रीडा] कृष्ण की रासलीला का विस्तृत चित्रण है । गोपिकादुख आपेक्षिक दृष्टि से अधिक विपुल है [1497 पंक्तियाँ]

कृष्णगाथा के रासक्रीडा प्रकरण में मुरलीवादन और गोपियों के वृंदावन की ओर आगमन का वर्णन नहीं मिलता । रासक्रीडा सीधे यमुनातट पर शुरू होती है[5]। गोपियाँ स्वगर्विता हैं । उनको अपने सौभाग्य का भी गर्व होता है । वे मानिनी भी हैं । उनका गर्व शमन करने के निमित्त कृष्ण उनके बीच में से नीला नामक गोपिका के साथ अप्रत्यक्ष होता है[6]।

---

1. सूरसागर - 1606
2. प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् - भागवत 10-30-35
3. भागवत 10-30-30-37
4. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास [15 वाँ सं.] - पृ.159
5. कृष्णगाथा गोपिकादुख - 300-310
6. वही - 745-746

भागवत् में एक गोपिका को साथ लेकर (किसी का नाम नहीं) कृष्ण अन्तर्धान होता है[1]। सूरसागर में इस प्रसंग में राधा का चित्रण देख सकते हैं। कृष्णगाथाकार यहाँ नीला नामक गोपी का चित्रण करते हैं।

नीला को भी कृष्ण के सामीप्य का अहंकार होता है। कृष्ण जल्दी उसे भी छोड़कर अंतर्धान होता है[2]।

कृष्ण के अदृश्य होने पर गोपियाँ विरह विह्वल होती हैं। भागवत् में बहुत संक्षेप में प्रस्तुत घटना का उल्लेख है। सूरसागर में आपेक्षिक दृष्टि से अधिक वर्णन है। गाथाकार का वर्णन काफी विशाल है।

रास प्रसंग में गाथा में भागवत् की कुछ पंक्तियों का कोरा अनुवाद मिलता है। कृष्ण गोपिकाओं से पूछता है - "इस घोर रात्रि में घर छोड़ कर तुम क्यों आयी हो ? इस कानन में हाथी, चीता जैसे क्रूर जानवर हैं। अंधकार पूर्ण रात में घर में भी डरनेवाली तुम कैसे यहाँ आयी हो ? ....घर में लोग तुम्हें खोजते होंगे। इसलिए तुम जल्दी लौट जाओ। कृष्ण का वचन सुनकर गोपिकायें विलाप करती हैं। अश्रुधारा से उनके स्तनों का कुंकुम छूट जाता है। पैरों के नखों से वे पृथ्वी पर चित्र खींचती हैं[3]।

यह भागवत् की निम्नलिखित पंक्तियों का शब्दशः अनुवाद है।

"व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमन कारणं ।
रजन्येषा घोररूपा घोरसत्वनिषेविता ।
प्रतीयात् व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमा: ।।

xx xx xx xx

---

1. श्रीमद् भागवत् - 10-30-28
2. कृष्णगाथा - गोपिका दुःख - 810-820
3. वही - 200-240

कृत्वा मुखान्यवशुच: श्वसनेन शुष्यद् ।
बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्य: ।।
अस्रैरुपात्तमषिभि: कुचकुंकुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदु:ख भरा:स्म तूष्णीम्[1] ।।

कृष्ण गोपिकाओं को वैराग्य का उपदेश देते हैं । फिर भी गोपियाँ उसी प्रकार खड़ी होती हैं । प्रस्तुत प्रकरण का चित्रण भागवत् और गाथा दोनों में समान रूप से है । लेकिन दोनों कवियों की गोपिकाओं के उत्तर में अन्तर है । भागवत् की गोपियाँ कहती हैं :- "प्यारे कृष्ण ! तुम घट घट व्यापी हो । हमारे हृदय की बात जानते हो । तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरता भरे वचन नहीं कहने चाहिए । हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणों में ही प्रेम करती हैं । .... हमें स्वीकार कर लो । हमें छोड़ो मत[2] ।

कृष्णगाथा की गोपियाँ कहती है "आज एक अद्भुत देख लीजिए । ऐसा पहले हमने कभी नहीं देखा । मधुर आम के पेड़ में कड़ुआ फल [कारस्कर] निकल आया है । हमारे मन को तू ने ले लिया है । अब लौटने के बारे में सोचते समय हमें बड़ा दुख होता है[3] ।

भागवत की गोपिकायें कृष्ण का वचन सुनकर विलाप करती हैं - "हम बेचारी हैं, तुम ईश्वर हो, तुम्हारे प्रति हमारे मन में अनुराग उमड़ रहा है । हमें छोड़ो मत ।"

सूर के कृष्ण भी गोपिकाओं को घर लौटने का उपदेश देते हैं :-

---

1. श्रीमद् भागवत् - 10-29-18,19,29
2. वही - 10-29-31,33
3. कृष्णगाथा - गोपिका दुख - 240-244

"जाहु जाहु अब सूरत जुवति जन"।[1]

कृष्ण के वचन सुनकर युवतियाँ अत्यन्त शोकाकुल हो गई[2]। वे इतनी चकित हो गई कि मुख से कोई वाणी ही नहीं निकलती। उनका मन इतना कुम्हला गया मानों तुषारग्रस्त कमल हो। उनको इतना पश्चात्ताप हुआ मानों हाथ आयी महानिधि खो गई हो[3]। गोपियों की प्रेमातुर स्थिति का सूर ने अनेक पदों में विस्तार के साथ वर्णन किया है। गोपियों का तर्क है कि कृष्ण अन्तर्यामी है। दूसरों का हृदय जाननेवाला है। वह इतना कठोर नहीं हो सकता। वे यह भी कहती है कि कृष्ण के द्वारा परित्यक्त होने पर वे अपने प्राणों का परित्याग करेंगी[4]।

गाथाकार नारी हृदय के अधिक जानकार प्रतीत होते हैं। उनकी गोपियाँ अधिक व्यवहारकुशल है। स्त्रियाँ अपनी हृदगत बातों का विशेषकर प्रणय संबन्धी बातों का खुलम खुल्ला प्रतिपादन नहीं करतीं। अतएव "आम के पेड़ में बबूल फल" की अन्योक्ति के द्वारा कृष्ण की कठोरता का उपालंभ करती है। भागवत् की गोपियाँ निरीह, अवाक् और सरल हैं। अपने हृदय की वेदना और विवशता का ज्ञापन करते हुए प्रियतम की सहानुभूति को जाग्रत करना ही उनका लक्ष्य है।

इस दिशा में सूर की गोपियों के वचन अधिक स्वाभाविक और हृदय-ग्राही है। भागवत् का प्रतिपादन भी हृदय को छूनेवाला है पर गाथाकार की गोपियों में वचन विदग्धता के होते हुए भी तन्मयता की मात्रा कम है।

---

1. सूरसागर - 1629
2. वही - 1639
3. वही - 1636
4. वही - 1640

कृष्णगाथा के रासक्रीडा वर्णन के समान सुन्दर श्रृंगार वर्णन मलयालम साहित्य में दुर्लभ है । गोपिकादुख में जो विरह की तीव्रता है वह उल्लेखनीय है[1] ।

रासक्रीडा के बीच कृष्ण सहसा ओझल होते हैं – इसका उल्लेख पहले किया है । विरह कातर गोपिकायें उन्मत्त सी कृष्ण का अन्वेषण करती हैं । वन की सब लताओं, भ्रमरों और पुष्पों से वे कृष्ण के बारे में पूछती हैं[2] । प्रिय के रूप और वेशभूषा बताकर खोजती हैं[3] । आज तक उन्हें आनन्द प्रदान करनेवाला था वह कानन । लेकिन आज वह कानन उन्हें कामाग्नि में जलाता है । कोकिल निकूजन उन्हें दुख देता है । नदी का शीतल जल भी उन्हें सुख नहीं प्रदान करता ।

सूर की गोपियों की स्थिति अधिक मर्मभेदक है । वे हाथ पसारते हुए "हा नाथ, हा नाथ" पुकारकर रोदन करती हैं[4] । उनका सारा गर्व पिघल जाता है । वे अपने को अधिक भाग्यहीन समझती है । रोती बिलखती "बाट बाट वन वन में" कृष्ण को ढूंढती हैं[5] । वे वृक्षों, लताओं और पक्षियों से कृष्ण के बारे में पूछती हैं[6] । सब कहीं कृष्ण की छाया का आभास पाती हैं[7] । इस प्रकार रोती बिलखती रहनेवाली सूर की गोपियाँ जड पदार्थ को भी विचलित करने में समर्थ है ।

स्पष्ट है सूर और चेरुश्शेरी दोनों ने विरह वर्णन में श्रीमद् भागवत् का क्रम ग्रहण किया है । किन्तु दोनों ने विस्तार से ही गोपिकाओं के विरह का प्रतिपादन किया है । भागवत्कार अत्यन्त संक्षेप में ही उनकी हृदयव्यथा का अनावरण करता है । वह नारी हृदय का अच्छा ज्ञाता नहीं प्रतीत होता । पर सूर और चेरुश्शेरी दोनों ने बडी हार्दिकता के साथ नारी के उत्कण्ठामय व्यथा से मथित हृदय का अनावरण किया है ।

---

1. तायाट्टु शंकरन – कृष्णतिलकम [प्र०सं०] 1954 – पृ० 113
2. कृष्णगाथा – गोपिका दुख 97–720
3. वही – 720–730
4. सूरसागर – 1706
5. वही – 1706
6. वही – 1707
7. वही – 1709

संयोग शृंगार का भी सुन्दर चित्रण रासलीला में मिलता है । कृष्ण के साथ प्रभात तक गोपिकाओं ने रमण किया । प्रभात होते देखकर उन्हें बड़ा दुख होता है । एक गोपी अपनी सखी से पूछती है :- मुर्गे क्यों आज समय से पहले कूजन करते हैं ? कानन के मुर्गों को न्याय अन्याय का बोध नहीं है । घर के मुर्गों को न्याय का पता है । आधी रात में ऐसा कूजन करने में क्या न्याय है[1] ? प्रभात में कृष्ण से अलग होने वाली हैं - ऐसा समझकर गोपिकायें अत्यन्त दुखी होती हैं ।

तुलना

भागवत् की गोपियां अपने सुख दुख से बढ़कर कृष्ण के सुख दुख पर आस्थावान हैं । वे इस संभावना से विचलित होती हैं कि कृष्ण के कोमल चरण वन मार्ग में पड़े कंकड़-पत्थर से दुखते होंगे[2] । - "तुम्हारे कमल से भी सुकुमार जिन चरणों को हम अपने कठोर उरोजों पर धीरे से डरते डरते रखती थीं कि उन्हें कहीं चोट न लग जाय, उन्हीं चरणों से तुम रात्रि के समय घोर जंगलों में छिपे छिपे भटक रहे हो[3] । क्या कंकड़ पत्थर इत्यादि की चोट से उनमें पीड़ा नहीं होती ? हमें तो इसकी संभावना मात्र से ही चक्कर आ रहा है[4] । रासक्रीड़ा के बीच में प्रिय द्वारा परित्यक्त होने पर भी गोपिकायें प्रियतम के सुख दुख को लेकर उत्कंठित होती हैं । उनके स्वार्थ त्याग और आत्म समर्पण की भावना सर्वत्र व्यक्त होती है ।

सूरसागर और कृष्णगाथा की गोपियां अपेक्षाकृत अधिक सरल हैं । वे कृष्ण को लेकर उत्कंठित नहीं होतीं । उनके प्रियतम व्यथाओं से परे विराजमान हैं । वे इससे चिंतित नहीं कि उनके प्रियतम श्याम कहां और कैसे होंगे ।

1· कृष्णगाथा रासलीला - 1183-1186

2· श्रीमद् भागवत - 10-32-19

3· वही - 10-32-19

4· वही - 10-32-19

अंतर्धान होने के बाद कृष्ण सहसा यमुना पुलिन पर प्रकट होते हैं। गोपियों में नवप्राणों का संचार हो जाता है। सूर ने बिना किसी विलम्ब के, रास का पुनः आरंभ करा दिया है। न तो उनके नायक को और न उनकी नायिकाओं को किसी प्रकार के औपचारिक आचरण की अपेक्षा थी। भागवत् की गोपियाँ इस संदर्भ में यथेष्ट धैर्य एवं सहृदयता का परिचय देती हैं।[1] कृष्णगाथा की गोपियाँ भी यही करती हैं। एक गोपी बड़े प्रेम एवं आनन्द से कृष्ण के कर-कमलों को अपने हाथों में लेकर धीरे धीरे सहलाने लगी।[2] दूसरी गोपी उनके चन्दन चर्चित भुजदण्ड को अपने कंधे पर रख लेती है। तीसरी जिसे विरह की जलन अधिक सता रही थी, बैठ गई और उसने उनके चरण कमल को अपने वक्षस्थल पर रख लिया[3] और एक गोपी निर्निमेष नयनों से कृष्ण के मुखकमल का मकरन्द पान करने लगी।[4]

पर सूर ने इस प्रकरण को छोड़ ही दिया है। जैसा कि ऊपर सूचित किया है, उन्होंने झट रासलीला का आरंभ ही करा दिया। यहाँ गोपिकाओं के वैयक्तिक स्नेह प्रदर्शन की जो झांकी भागवतकार और गाथाकार ने दी वह अधिक मनोवैज्ञानिक प्रतीत होती है। हो सकता है सूर की गोपियाँ अधिक संयमशील हों।

व्रज सुन्दरियाँ कृष्ण के साथ यमुना के सुरम्य तट पर आती हैं। रासक्रीडा शुरू होती है। अपने अलौकिक सौन्दर्य से कृष्ण सुन्दरियों को आनन्दित करते हैं। तरुणियाँ अपने मन्द हास, बांकी चितवन तथा तिरछी भौहों से उनका सम्मान कर रही हैं। इस प्रकार गोपियों का विरह ताप मिटाने के बाद ही कृष्ण रास क्रीडा शुरू करते हैं।

---

1. श्रीमद् भागवत् - 10-32-4-8
2. कृष्णगाथा - रासक्रीडा - 250-253
3. वही - 223-226
4. वही - 175-180

प्रथम प्रकरण में भागवत् की गोपियाँ अपने सुख दुख की अपेक्षा प्रियतम के सुख दुख की चिन्ता रखती है । इसलिए भागवत्कार मानव प्रकृति की सम्यक् अवधारणा में सूर और पेरुंलोरी की अपेक्षा अधिक दक्ष है । पर दूसरा संदर्भ यह प्रकट करता है कि मानव मनोवृत्तियों के चित्रण में पेरुंलोरी किसी से कम नहीं है ।

अक्रूर की व्रजयात्रा तथा कृष्ण बलराम का मथुरागमन - सूरसागर में

उक्त प्रसंगों की समस्त रूपरेखा श्रीमद् भागवत् से {10-38,39} सूर ने गृहीत की है । अक्रूर को व्रज भेजने के प्रसंग में, सूर ने अपनी प्रिय प्रणाली, स्वप्न दर्शन का आश्रय लिया है । नारद की प्रेरणा से ही कंस अक्रूर को व्रज भेजता है[1]। श्रीमद् भागवत् और सूरसागर दोनों में इसके विवरण में काफी समानता है । किन्तु कंस के स्वप्न दर्शन का वर्णन भागवत् में नहीं है । यह सूर की अपनी उद्भावना है । अक्रूर की यात्रा के उपक्रम में कंस एक स्वप्न देखता है - "श्याम-बलराम काल के समान अत्यन्त कठोर रूप धारण कर उसके सामने खड़े हैं"[2]।" नन्द गोप ने भी ठीक उसी समय पर एक स्वप्न देखा - "श्याम-बलराम को कोई दूत कहीं लेकर चला गया है तथा नन्द यशोदा ग्वाल एवं व्रजनारियाँ सभी विह्वल होकर बिलख रहे हैं"[3]।" कंस और नन्द के घर में स्वप्न दर्शन से व्याकुलता व्याप्त होती है । दोनों के स्वप्न सत्य सिद्ध होते हैं ।

कृष्णगाथा में भी स्वप्न का वर्णन है । स्वप्न कभी कभी आगामी घटनाओं का दर्पण होता है । व्रजवासियों के जीवन में सत्वर घटित होने वाले महत्वपूर्ण बातों के यह अग्र सूचना है ।

---

1. सूरसागर - 3242,3559
2. वही - 3443
   "अतिकठोर दोउ काल से, भस्यो अति भयबयो"

बलराम कृष्ण के मनोरमणीय दर्शनों की उत्कंठा से नितान्त मोद एवं उत्सुकता के साथ अक्रूर व्रज को गए[1]। भागवत् में भी अक्रूर के मन की अवस्थाओं का चित्रण इसी प्रकार है[2]। बलराम का रूप सौन्दर्य देखने की उत्कट इच्छा उनके मन में है[3]।

व्रज पहुंचकर श्याम बलराम को देखकर अक्रूर आनन्द से खिल उठे[4]। कुशल प्रश्न के अनन्तर अक्रूर ने कंस का सन्देश सुनाया[5]। श्याम बलराम के मथुरा जाने का संवाद सुनकर व्रज के लोग व्याकुल हुए[6]। गोपियों में उद्विग्नता छा गई[7]। उनका विरह दुख तीव्र है -

"अनल तैं विरह अगिनी अतिताती[8]।"

श्याम के बिना जीवित रहने की इच्छा तक गोपियों में नहीं है। वे विलाप करती हैं -

"स्याम गएँ सखि प्रान रहेंगे ?"

अतः हम कह सकते हैं सूर की मौलिक प्रतिभा के कारण यह प्रसंग अत्यन्त मनोरम बन गया है।

---

1. सूरसागर - 3561
2. भागवत - 10-38-2-14
3. सूरसागर - 3561,62
   "त्रैलोक्य कान्तं दृशिमन्महोत्सवम्" - भागवत 10-38-14
4. सूरसागर - 3572
5. वही - 3576
6. वही - 3578
7. वही - 3579
8. वही - 3583

कृष्णगाथा में अक्रूर की व्रजयात्रा तथा कृष्ण बलराम का मथुरागमन

कृष्णगाथा में दो अध्यायों में (कंस मन्त्रं, अक्रूरागमनं) इन प्रसंगों का विस्तृत विवरण है । नारद कंस को देवकी के अष्टम पुत्र कृष्ण के नन्द के घर में जीवित रहने की सूचना देता है[1] । अपने सचिवों से परामर्श लेकर कृष्ण को मथुरा में ले आने केलिए कंस अक्रूर को व्रज भेजता है[2] ।

कृष्ण दर्शन का अवसर पाकर अक्रूर मन ही मन आनन्दित होता है[3] । भगवान कृष्ण का रूप सौन्दर्य देखने की इच्छा से वह स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है[4] । व्रज पहुँचकर अक्रूर नन्द और नन्दकुमार दोनों को अपने आगमन का उद्देश्य व्यक्त करता है[5] ।

कृष्ण के मथुरागमन का समाचार पाकर प्रेम विह्वल गोपियाँ विलाप करती हैं[6] । कृष्ण और बलराम अक्रूर के साथ मथुरापुरी केलिए रवाना होते हैं । सन्ध्या होने पर अक्रूर कालिन्दी नदी में स्नानार्थ उतरता है । पानी में डूबते समय अक्रूर कृष्ण और बलराम को नदी में देखते हैं । आश्चर्य चकित होकर जब बाहर देखते हैं तब वहाँ भी दोनों दिखाई देते हैं[7] । कृष्ण को सर्वव्यापी समझकर अक्रूर परम भक्ति भाव से उनकी स्तुति करते हैं । अक्रूर द्वारा दर्शित कृष्ण के दिव्य रूप का वर्णन भागवत् में विस्तार से मिलता है । पर गाथा में यह प्रसंग बिलकुल संक्षिप्त है ।

कृष्ण बलराम के मथुरागमन के प्रसंग में भागवतकार ने केवल इतना कहा है कि विष्णु मथुरा में सदा है[8] । लेकिन चेरुशेरी ने महाकाव्य के अनुकूल 40 पंक्तियों में मथुरा नगर का वर्णन किया है ।

---

1. कृष्णगाथा - कंस मन्त्रं - 120-140
2. वही - 220-240
3. कृष्णगाथा - अक्रूरागमनं - 45-50
4. वही - 51-70
5. वही - 135-140
6. वही - 150-160
7. कृष्णगाथा - कंससलगति - 1-20
8. भागवत - 10-39

तुलना

अक्रूर के व्रजागमन और कृष्ण को साथ लेकर उनके मथुरा प्रस्थान के उपरांत गोपियों की जो करुण दशा हुई उसका सूर और घेरुसेरी ने विशद चित्रण किया है। सूर की गोपियाँ प्राणप्यारे को जाते देखकर चित्रवत् खड़ी रहती हैं। कृष्ण ने उनकी ओर मुड़कर देखा, लौटने की अवधि बताई, तनिक हँसकर उनके मन में आशा उत्पन्न कर दी।[1] चेरुसेरी के कृष्ण गोपियों के निकट जाकर मधुर वाणी से उन्हें सान्त्वना देते हैं।[2] पर भागवत् में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं। सूरसागर और कृष्णगाथा के कृष्ण अधिक उदार और मानव प्रकृति के अधिक ज्ञाता प्रतीत होते हैं।

मथुरा प्रवेश तथा कुब्जा प्रसंग सूरसागर में

श्रीमद् भागवत् से [10-41,42 - पूर्वार्ध] मथुरा प्रवेश का प्रसंग ग्रहण कर अपनी सहज कल्पना से उसे सूर ने अधिक मनोरम और सुन्दर बनाया है। मथुरा नगरी को सूर ने नारी रूप में चित्रित करके प्राण वल्लभ श्याम के स्वागतार्थ उसे सज्जित कर दिया है।[3] आधे दर्जन पदों में मथुरा का वर्णन है। हरि नगरी में प्रवेश कर रहे हैं। वहाँ की युवतियाँ उत्सुकतापूर्वक उनका रूप निहार रही हैं। वे उनके सौन्दर्य पर रीझती हैं, व्रज में उनके कृत्यों [माखनचोरी, उलूखलबन्धन, पूतनावध आदि] का वर्णन करती हैं। विधाता से प्रार्थना करती हैं कि कंस के कारण इनका बाल भी न बिगड़े।[4]

---

1. सूरसागर - 3610,3620
2. कृष्णगाथा - अक्रूरागमनं 185-189
3. सूरसागर - 3640,3641
4. वही - 3644-3650

सूरसागर में धनुष भंग के बाद श्याम कुब्जा से मिलते हैं जबकि भागवत में उसके पहले। भागवत् के अनुसार कृष्ण की कृपा से प्रमदोत्तमा का स्वरूप ग्रहण करनेवाली कुब्जा बलराम के सामने ही कृष्ण का हाथ पकड़ लेती है। पुन: मिलने का वचन देकर कृष्ण उससे छुट्टी लेते हैं। पर सूरसागर की कुब्जा कृष्ण का हाथ ग्रहणकर विनयपूर्वक कहती है कि मैं आपके जन्म जन्म की संगिनी हूं। मैं आपके अंगों में चंदन का लेपन करूंगी। आपकी सेवा में जीवन बिताऊंगी। तभी कृष्ण अपने कर स्पर्श से उसे रूपवती बना लेते हैं। उसकी मनोकामना पूर्ण करते हैं[1]।

भागवत् की कुब्जा स्त्री सहज लज्जा शालीनता आदि गुणों से रहित प्रतीत होती है। बड़े भाई के सामने छोटे भाई का आग्रहपूर्वक हस्तग्रहण करना अत्यन्त अनुचित ही कहा जा सकता है। साधारणत: लज्जावती नारी उसकेलिए तैयार नहीं होगी। लेकिन सूर की कुब्जा ने अधिक औचित्य और विवेक का परिचय दिया है। वह कृष्ण पर अधिकार जमाना नहीं चाहती। उनकी सेवा शुश्रूषा करते हुए जीवन बिताना चाहती है। वह अपने को कृष्ण की चिर संगिनी मानती है। यह उसका प्रेमोत्कर्ष द्योतित करता है।

सूर कुबरी के पूर्व तप का कथन कर उसके कृष्णानुराग की सचाई का समर्थन करते हैं[2]। कुब्जा पूर्व जन्म में हरि की दासी थी[3]। कृष्ण जैसे गोकुल में गोपियों के साथ रहे उसी प्रकार पूर्वजन्म में उसके साथ भी रहे[4]।

कुब्जा की महिमा का सूर विस्तृत वर्णन करते हैं। भागवत् में यह बात नहीं पायी जाती। सूर के अनुसार कंस वध के उपरान्त ही कृष्ण उससे

---

1. सूरसागर - 3668,3669
2. वही - 3719
3. वही - 3712
4. वही - 3722

मिलते हैं और उसे अपनी पटरानी बना देते हैं । भागवत् में इसका भी उल्लेख नहीं । भागवत् के अनुसार उद्धव के ब्रज से लौटने के उपरान्त कृष्ण "कामतप्ता" कुब्जा से पुनः मिलते हैं[1] ।

भागवत् के कृष्ण के मथुरा प्रवेश का प्रसंग सूरसागर की अपेक्षा अधिक आकर्षक है । मथुरा की नारियों की व्यग्रता, उनका युक्त विपर्यय आदि का अंकन सूरसागर में नहीं है । सूर ने केवल एक हल्का संकेत मात्र दिया है[2] । कृष्ण दर्शन लालसा से उत्पन्न परिवेश-विस्मरण का चित्रण सूर के रासलीला प्रसंग में मिलता है । श्रीमद् भागवत् के प्रस्तुत प्रसंग का प्रभाव यहाँ स्पष्ट दृष्टव्य है ।

मथुरा प्रवेश तथा कुब्जा प्रसंग - कृष्णगाथा में

कृष्णगाथा के उत्तरार्द्ध का प्रथम अध्याय [कंस सद्गति] कुब्जा प्रसंग से शुरू होता है । श्रीमद् भागवत् और सूरसागर के समान कृष्णगाथा में भी अक्रूर के साथ कृष्णबलराम मथुरापुरी पहुँचते हैं । दोनों को नगर प्रांत में छोड़कर अक्रूर उनके आगमन का समाचार देने केलिए कंस प्रासाद जाता है[3] ।

कृष्ण वहाँ के बालकों को साथ लिए घूमने जाते हैं[4] । तभी कुब्जा दिखाई पड़ती है । वह सुगन्धित वस्तु बेचने गई थी[5] । कृष्ण उससे अंगलेप

---

1. भागवत् - 10-48
2. हरि बल सोभित छबि अनुहार ।
   ससि अरु सूर उदै भए मानो दोउ एकहि बार ।।
   ग्वाल बाल सौं करत कुतूहल, गावत पुरी मझार ।
   नगर नारि सुनि देखन धाईं, सुत, पति, गेह बिसार ।।
   उलटि अंग आभूषन साजत, रही न देह सँभार ।
   सूरदास प्रभु दरस देखि, भईं चकित अवनि निहार ।। सूरसागर - 3654
3. कृष्णगाथा - कंस सद्गति - 35-36
4. वही - 36-40
5. वही - 110-114

माँगते हैं[1]। कुब्जा कृष्ण को सुगन्धित वस्तु दे देती है[2]। कृष्ण सन्तुष्ट होकर कर स्पर्श से उसे सुन्दरी बनाता है[3]। कृष्ण के सामीप्य और स्पर्श से आनन्दित कुब्जा उन्हें अपने घर आने का निमंत्रण देती है[4]। वह कृष्ण प्रेम में इतनी निमग्न होती है कि विरह उसके लिए असह्य हो जाता है। कृष्ण उसे वचन देते हैं कि राजा के दर्शन के बाद वे उसके पास पहुँचेंगे[5]।

इन प्रसंगों का वर्णन कृष्णगाथा में अपेक्षाकृत संक्षिप्त है। इस प्रसंग में विशेष मन्तव्य यह है कि कृष्णगाथा में भी कुब्जा प्रसंग धनुष भंग के पहले ही आता है, पर सूरसागर में उसके उपरान्त।

<u>तुलना</u>

सूरदास ने ही कुब्जा मिलन प्रसंग का अधिक औचित्यबोध के साथ वर्णन किया है। कृष्ण एक उच्च लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही मथुरा आते हैं। वह लक्ष्य यद्यपि उद्घोषित नहीं किया जाता तथापि स्वयं स्पष्ट है। वह है कंस का वध। किसी महान लक्ष्य को ध्यान में रखने वाला व्यक्ति उससे एक क्षण के लिए भी विचलित नहीं होगा। विचलित होना चारित्रिक महत्ता के विरुद्ध भी होगा। सूरसागर के कृष्ण ने लक्ष्य सिद्धि (कंसवध) के उपरान्त ही कुब्जा की मनःकामना पूर्ण की। यह उनकी चारित्र्य की महानता और धीरोदात्तता का परिचायक है।

---

1. कृष्णगाथा - कंस सद्गति - 120-130
2. वही - 140-145
3. वही - 160-170
4. वही - 200-205
5. वही - 210-212

उद्धव का ब्रजागमन एवं भ्रमरगीत सूरसागर में

सूरदास ने प्रस्तुत प्रकरण की स्थूल रेखायें श्रीमद् भागवत (10-46,47) से ग्रहण की हैं। इस प्रकरण में भी सूरसागर का भागवत् से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कृष्ण का संदेश लेकर उद्धव ब्रज पहुँचते हैं। कुछ काल तक वह नन्द धाम में निवास करते हैं। गोपियाँ विरह निवेदन करती हैं। वे भ्रमर के ब्याज से कृष्ण तथा उद्धव का उपालंभ करती हैं। उद्धव गोपियों की अनन्य भक्ति से अभिभूत होते हैं। ये सारे प्रकरण सूर श्रीमद् भागवत् से ही ग्रहण करते हैं। दोनों कवियों की दृष्टि में समानता भी है। पर यह समानता केवल बाहरी है। सूर की आंतरिक दृष्टि भागवतकार से सर्वथा भिन्न है।

संदेश संवहन है भागवत् का उद्धव गमन उद्देश्य। सूर का लक्ष्य भिन्न है। सूरसागर का कृष्ण उद्धव के ज्ञान गर्व का शमन करना चाहते हैं। सूर के उद्धव अमल कमल के समान स्वच्छ किन्तु प्रेमरस से विहीन, त्रिगुणातीत ब्रह्म के उपासक तथा योगसाधना के प्रबल समर्थक हैं[2]। कृष्ण स्वतः अनुभव करते हैं कि अपना और उद्धव का सम्बन्ध हंस एवं काग का, कंचन एवं कांच का, खली एवं कपूर का संयोग है और ब्रज की यत्किंचित् चर्चा भी चलाने पर उद्धव का मन उचट जाता है[3]। अतएव कृष्ण ने निश्चय किया कि -

> या आगैं रसकथा प्रकासौं जोग कथा प्रगटाउं।
> सूर ज्ञान याकौ दृढ़ करिकै जुवतिन्ह पास पठाउं[4]।

---

1. सूरसागर - पद 4030-4777
2. वही - 4031
3. वही - 4036
4. वही - 4040

सूर की उद्धव ब्रजयात्रा निर्गुण के बदले सगुण की, योग के बदले प्रेम की, ज्ञान के बदले भक्ति की प्रतिष्ठा के स्थापनार्थ नियोजित की गई है, जबकि भागवत की उद्धव ब्रजयात्रा का एकमात्र उद्देश्य गोपियों तथा नन्द यशोदा को कृष्ण का सन्देश सुनाकर आश्वस्त करना है ।

इस मौलिक अन्तर ने सूरसागर की गोपियों को भी भागवत की गोपियों से भिन्न बना दिया है । सूर सागर के उपालम्भों में एक तीव्रता है, एक व्यंग्य है, एक वेदना गर्भित विनोदशीलता है, जो उनकी पौराणिक बहनों में दृष्टिगोचर नहीं होती । उद्धव के ज्ञान काठ की तुच्छता प्रदर्शित करने तथा उनको उपहासास्पद बनाने का जो सफल उद्योग सूरसागर की गोपियों ने किया है वह भागवत की गोपियों में लक्षित नहीं है । निर्गुण का उपदेश व सन्देश सुनकर भागवत की गोपियाँ प्रसन्न हो जाती है जैसे उन्हें इससे पूर्ण सहमति है, जैसे उनकी अपनी कोई विशिष्ट स्थिति, कोई मौलिक मान्यता नहीं[1] । किन्तु सूरसागर की गोपियाँ तर्क प्रवण हैं, सचाई को दो टूक निवेदन करने का नैतिक साहस रखती हैं, और तिरस्कृत किंवा प्रवंचित प्रेम के मनोविज्ञान की जीवन्त पुत्तलिकायें हैं ।

भागवत की गोपियों ने अपने समस्त उपालम्भों का केन्द्र बिन्दु बनाया है श्रीकृष्ण को, भ्रमर के व्याज से उन्होंने टीका टिप्पणी की है, रमा रमण मुकुन्द की निष्ठुरता की, जबकि सूरसागर में बात बिलकुल उलटी है । वहाँ मधुप या मधुकर की आड में उद्धव की निन्दा अधिक की गई है, गोपियों के प्रहार का केन्द्र कृष्ण कम और उद्धव अधिक हो गए हैं । सूर की गोपांगनायें अपने प्रियतम से तो रुष्ट एवं खिन्न हैं ही, किन्तु उनसे भी अधिक वे जली-भुनी हैं उद्धव से, उसने उनके प्रेम परिप्लुत जीवन प्रवाह में निर्गुण तथा योग की उलटी नाव चलाने का उद्योग किया है । भागवत की गोपियों के मानस में भ्रमर कृष्ण का पर्याय है जबकि सूरसागर में मधुप कृष्ण से अधिक उद्धव का प्रतिरूप है ।

1· भागवत - 10-47-38

भागवत की गोपियाँ उद्धव के ज्ञानोपदेश को सुनकर सन्तुष्ट होती हैं[1]। भागवतकार ने ज्ञान एवं भक्ति में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। सूरदास की गोपियाँ ज्ञान, योग एवं निर्गुण की खिल्लियाँ उड़ाती हैं और उद्धव को "ज्ञान का बेला" बना देती हैं[2]। इस प्रकार उद्धव को निरुत्तर एवं निश्चल बना देती हैं[3]। प्रेम तत्व का जो विशद विवेचन सूरदास में उपलब्ध होता है, वह भागवत् में खोजने पर भी नहीं मिलेगा।

सूर की मौलिकता

भ्रमरगीत में वियोग श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति मर्मस्पर्शी है। गोपियों के विरह दग्ध हृदय को ज्ञानगर्वित ऊधो निर्गुण ब्रह्म के उपदेश द्वारा सान्त्वना नहीं दे पाते। गोपियाँ उन्हें भरपूर उल्लू बनाती हैं और कृष्ण प्रेम की रट लगाये रहती हैं। उनके आँसुओं का पारावार देखिए -

निसिदिन बरसत नैन हमारे[3]।

गोपियों की ही यह दशा नहीं है। कृष्ण के वियोग में जड़ चेतन सब विकल हैं।

"तृण न चरत गो, पियत न सुत पय, ढूँढत बन बन डोलें।"

शाश्वत और उदात्त मानव अनुभूतियों को वाणी देने के कारण सूर के काव्य का रस प्रवाह अभी सूखा नहीं।

प्रस्तुत प्रकरण में सूरदास ने कतिपय नवीन तथ्य जोड़ दिये हैं।

---

1. [illegible] - [illegible] भागवत् - 10-47-39
2. सूरसागर - 4679
3. वही - 4715
4. वही - 4187

श्याम अपने हाथ से पत्र लिखते हैं[1] जिसमें गोपियों को योग धारण करने निर्देश किया गया है, नंद यशोदा को संदेश भेजते हैं कि वे थोड़े दिनों में ब्रज लौट आयेंगे, माता पिता के साथ साथ सुदामा आदि मित्रों को भी सन्देश भेजते हैं। कुब्जा जब सुनती है कि उद्धव ब्रज की यात्रा कर रहे हैं तब वह उन्हें अपने महल में बुला लेती है, और राधा तथा गोपियों के लिए पत्र लिखकर देती है जिसमें वह उनके द्वारा अपने ऊपर लगाये गये आरोपों का खंडन करती है तथा अपनी निर्दोषता सिद्ध करती है[2]। मथुरा से उद्धव के प्रस्थान करने पर ब्रजनारियों को शुभ शकुन होने लगते हैं[3]। उद्धव के ब्रज गमन का समाचार घर घर फैलने पर नन्द, यशोदा तथा अन्य नारियां गाते हुए उदधि तरंग की भांति, उमड़ पड़ती हैं[4]। ब्रजवासी अनुमान लगाते हैं कि आगन्तुक शायद कृष्ण हों। रथ के निकट आने पर 'सखियां' उद्धव को पहचानती हैं। वे मूर्छित होकर धरणी पर गिर पड़ती हैं। यह जानकर कि उद्धव कृष्ण के प्यारे सखा है, ब्रजवासी किसी सुखद समाचार की प्रतीक्षा में उनके रथ को घेर लेते हैं। ब्रज नारियां कंचन कलश, दधि, दूर्वा, रोचन आदि लेकर वृन्दावन जाती हैं तथा उद्धव के सिर पर तिलक लगा देती हैं और उन की प्रदिक्षणा करती हैं। नर नारी हर्षित होकर कृष्ण का कुशल पूछती हैं[5]।

ये सभी प्रसंग सूर की मौलिक भावना से उद्भावित हैं। इसी प्रकार कृष्ण के पत्र की गोपियों की मधुर प्रतिक्रियायें भी सूर की मौलिक देन हैं।

---

1. सूरसागर - 4056
2. वही - 4063
3. वही - 4072,4073
4. वही - 4082
5. वही - 4098

ब्रज घर घर सब होनि बधाई।
कंचन कलस दूबदधि रोचन लै वृंदावन आइ।
मिलि ब्रजनारि तिलक सिर कीन्हौ करि प्रदच्छिना तासु।
पूछत कुसल नारि नर हरषत, आए सब ब्रज बास।
सकसकात तन धकधकात उर, अकबकात सब ठाढे।
सूर उपंगसुत बोलत नाहीं, अति हिरदै ह्वै गाढे।।

उद्धव की ब्रजयात्रा तथा भ्रमरगीत - कृष्णगाथा में

श्रीमद् भागवत् तथा सूरसागर दोनों में उद्धव की ब्रजयात्रा का विस्तृत वर्णन है। लेकिन कृष्णगाथा में अत्यन्त संक्षेप में ही उसका प्रतिपादन हुआ है। भागवत् की मूलकथा 114 पंक्तियों में "उद्धवदूत" नामक अध्याय में वर्णित है। भागवत् में दो अध्यायों में [10-46,47] 118 [49 + 69] श्लोकों में इसका वर्णन है। सूरसागर में 748 पदों में [4030-4777] इसका विस्तृत वर्णन है।

गाथाकार ने प्रस्तुत प्रसंग को कल्पना और भावना से रंजित नहीं किया। तीव्र विरह की तन्मयता के कारण श्रीमद्भागवत् का भ्रमरगीत अत्यधिक हृदयग्राही बन गया है। वह विशिष्टता कृष्णगाथा में प्राप्त नहीं होती।

गाथा के अनुसार कृष्ण अपने माता पिता तथा गोपिकाओं के विरह दुख को दूर करने केलिए संदेश वाहक के रूप में उद्धव को ब्रज भेजते हैं[1]। कृष्ण का सन्देश लेकर उद्धव संध्या समय ब्रज में आ पहुँचते हैं। उनके आगमन से गोकुल में हर्षोल्लास छा जाता है[2]। कृष्ण चरित के सानुराग कथन श्रवण में सारी रात बीत जाती है[3]। प्रात:काल में गोपियों ने उद्धव आगमन के बारे में सुना। उद्धव को गोपियों ने उत्सुकतावश घेर लिया और यह जानकर कि वे श्रीकृष्ण के संदेश वाहक हैं, उनसे कहने लगीं - हम जानती हैं कि आपके स्वामी [कृष्ण] ने आपको यहाँ अपने माता पिता का प्रिय करने केलिए ही भेजा है[4]। हमें धोखा देकर जानेवाले कृष्ण क्या हमें याद करते हैं[5]?"

गोपियां तन्मय हो कृष्ण को उपालंभ देने लगीं। उसी समय एक भौंरा उड़ता हुआ आया[6]। भ्रमर को अपने प्रियतम का भेजा हुआ दूत मानकर

1. उद्धवदूत - 37-39
2. वही - 23,24 पंक्तियां
3. वही - 7-14 "
4. वही - 46-50 "
5. वही - 50-52
6. वही - 66-70

गोपियाँ उसे माध्यम बनाकर कृष्ण से कहती हैं - "मधु पीकर पुष्प को छोड़कर आने वाले तुम हमें छोड़कर जानेवाले कृष्ण के समान हो[1]। दुःख विहृवल गोपियाँ सारी लाज लज्जा छोड़कर रो उठीं[2]।

गोपियों की प्रेमविह्वलता देखकर उद्धव स्वयं भावविभोर होते हैं। अत्यन्त मृदुल वाणी में तब उन्हें कृष्ण का सन्देश सुनाते हैं[3]। कृष्ण का स्निग्ध सन्देश सुनकर गोपियाँ संतृप्त हो जाती हैं, उनका विरह ताप शान्त हो जाता है[4]। तीन चार महीने तक व्रज में रहने के बाद उद्धव मथुरा लौटते हैं। व्रजवासियों की प्रेम भक्ति का वर्णन उद्धव श्रीकृष्ण से करते हैं[5]।

तुलना

सूरसागर का भ्रमर गीत प्रसंग भागवत् और कृष्णगाथा से भिन्न है। भागवत् और गाथा की गोपियाँ उद्धव के ज्ञानोपदेश का अनादर और विरोध नहीं करतीं। कृष्ण का सन्देश सुनकर उनकी विरह व्यथा शान्त हो जाती है। वे वाद विवाद में विचक्षण नहीं हैं। पर सूर सागर की गोपियाँ अधिक पटु हैं। वे निर्गुण ज्ञान पक्ष को सर्वथा विरोध ही करती हैं। "निर्गुन कौन देस को बासी" कहकर उसका उपहास करती हैं। प्रेमलक्षणा भक्ति की भागीरथी में सूर ने ज्ञान की मंजूषा को बहा दिया। उनकी गोपिकाओं का कृष्ण प्रेम अधिक गंभीर और हृदय स्पर्शी है। उसमें अधिक गहनता है। कृष्ण भी गोपिकाओं के प्रेम की इस विशेषता को समझ लेते हैं[6]।

---

1. उद्धव दूत - 74-78
2. वही - 100-104
3. वही - 105-108
4. वही - 107-108
5. वही - 109-114
6. सूरसागर - 1417

इससे स्पष्ट है कि सूर स्त्री हृदय के अधिक सूक्ष्म द्रष्टा हैं। सूरसागर का सबसे सुन्दर और सबसे मौलिक प्रसंग भी यही है।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति के साथ मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब मानव ने आँखें खोलीं तब से प्रकृति उसकी सहचरी बनी आ रही है। मानव प्रकृति के साहचर्य, प्रेरणा और प्रभाव से कदापि वंचित नहीं रह सकता। आरंभ से ही इस मानव प्रकृति के चिर साहचर्य के कारण संयुक्त वासना या संस्कार रूप में प्रकृति के प्रति मानव में आकर्षण बना रहता है। मानव के सारे जीवन को प्रकृति घेरे रहती है। उसमें मानव को सत्य शिव एवं सुन्दर तत्वों के दर्शन हुए। प्रकृति के सुन्दर, विराट और भयंकर रूपों को देखकर मानव प्रसन्न, चकित तथा भीत हुआ। फिर भी जीवन के अभिन्न अंग के रूप में उसने प्रकृति को स्वीकार किया।

कवि के काव्य को भी प्रकृति युग युग से अनुप्राणित करती आ रही है प्रकृति को कवि काव्य में प्रश्रय मिला और प्रकृति के नाना व उपादानों के सहारे कवि ने काव्य का प्रणयन किया। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में उसके प्रत्येक अंग का सूक्ष्म निरीक्षण करता हुआ कवि काव्य रचना करने लगा। भावुक कवि के लिए प्रकृति चेतन रूप ग्रहण कर लेती है। कवि प्रकृति में चेतना तथा स्पन्दन का अनुभव करता है। प्रकृति की ममतामयी क्रोड में मानव आत्मीयता का अनुभव करता है। यह आत्मीयता काव्य में मुखरित होती है। कवि प्रकृति के स्वाभाविक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपनी सुध बुध खो देता है। उसके बाह्य रूप पर मुग्ध होकर उससे भाव तादात्म्य स्थापित करता है। कवि प्रकृति में मानव चेतना का अनुभव करके उसके साथ अपनी हृदयगत भावनाओं का सम्बन्ध जोड़ता है। इसी कारण कवि का प्रकृति चित्रण विशुद्ध वस्तुगत और निरपेक्ष न होकर भावगत एवं सापेक्ष रहता है।

जैसे प्रत्येक मानव या कवि की जीवनदृष्टि उसके अपने मस्तिष्क-विकास, अनुभव, ज्ञान एवं संस्कारों के प्रभाव के अनुसार दूसरे की जीवन दृष्टि से भिन्न होती है, वैसे ही उसकी प्रकृति चेतना भी भिन्न ही रहती है। इसी कारण काव्यों में विभिन्न प्रकार के प्रकृति चित्रण उपलब्ध होते हैं। कहीं प्रकृति कवि कौतूहल का विषय बनी है तो कहीं उसकी जिज्ञासा को शान्त करती है। कहीं वह मानव को - कवि को उपदेश देनेवाली हो जाती है तो कहीं उसकी प्रतिकृति बन जाती है। कहीं प्रकृति के उपमान मानव सौन्दर्य की अभिव्यंजना के काम में लाये जाते हैं, तो कहीं उसकी ओट से दार्शनिक सिद्धान्तों की उपलब्धि की जाती है। इस प्रकार काव्य में कवि प्रकृति चित्रण विविध रूप में करता आ रहा है। कोई कवि जब प्रकृति का यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है, जिसमें सजीवता विद्यमान रहती है तब उसे प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण कहा जा सकता है। इसमें प्रकृति कवि कैलिए साधन न बन कर साध्य बन जाती है और प्रकृति के वास्तविक रूप का संश्लिष्ट वर्णन होता है।

सचेष्ट एवं गतिशील प्रकृति में चेतना का अनुभव कर कवि प्राचीन काल से उसके चेतनापूर्ण रूप का चित्रण करता आ रहा है। सहृदय एवं भावुक कवि को क्रमशः प्रकृति में मानव क्रिया और मानव व्यापार का अनुभव होने लगा। प्रकृति के जड-चेतन पदार्थों से कवि रागात्मक संबन्ध जोड़ने लगा। उसे सारी प्रकृति उसके हृदय के भावों को समझने में सक्षम प्रतीत होती है। वह प्रकृति की संवेदनशीलता का अनुभव करता है। प्रकृति भाव जगत में भी उसे सहचरी, धात्री एवं प्रेरणादायिनी के रूप में प्रतीत होती है। इस स्थिति में मानव को प्रकृति में भावोत्तेजना की शक्ति का भी अनुभव होता है। काव्य में प्रकृति चित्रण की इस विधा को प्रकृति का मानवीकरण कहा जाता है।

कवियों ने अधिकांशतः प्रकृति का उद्दीपन के रूप में ही चित्रण किया है। इसमें मानव के हृदयगत भावों के उद्दीपन के साधन के रूप में प्रकृति को लिया जाता है।

प्रकृति के विविध कार्यव्यापारों से मानव को प्रेरणा उपलब्ध होती है। उसे प्रकृति से शक्ति, ज्ञान एवं सांत्वना की प्राप्ति होती है। प्रकृति जीवन केलिए उपयोगी विविध आदर्श उपस्थित करती प्रतीत होती है। अतएव कवि प्राचीनकाल से ही प्रकृति के माध्यम से उपदेश देता आ रहा है। कवि के उपदेश-पूर्ण विचारों का सशक्त माध्यम प्रकृति ही बनी आ रही है। कई कवियों ने उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में प्रकृति का उपदेशात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के उपादानों को भावनाओं तथा धारणाओं केलिए प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त करने की परिपाटी प्रचलित है। स्थूल या सूक्ष्म सादृश्य का आधार लेकर सूक्ष्म अनुभूतियों की प्रतिकृति स्वरूप में प्राकृतिक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। जैसे आचार्य शुक्ल ने कहा है "कहीं कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप या प्रतीकवत् होते हैं - जैसे सुख, आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप ...."[1]।

सौन्दर्यानुभूति से प्रभावान्वित कवि उसकी अभिव्यक्ति केलिए व्याकुल हो जाता है। साथ ही वह चाहता है कि उसकी अभिव्यक्ति इतनी प्रभावकारी हो कि श्रोता या पाठक भी उक्त सौन्दर्य का पूर्ण अनुभव कर पाये। तब उसे अलंकारों तथा शब्द शक्तियों की सहायता लेनी पड़ती है। अपनी भावाभिव्यक्ति को अधिक मार्मिक बनाने केलिए वह प्रकृति के विविध उपकरणों तथा कार्यव्यापारों को अलंकारों के रूप में संयोजित करता है। वह उपमा, रूपक,

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.639 [सं.2022]

उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की योजना में प्रकृति का उपयोग करता है । इस प्रकार प्रकृति का आलंकारिक चित्रण प्रस्तुत किया है । जीवन की अनादि सहचरी सहयोगी प्रकृति का नानाविध चित्रण उपर्युक्त प्रकार से सहृदय कवि अनवरत करता आ रहा है ।

प्रकृति सौन्दर्य के प्रति उपेक्षा प्रकट करना सृष्टि निर्माता ईश्वर के प्रति ही उपेक्षा दिखाना है । कारण कि प्रकृति सौन्दर्य दर्शन से स्वाभाविक ही मन आनन्द विह्वल हो उठता है । शेक्सपियर ने "विंटर्स टेल" नामक कविता में प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मानवीय व्यापारों के सौन्दर्य का सामंजस्य स्थापित करते हुए प्रकृति सौन्दर्य का महत्त्व स्वीकार किया है।[1]

पंडित रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में मनुष्य शेष प्रकृति के साथ अपने रागात्मक सम्बन्ध का विच्छेद करने से अपने आनन्द की व्यापकता को नष्ट करता है । बुद्धि की व्याप्ति के लिए मनुष्य को जिस प्रकार विस्तृत और अनेक रूपात्मक क्षेत्र मिला है, उसी प्रकार भावों की व्याप्ति के लिए भी ।"[2]

मानवीय भावों का परिष्कार प्रकृति के विविध रूपों तथा व्यापारों के साथ उनके सामंजस्य पर ही अधिष्ठित है । इसी कारण काव्य में प्रकृति चित्रण का समावेश स्वतः ही हो जाता है ।

सूरसागर और कृष्णगाथा में प्रकृति के विविध रूपों का हृदयहारी चित्रण मिलता है । प्रकृति चित्रण में सूरदास और देवोरी दोनों ने श्रीमद् भागवत ।

---

1. When you dance, I wish you
A wave o' the sea, that might ever do,
Nothing but that - Shakespeare - Winters tale;
The complete works of William Shakespeare -
Spring Books, London, p.302

2. रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि दूसरा भाग - पृ.5

आदर्श बनाया है । कहीं उसका पुरुष और उग्र स्वरूप सामने आता है तो कहीं मृदुल और सूक्ष्म । कहीं प्रभात का वर्णन है तो कहीं संध्या का वर्णन है । कहीं कादम्बिनी का घन गंभीर गर्जन सुनाई पड़ता है तो कहीं मधु वर्षा की मृदु ध्वनि का । कहीं बसंत वैभव का वर्णन है तो कहीं शारदीय शोभा का । कभी कभी मानव सौन्दर्य के वर्णन के साथ ही प्रकृति सौन्दर्य का भी चित्रण हो जाता है । सूक्ष्म मानव भावों के उद्घाटन हेतु साम्य या वैषम्य के द्वारा प्रकृति का चित्रण किया जाता है ।

प्रकृति चित्रण काव्य में नाना प्रकार से किया जाता है । सूर और चेरुश्शेरी दोनों आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में प्रकृति चित्रण करते हैं । इस दिशा में दोनों भागवत् की सरणी का ही अनुसरण करते हैं ।

सूर और प्रकृति

सूर काव्य के अधिकांश भाग का विकास प्रकृति देवी के कमनीय क्रीडा स्थल व्रज भूमि के विस्तृत प्रांगण में हुआ है, जहाँ पर यमुना है और उसके निकटवर्ती वृन्दावन के रमणीय वन उपवन हैं, जहाँ पर गिरि गोवर्धन और उसकी सुन्दर कन्दराएं हैं, जहाँ पर करील के सघन कुंज और कदम्ब के सुवासित वृक्ष हैं, जहाँ पर मोर कोकिल आदि पक्षियों का मधुर कलरव गूंजा करता है । ऐसे प्राकृतिक वातावरण में सूर काव्य का प्रभावित होना स्वाभाविक है[1] ।

व्रज भूमि की मोदमयी गोद में खेलते हुए राधा और कृष्ण के हृदय में जो स्नेह का अंकुर फूटा, उसे व्रज की प्रकृति ने अपनी सरसता से पल्लवित और पुष्पित किया । सूर की दृष्टि प्रकृति के उद्दीपन पक्ष पर ही अधिक रमी ।

---

1. द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल - सूर निर्णय - पृ.126

सुन्दर प्राकृतिक वातावरण उपस्थित करने में उनकी विशेष विदग्धता है । प्रभात, वन, द्रुम, लता, पुष्प, यमुना, चन्द्रमा, मेघ, बसंत, वर्षा, शरद सब उनकी लेखनी से नव सुषमा प्राप्त करते हैं ।

वर्षा समस्त पृथ्वी को सरस बना देती है । यह सरसता मानव हृदय को भाव विभोर करती है । समस्त वन उपवन वर्षा से जीवन शक्ति ग्रहण करते हैं । मेघ, दादुर खुशी में बोलने लगते हैं । नभ में बादल छा जाते हैं । उनमें बगुलों की पंक्ति पुष्पमाला सी सुन्दर लगती है । मोर-पपीहा बोलने लगते हैं[1] ।

मेघ, चपला आदि के वर्णन में सूर विशेष दक्ष हैं । वस्तु चित्रण उन्हें अभीष्ट नहीं है । वे मनोविज्ञान के पारंगत हैं । अतएव वस्तु संवाद में भाव लोक की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है । वर्षा ऋतु उन केलिपद विठोम लीला की पीठिका है :-

गई बीति ग्रीष्म शरद रितु, सरस बरषा आई
.. .. ..
बन बनि कोकिल कंठ निखति, करत दादुर सोर
घन घटा कारी स्वेत बग-पंगति, निरखि नभ ओर ।
तैसीये दमकति दामिनी, तैसोइ अंबर घोर ।
तैसेइ रटत पपीहरा तैसोइ बोलत मोर ।
तैसीये हरियरि भूमि बिलसति सोभि मनि छबि तोरि ।
तैसीये रंग सुरंग बिबिध बधू भैति है चित चोरि ।
तैसीये नन्हीं बूंद बरषति, झमकि झमकि झकोरि ।
तैसीये भरि सरिता सरोवर, उमँगि चलि मिलि कोरि[2] ।

1· सूरसागर - 3449

2· वही - 10-3448

यह वर्णन अपूर्व अलंकार योजना का आदर्श प्रस्तुत करता ही है। परंतु इसकी शब्द योजना में बिंबविधान की जो अपूर्व क्षमता है वह प्रायः अपूर्व ही कही जा सकती है।

शरद् अत्यन्त सुहावनी ऋतु होती है। सूरदास ने शरद की पीयूषवर्षिणी पूर्णिमा छटा का चित्रण किया है। आकाश चन्द्रिका धौत और निर्मल है। पृथ्वी के द्रुम, लता कुंज सब रजतधारा में डूबे हुए हैं। यमुना का पावन पुलिन है। रोम रोम को पुलकित करने वाला शीतल, मन्द, सुगन्धित, पवन बह रहा है। प्रकृति की इस प्रसन्न परिस्थिति में ही कृष्ण का मुरली रव सुनाई पड़ता है। प्रकृति मानव के साथ क्रीडा करती दिखाई पड़ती है -

> अद्भुत कौतुक देखि सखी री, श्री वृन्दावन नभ होड़ परी री।
> उत घन उदित सहित सौदामिनि, इतहि मुदित राधिका हरी री।।
> उत बगपाति बनी स्वाति-सुत दाम सोहै बिसाल सुदेस खरी री।
> इहाँ घन गर्ज, इहाँ ध्वनि मुरली, जलधर उत इत अमृत भरी री।।
> उतहि इन्द्रधनु, इत वनमाला अति विचित्र हरिकंठ धरी री[1]।।

इस सुहावनी ऋतु की स्मृति आनन्ददायक है। विरह में गोपियाँ पश्चात्ताप प्रकट करती हैं कि शरद ऋतु आ गई पर हमारे प्रिय नहीं आये[2]।

> "सरद समै हू स्याम न आये
> को जाने काहे तें सजनी किहिं बैरिनि बरमाए[2]।।

---

1. सूरसागर - 1807
2. सूरसागर - 3962

विरहिणी गोपियाँ कृष्ण को वृंदा विपिन में ढूंढती हैं। वन की लताओं, कुंजों, पादपों, पक्षियों और पशुओं से वे पूछती हैं -

कहि धौं री बनबेलि कहूं तुम देखे हैं नंदनंदन।
बूझहु धौं मालती कहूँ तै पाये हैं तनु चन्दन।।
कहि धौं कुन्द, कदम, बाकुल, बट, चंपकलता तमाल।
कहि धौं कमल कहाँ कमलापति, सुन्दर नयन विसाल।।
मुरली अधर सुधा रस लै लै रहे जमुन के तीर।
कह तुलसी तुम सब जानति हौं, कहँ घनस्याम सरीर।।
कहि धौं मृगी मया करि हमसौं, कहि धौं मधुप मराल।
सूरदास प्रभु के तुम संगी, हैं कहाँ परम दयाल।।[1]

धन्य है जीवन की यह दशा जिसमें जड़ चेतन सभी पदार्थ अपने सगे सम्बन्धी मालूम पड़ने लगते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में राम विरह के अन्तर्गत इस शैली का प्रयोग किया है -

"हे खग, मृग हे मधुकर श्रेनी
तुम देखी सीता मृगनयनी।[2]"

जायसी की नागमती भी ऐसे अवसर पर पक्षी से वार्तालाप करती है

"चारिहु चक्र उजार भये, कोइ न संदेसा टेक
कहउँ विरह दुख आपन, बैठि सुनहु दण्ड एक।।[3]"

---

1. सूरसागर - 1709
2. तुलसीदास - रामचरितमानस - अरण्यकांड - 5 वाँ श्लोक
3. मलिक मुहम्मद जायसी - पद्मावत [नागमती संदेश खण्ड प्रथम पद] 360 वाँ

प्राय: सभी कवियों ने विरह का चित्रण करते समय ऐसी शैली अपनायी है । विरहिणियाँ जड चेतन सभी पदार्थों से ममता रखती है ।

यह स्मरण रखना चाहिए कि सूर का प्रकृति वर्णन अन्य कवियों की अपेक्षा संकीर्ण है । उसमें मानव जीवन की व्यापकता और अगाधता अंकित नहीं होती । "अत: प्रकृति चित्रण की विविधता उसके काव्य में नहीं मिल सकती[1] ।" फिर भी उसके चित्रणों में सौन्दर्य प्रियता के प्रचुर प्रमाण है । इस विवेचन से यह सिद्ध है कि सूर ने प्राकृतिक दृश्यों का उपयोग केवल अपनी भावना और कल्पना को सजग और मूर्त करने में किया है ।

कृष्णगाथा में प्रकृति चित्रण

कृष्णगाथा में ऋतुवर्णन का जो स्वरूप मिलता है वह कविप्रसिद्ध नहीं है । उसमें कवि की भावना का समावेश है, प्राकृतिक सौन्दर्य की ताजगी है । ऋतु वर्णन के अतिरिक्त नवीन पल्लव, फूल, प्रभात, सन्ध्या, नदी, पर्वत आदि की सुन्दरता का भी यत्र तत्र चित्रण इसमें मिलते हैं ।

ऋतु वर्णन के सिलसिले में कवि वर्षा के आगमन का चित्र प्रस्तुत करते हैं "घनघोर वर्षा से पृथ्वी भर गई । वर्षा को देखकर किसानों के मन में आनन्द की लहरें उठने लगी । काले काले बादलों के आ जाने से सूर्य बिंब अप्रत्यक्ष हो जाता है, जैसे माया में मग्न रहने वाले मनुष्य के मन से ज्ञान अप्रत्यक्ष हो जाता है[2] ।

---

1. ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास - पृ.497 (तृतीय सं.)
2. पारिच्चु निन्मोड पेमपु तुळ्ळिट्टु
   पारिटमेङ्ङुमे मुङ्ङ. नङ्गिट
   वर्षत्ते कण्डुळ्ळ कर्षकन्मारेल्लाम्
   हर्षत्ते पूण्डु तुटङ्ङीतेङ्ङुम
   धीर्तुल्ल मेघत्तिन चार्तु परन्नप्पोल
   मार्ताण्ड बिंबं मरञ्ञु पोयि
   मायया मूटिन मानसं तन्निले
   ज्ञानं मरञ्ञु पोकुन्नोले ।। कृष्णगाथा-प्रावृड् वर्णन 16-32 तक पंक्तियाँ

प्रकृति की सुन्दरता का चित्रण करते समय शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग कृष्णगाथाकार करते हैं ।

कृष्णगाथाकार का प्रकृति चित्रण मनोरम है । आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में प्रकृति उनमें प्राप्त होती है । लेकिन प्रकृति चित्रण में कवि प्राय: सर्वत्र भागवत का अनुकरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं । इसका यह अर्थ नहीं कि चेरुशेरि में मौलिक प्राकृति चित्रण की शक्ति, क्षमता नहीं है । कवि की कवित्व शक्ति को प्रमाणित करने वाले बहुत से प्रसंग कृष्णगाथा में उपलब्ध हैं । शरद् की प्रकृति की सुन्दरता का वर्णन करते समय कृष्णगाथाकार भागवत् से कहीं कहीं भाव और अर्थ स्वीकार करते हैं । भागवत् के 10-21-2,3 श्लोकों का भाव कृष्णगाथा में द्रष्टव्य है । "कोलाहल पूर्ण शरद्काल को देखकर श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ गायें चराते हुए वन में प्रवेश करते हैं । अपनी मधुर मुरली के रव से कृष्ण गोपिकाओं के हृदय को हर लेते हैं । गोपिकायें अपनापन भूलकर खड़ी होती हैं । फिर वे कृष्ण और वेणुध्वनि के प्रभाव का वर्णन करती हैं[1] ।"

गोपियाँ कृष्ण को ढूँढती हुई वन में भ्रमण करती हैं । वे वन की लताओं, फूलों और भ्रमरों से कृष्ण के बारे में पूछती हैं । कृष्ण का रूप आकार और वेश भूषा का वर्णन करके विलाप करती हैं[2] । गाथा की गोपियों की दशा सूरसागर की गोपियों[3] से भिन्न नहीं । गोपी विरह वर्णन सब कवियों में समान है ।

स्वतंत्र उद्भावना

कृष्णगाथा में कुछ ऐसे प्रकरण हैं जहाँ कवि भागवत् और सूर की पद्धति से अलग हो जाते हैं । उदाहरणार्थ "कालियमर्दनम्" के प्रकरण में चेरुशेरि सन्ध्या वर्णन करते हैं । श्रीमद् भागवत और सूरसागर में सन्ध्या वर्णन प्राप्त नहीं

---

1. कृष्णगाथा - शरद वर्णन - 50-62
2. वही - गोपिका दुख - 570-730
3. सूरसागर-1709

भागवत् के अनुसार कालियमर्दनम् के बाद कृष्ण और व्रजवासी कालिन्दी के किनारे रहते हैं। धीरे धीरे सन्ध्या का आगमन होता है। गाथाकार उसका सुन्दर चित्रण करते हैं। (कालियमर्दनम का वर्णन तीनों काव्यों में मिलता है।) "कृष्ण पानी के बाहर आकर खड़े होते हैं। सूर्य सागर में डूबता है। अंधकार सर्वत्र व्याप्त होता है मानों कालिन्दी का काला पानी सब कहीं व्याप्त होता हो। पक्षीगण अपने पिंजड़ों में मौन रहता है।"[1]

कृष्णगाथा को महाकाव्य का स्वरूप देने केलिए कवि ने बहुत वर्णन भी किये हैं। ग्रीष्म, शरद्, हेमन्त जैसे ऋतुओं के चित्रण केलिए कवि ने अलग अलग अध्याय ही रख दिये हैं।

निष्कर्ष

कृष्ण की विविध लीलायें प्रकृति से प्रगाढ रूप से सम्बन्धित हैं। जीवन उनका वृंदावन में प्रकृति के अंचल में ही बीता। जन्म से लेकर मथुरागमन तक उनकी सभी लीलायें प्रकृति के अंचल में संपन्न हुईं। कुंज उपवन में विविध क्रीडायें उन्होंने कीं। वन में गोचारण किया। यमुना के किनारे रास रचाया। वर्षा ऋतु में वहीं झूला लगाकर झूले। प्रकृति का प्रत्येक परमाणु कृष्ण की लीला से अनुप्राणित है। बिना चांदनी, यमुनातट और वृंदावन के केलि कुंज के कृष्ण का चित्र अधूरा ही रहेगा।

कृष्ण का चरित हमारे कवियों ने प्रकृति से संपृक्त करके ही अंकित किया है। यह भी बतलाना आवश्यक है कि प्रकृति चित्रण करते समय हमारे कवियों ने भावों की तीव्रता और सौन्दर्यानुभूति की सहजता पर पूरा ध्यान रखा है। वे प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं। मानव सौन्दर्य के अंकन में हमारे कवि जितने सफल हुए हैं, प्रकृति सौन्दर्य के चित्रण में भी उतने ही। मानव हृदय के सूक्ष्म तंतुओं को अंकित करने में वे पूर्णतः सफल हुए हैं।

****

---

1. कृष्णगाथा - कालियमर्दनम् 210-224 पंक्तियाँ

अध्याय - छः

काव्य सौन्दर्य

काव्य में सौन्दर्य विधायक तत्व

'काव्य' की सम्पूर्ण और सर्वांगीण परिभाषा देने का प्रयास कितने ही विद्वानों और मनीषियों ने किया है । काव्य कवि की आत्माभिव्यक्ति है[1] । यह परिभाषा सीधी-सादी, सरल और सर्वग्राह्य है । श्रीमद्भागवद् गीता में 'कवि' शब्द का प्रयोग आत्मा के सूक्ष्मतम रूप में हुआ है[2] । ऋग्वेद में भी कवि को आत्मा का रूप बताया गया है[3] । साहित्य दर्पण में दी गई परिभाषा 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार काव्य कवि की रसात्मक आत्माभिव्यक्ति है

---

1. डॉ॰ फतेहसिंह - साहित्य और सौन्दर्य - पृ॰1
2. कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
   सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।। गीता अ॰8 श्लो॰9
3. कविमिव प्रचेतसम् - 884, 2 मा, वे॰1245
   कविं केतुं धासिं भानुमद्रे - 7,6,2॰

"रस" ब्रह्म है और कवि शब्द ब्रह्म के लिए भी श्रुति में आया है[1]। इसलिए कवि की कृति का रस युक्त होना स्वाभाविक है । काव्य को ब्रह्मानन्द सहोदर भी कहा गया है । ब्रह्मानन्द को प्राप्त करके आत्मगत रखने से ही काव्य की रचना नहीं होती, उसकी अभिव्यक्ति आवश्यक है । अत: अभिव्यक्ति के एकमात्र साधन भाषा के महत्व को स्वीकार करना पड़ता है । काव्यशास्त्रियों ने काव्य की परिभाषा में भाषा सौष्ठव और भाषा शक्ति को अपेक्षित स्थान देना आवश्यक समझा है । काव्य के क्षेत्र में रस के साथ साथ अलंकारों का महत्व भी है । रस या आत्मा की अभिव्यक्ति काव्य का सत्य तत्व है और भाषा चमत्कार वाला तत्व ।

साहित्य का ज्यों ज्यों विकास होता गया, काव्य की रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयत्न जारी रहा । उसके परिणाम स्वरूप साहित्य का वर्गीकरण भी हुआ - महाकाव्य, नाटक और आख्यान, खंडकाव्य, मुक्तक काव्य आदि । वर्गीकरण से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि काव्य का क्षेत्र निश्चित हो गया और प्रत्येक वर्ग के लिए कुछ निश्चित उपकरण भी स्थिर कर लिए गए, जिससे प्रत्येक प्रकार के काव्य का मूल्यांकन सरलता से किया जा सके ।

अत: काव्यसौन्दर्य शीर्षक अध्याय में रसव्यंजना, अलंकार योजना, काव्य रूप और भाषा शैली पर विचार करना आवश्यक है ।

रसव्यंजना

भारतीय साहित्य चिन्तकों ने काव्यानुशीलन का परम प्रयोजन माना है रसानुभूति[2] । यद्यपि काव्य की आत्मा क्या है - इस विषय को लेकर

---

1. रसो वै स: । रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति । को ह्येवान्यात्क: प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष ह्येवानन्दयाति: - तै•उ•207
2. सर्वे रसा: क्रियन्ते काव्य स्थानानि सर्वाणि - रुद्रट - काव्यालंकार - अ•16
   "अलंकृतम संक्षिप्तम रस भाव निरंतरम्" - दण्डी-काव्यादर्श 1-18

आचार्यों में मतभेद वर्तमान है तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि अलंकार, ध्वनि, औचित्य आदि को काव्यात्मा स्वीकार करनेवाले भी तत्वतः रस की महिमा को मान लेते हैं ।

भरत मुनि ने सबसे पहले रस की सम्यक् चर्चा की है । नाट्य सम्बन्धी तत्वों को प्रधानता देते हुए अलंकार आदि अन्य विषयों के साथ उन्होंने रस की विवेचना की है[1]। नाट्यशास्त्र ही एक प्रकार से काव्य शास्त्र की बाद की रचनाओं का उद्गम स्थान है और शताब्दियों से उसके बनाये रस सिद्धान्त की स्वीकृति और प्रगति होती चली आ रही है[2]।

छठी सातवीं सदी ईस्वी से काव्य का सर्वाङ्गीण स्थान अलंकार ने ग्रहण किया । भामह इस युग के प्रतिनिधि होकर आये । उनके काव्यालंकार इस दिशा में महत्वपूर्ण हैं । उन्हीं के इस नये प्रयत्न को दण्डी ने आगे बढ़ाया और अपने ग्रन्थ काव्यादर्श में रीति, गुण आदि की भी आवश्यकता स्वीकार की । काव्यालंकार शास्त्र के प्रारंभिक आचार्य भामह, दंडी, वामन, उद्भट आदि ने अलंकारों के भीतर रस की साधारण स्थिति रसवदादि अलंकारों के रूप में स्वीकार की । काव्य के भीतर रस की अलंकारों से भिन्न स्वतंत्र स्थिति सबसे पहले आचार्य रुद्रट ने मानी और यह प्रकट किया कि रस नाटक तक ही सीमित नहीं वरन् वह काव्य के लिए भी आवश्यक है । रुद्रट के विचार से रसहीन काव्य शास्त्र की कोटि में नहीं आना चाहिए[3]।

नवीं शताब्दी के आसपास तीन प्रमुख काव्य सिद्धान्त सामने आये । वामन ने रीति का समर्थन किया और संकीर्ण रूप में अलंकार एवं रस को गौण स्थान दे दिया । रीतियों का पर्यवसान रस में होता है - "गुणतः काव्यमात्र

---

1. P.V. Kane - History of Sanskrit Poetics - p.6
2. लेफ्टीनेन्ट डॉ॰ सरनामसिंह शर्मा अरुण - हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव - पृ॰21
3. रुद्रट - काव्यालंकार - पृ॰12-2

इति यदुक्तं मुनिना यत् रसोचित एव चेष्टा विशेषो वृत्तिः[1]। फिर वे लिखते हैं "तद्वेव रस पर्यवसायित्वात्[2]।"

उद्भट ने भामह का पदानुगमन किया और अलंकारवादी के रूप में काव्य क्षेत्र में पैर रखा। वामन ने रीति को सर्वोपरि समझा, तो उद्भट ने अलंकार को सर्वोत्तम समझाया। इसी काल में आनन्द वर्धन ने ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिष्ठापन करके काव्य शास्त्र के इतिहास में एक नवीन अध्याय जोड दिया। ध्वनिकार आनन्द वर्धन ने यद्यपि ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया परन्तु उन्होंने काव्य के क्षेत्र में रस का महत्व स्वीकार किया। वास्तव में रस तो सर्वो ध्वनि है। ध्वनि सिद्धान्त के आविर्भाव से अलंकार और रीति के वाद क्षीण हो गये। इसी सिद्धान्त की विशेषता यह हुई कि भरत प्रणीत रस सिद्धान्त को भी नवोन्मेष प्राप्त हुआ[3]।

वास्तव में ध्वनि सम्प्रदाय रस और अलंकार दोनों सिद्धान्तों में समझौता लाने के लिए सहायक सिद्ध हुआ। अभिनव गुप्त ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक-लोचन में आनन्दवर्धन का अनुसरण ही नहीं किया अपितु ध्वनि के ऊपर रस को मान भी लिया[4]।

काव्य मीमांसाकार राजशेखर ने रस को काव्य पुरुष की आत्मा के रूप में सम्बोधित किया है - शब्दार्थों से शरीर, संस्कृतं मुखं प्राकृतं बाहु.......उक्ति चणं च ते वचः, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि[5]।"

---

1. ध्वन्यालोक - पृ.1296 - प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली [प्र.सं.]
2. ध्वन्यालोक - पृ.1296
3. जयशंकर प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध - रसचर्चा - पृ.76
4. P.V. Kane - History of Sanskrit Poetics p p.58
5. काव्य मीमांसा - पृ.6

काव्य रस को अत्यन्त गंभीर महत्व तथा व्यापक मान्यता प्रदान करने वाले भोजराज [1018-1054 ई॰] है । उनकी दृष्टि से रस काव्य सर्वोपरि है -

"वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मय
सर्वासु ग्राहिणीं तासु रसोक्तिं प्रतिजानते[1] ।"

कविराज विश्वनाथ का "साहित्यदर्पण" काव्यशास्त्र का अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है । उसमें काव्यांगों का विस्तृत वर्णन है । मुनि प्रणीत रस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या करने में विश्वनाथ अति सफल हुए हैं और उनके बाद रस सिद्धान्त का विरोध भी कम दिखाई पड़ता है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रस के स्वरूप की अपनी मान्यता के अनुकूल नवीन व्याख्या प्रस्तुत की - "जिसप्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है[2] ।

उपर्युक्त विवेचन से रसवादियों का प्राधान्य और काव्य शास्त्र में रस की विस्तृत चर्चा का पता चलता है । बहुतेरे भारतीय आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है । अन्य काव्य सिद्धान्त के प्रवर्तकों ने भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में रस की महत्ता स्वीकार की है और उसके विवेचन, विस्तार एवं विशदीकरण में तत्परता दिखायी है ।

रस और अलंकार को दो मौलिक भारतीय काव्य सिद्धान्त मानें तो उनमें रस सिद्धान्त केवल काल क्रम की दृष्टि से नहीं, वरन् प्रभाव और प्रसार की

---

1. सरस्वती कंठाभरण - 5-8
2. रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि-भाग-1, पृ॰141

दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण है । वास्तव में भारतीय काव्य शास्त्र की आधार-शिला यही है[1] । वाग्वैदग्ध्य और अभिव्यंजना कौशल की प्रधानता रहने पर भी रस ही काव्य का जीवन है[2] । विश्वनाथ रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहते हैं[3] । अतः रस ही कविता का सबसे बड़ा गुण है ।

सूरसागर और कृष्णगाथा के काव्य सौन्दर्य की चर्चा में सबसे पहले रस व्यंजना पर प्रकाश डालें । दोनों काव्यों में प्रायः सभी रसों का परिपाक हुआ है । पर शृंगार, हास्य और वात्सल्य इन तीनों रसों की व्यंजना सूरसागर और कृष्णगाथा में अन्य रसों की अपेक्षा अधिक हुई है । अतः इस प्रकरण में उन्हीं की विशेष चर्चा होगी ।

<u>शृंगार</u> - <u>सूरसागर और कृष्णगाथा में</u>

शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं । इन क्षेत्रों का कोना कोना वे झाँक आये हैं । उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रति भाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतनी का और कोई नहीं । हिन्दी साहित्य में शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने[4] । मलयालम साहित्य में चेरुश्शेरी के बारे में भी यही बात कही जा सकती है । सूर और चेरुश्शेरी दोनों शृंगार रस के अप्रतिम कवि हैं । ब्रज युवतियों की वियोगजन्य व्याकुलता से सूर का काव्य परिपूर्ण है । प्रेम की भावना को अत्यन्त सूक्ष्मता, निश्छलता, गहराई एवं स्वाभाविकता के साथ सूर ने अंकित किया है । चेरुश्शेरी काव्य में शृंगार के दोनों पक्षों का मार्मिक विवेचन हुआ है ।

---

1. डॉ.नगेन्द्र - रस शब्द का अर्थ विकास - धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक - हिन्दी अनुशीलन - भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग
2. वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् - अग्निपुराणम् - 2?4
3. वाक्यं रसात्मकं काव्यं - साहित्य दर्पण - प्रथम परिच्छेद - पृ.9 [शालिग्रामशास्त्री कृत टीका]
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास - पृ.190

यद्यपि सूर के उपास्य बालकृष्ण हैं, उनके वर्णन में ही उन्होंने अपनी असीम कवित्व शक्ति का परिचय दिया है तथापि कृष्ण के मधुर स्वरूप का भी उनके काव्य में महत्त्व कम नहीं है। परन्तु वेळोरी में ऐसी बात नहीं। उनका उपास्य बालकृष्ण नहीं, गोपीवल्लभ कृष्ण है। अत: शृंगार चित्रण में वेळोरी पूर्णत: सफल हुए हैं।

शृंगार

"शृंगार" शब्द "शृंग" और "आर" के संयोग से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है कामोद्रेक {शृंग} की प्राप्ति {आर} या वृद्धि[1]। इसका स्थायी भाव है रति। भरत ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि रति स्थायी भाव से उत्पन्न होनेवाला एवं उज्ज्वल शृंगार रस होता है[2]। संसार में जो कुछ भी पवित्र और उज्ज्वल होता है उसकी उपमा शृंगार के साथ की जा सकती है। .... इस प्रकार यह मनोहर उज्ज्वल वेषात्मक होने के कारण व्यवहार सिद्ध शृंगार होता है। यह स्त्री एवं पुरुष के द्वारा उत्पन्न यौवन प्रकृति के अनुकूल रहता है[3]।

जीवन की शृंगार भावना साहित्य में शृंगार रस नाम से अभिव्यक्त होती है। विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पन्न होता है - "विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्ति:"[4] यह मन को रमनेवाला होता है। मनुष्य की शृंगार भावना जहाँ उचित उपादानों से पुष्ट होकर आनन्द पहुँचाती है वहाँ शृंगार रस होता है। भरतमुनि के अनुसार सुखप्राय, प्रियवस्तुओं से युक्त ऋतु एवं माल्यादि का सेवन करनेवाले स्त्री पुरुष से युक्त रस को शृंगार कहते हैं[5]।

1· आनन्दप्रकाश दीक्षित - रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण - पृ·313

2· नाट्यशास्त्र {चौ·} - पृ·73

3· डॉ· राजवंश सहाय हीरा - भारतीय साहित्यशास्त्र कोश - पृ·1306

4· नाट्यशास्त्र - 7/8

5· सुखप्रायेषु सम्पन्न: ऋतुमाल्यादि सेवक: ।
पुरुष प्रमदायुक्त: शृंगार इति संज्ञित: । नाट्यशास्त्र - 1/46

नाट्यशास्त्र के समान ही रसतरंगिणी में भी श्रृंगार की व्याख्या करते हैं। इसके सम्बन्ध में धनंजय भी नाट्यशास्त्रकार का अनुगमन करता है[2]।

रस के उपादान

रस के उपादान हैं - स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव।

स्थायी भाव

जो भाव चिर काल तक चित्त में रहता है, जो काव्य, नाटकादि में आद्योपान्त उपस्थित रहता है, प्रभावशीलता और प्रधानता में औरों से उत्कर्ष रखता है, साथ ही जिस में विभावादि से सम्बन्धित होकर रस रूप में परिणित होने की शक्ति रहती है वही स्थायी भाव कहा जाता है। भरतमुनि के अनुसार जैसे मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु वैसे ही सब भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है[3]।

श्रृंगार का स्थायी भाव है रति[4]। यह स्त्री पुरुष हेतु से उत्पन्न होता है और उत्तम यौवन की प्रकृति के अनुकूल है। भरत ने इसे उज्ज्वल वेषात्मक, शुचि और दर्शनीय बताया है[5]। विश्वनाथ के अनुसार मनोनुकूल विषय में मन का झुकाव रति है[6]। मनोनुकूल की ही कामना होती है तथा उसी के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। यही रति प्रेम है।

---

1. यूनोः परस्परं परिपूर्णः प्रमोदः।
   सम्यक् सम्पूर्ण रति भावो वा श्रृंगार ।। रसतरंगिणी - षष्ठ तरंग
2. रम्यदेश कला काल वेष भोगादि सेवनैः।
   प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
   प्रहृष्यमाणः श्रृंगारो मधुरांग विचेष्टितैः ।। दशरूपक - 4-48
3. यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
   एवंहि सर्व भावानां भावः स्थायी महानिह ।। नाट्यशास्त्र - 7-8
4. तत्र श्रृंगारो नाम रति स्थायि भाव प्रभवः। नाट्यशास्त्र - 6-45 व
5. नाट्यशास्त्र [चौ•] - पृ•73
6. रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्। साहित्यदर्पण - 3-176

विभाव

विभाव कारण, निमित्त और हेतुपर्याय हैं[1]।

आलंबन

सब्जा किशोर किशोरी ही श्रृंगार के आलंबन होते हैं। यह दो प्रकार का होता है - विषयालम्बन और आश्रयालंबन। राधा और कृष्ण के प्रेम में कृष्ण विषयालंबन है तथा राधा आश्रयालंबन।

उद्दीपन

श्रृंगार भावना को उद्दीप्त करनेवाले पदार्थ उद्दीपन कहलाते हैं[2] यथा चन्द्रमा, चन्दन भ्रमर आदि। ऋतु, माल्य, अनुलेपन, आभरण, उपवन गमन आदि को भी भरत उद्दीपन मानते हैं। इसके अन्तर्गत आलम्बन के गुण, चेष्टाएं, अलंकरण, तटस्थ आदि आते हैं।

अनुभाव

जो स्थायी भावों का अनुभव कराने में समर्थ हों अनुभाव कहलाते हैं "अनुभावयन्ति इति अनुभावाः[3]।" दशरूपककार धनंजय भी नाट्य शास्त्रकार भरत का अनुगमन करता है[4]। अनुभाव वास्तव में शारीरिक चेष्टायें हैं। इन्हीं के द्वारा आदि स्थायी भाव काव्य में शब्दों के द्वारा और नाटक में आश्रय की

---

1. "विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायः" - नाट्यशास्त्र 7-3
2. यो रसमुद्दीपयति स उद्दीपन विभावः। विश्वनाथ-रस तरंगिणी
3. नाट्यशास्त्र 7-9
4. "अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः" - धनंजय - दशरूपक 4/52

चेष्टाओं द्वारा प्रकट होते हैं । अनुभाव रस के उत्पन्न होने की सूचना देते हैं और रस की पुष्टि भी करते हैं ।

नयन एवं मुख की उत्फुल्लता, मुस्कान, मधुर वचन, नाना आंगिक चेष्टायें आदि शृंगार के अनुभाव हैं । भानुदत्त ने इसके चार प्रकार बताये हैं - कायिक, मानस, आहार्य तथा सात्त्विक । कुछ लोग "वाचिक, मानस, को भी इसके साथ जोड़ते हैं[1] ।

व्यभिचारी भाव

इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं । ये भाव को पुष्ट करते हैं । ये विशेष रूप से चारों ओर विचरण करते हैं । ये स्थायी भाव में उसी भांति उछलते डूबते रहते हैं जैसे समुद्र में लहरें उछलती डूबती रहती हैं[2] । साहित्य दर्पणकार ने भी संचारी भावों की व्याख्या इसी प्रकार की है[3] ।

साधारणतः संचारियों की संख्या 33 मानी गई है । किन्तु यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि संचारियों की संख्या की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती । निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य आदि संचारियां हैं ।

शृंगार रस का महत्व

शृंगार रस को आदि रस या रसराज माना गया है । सभी रसों में इसको सर्वाधिक महत्व प्राप्त है[4] । शृंगार की भी व्यापकता और

---

1. डॉ॰ रमाशंकर तिवारी - शृंगार और साहित्य - पृ॰ 90
2. विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः ।
   स्थायिन्युन्मग्न निर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ ।। - दशरूपक - चतुर्थ प्र
3. साहित्य दर्पण - परिच्छेद 3 श्लोक 217
4. रामकुमार वर्मा - साहित्य शास्त्र - लोकभारती प्रकाशन - पृ॰ 96

किसी रस में नहीं है[1]। आचार्य विश्वनाथ ने श्रृंगार रस के आलम्बन उत्तम प्रकृति के माने हैं - "उत्तम प्रकृति प्रायो रसः श्रृंगार इष्यते[2]।" श्रृंगार प्रकाशकार ने भी श्रृंगार रस की इसी उत्तमता को स्वीकार किया है[3]।

यह मनुष्य की मधुरतम भावना "प्रेम" से जुड़ा हुआ है। सर्वाधिक आनन्द प्रदान करने वाला रस यही है। आनन्दवर्धन का कथन है कि श्रृंगार ही सर्वाधिक मधुर एवं परमाह्लादक रस है[4]।

श्रृंगार की भावना सब में पायी जाती है। देश, काल, जाति, पद, वय आदि का कोई बन्धन इसमें नहीं है। यह सर्व सामान्य का सुपरिचित और हृदयहारी रस है। भोज ने आस्वादनीयता की दृष्टि से श्रृंगार को ही एक मात्र रस माना है[5]। उन्होंने अन्य सभी रसों का समावेश इसमें कर दिया है[6]।

श्रृंगार रस के भेद

श्रृंगार के दो भेद हैं - संयोग और विप्रलंभ। जब नायक नायिका परस्पर संयोग सुख का अनुभव करते हैं, एक साथ रहकर दर्शन, स्पर्श एवं प्रेमालाप आदि का आनन्द लिया करते हैं वहाँ संयोग श्रृंगार होता है। श्रृंगार का संयोग पक्ष तो रस के मस्तक पर मुकुट की भांति सुशोभित है[7]।

नायक नायिका के परस्पर वियोग की अवस्था में विप्रलंभ श्रृंगार होता है।

---

1. अनुसरति रसानां रस्यतामस्य नान्यः। सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम्। तदिति विरचनीयः सम्यगेष प्रयत्नाद्। भवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यम्
 - रुद्रट - काव्यालंकार 14-38
2. साहित्यदर्पण - तृतीय परिच्छेद - श्लोक 183
3. श्रृंगार मेव रसनाद्रसमामनामः - श्रृंगार प्रकाश 3-8
4. श्रृंगार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः - आनन्दवर्धन - ध्वन्यालोक - 3-4
5. श्रृंगार एव एकोरस इति - श्रृंगार प्रकाश - डॉ॰ राघवन - पृ॰517
6. श्रृंगार प्रकाश - डॉ॰ राघवन - पृ॰368
7. रामकुमार वर्मा - साहित्य शास्त्र - पृ॰100

सूर का शृंगार वर्णन

सूर के काव्य में यद्यपि प्रायः सभी रसों का परिपाक मिलता है तथापि शृंगार को ही प्रमुखता है । उनका वात्सल्य भी प्रकारान्तर से शृंगार ही माना जा सकता है । शृंगार और वात्सल्य का तो सूर कोना कोना झांक आये हैं । आगे होनेवाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती है[1] ।

शृंगार भावना का जितनी व्यापकता एवं गहनता से सूर ने वर्णन किया है, उतनी और किसी भावना का नहीं । शुक्लजी ठीक ही लिखते हैं - इस दृष्टि से यदि सूरसागर को हम रससागर कहें तो बेखटके कह सकते हैं[2] ।" शृंगार रस के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग - के चित्रण में कवि ने विशेष कलात्मकता दिखाई है ।

सूर और संयोग शृंगार

जब तक कृष्ण गोकुल में रहे, वृन्दावन में यमुना तट पर गोप-गोपियों के साथ क्रीडा और रासलीला करते रहे तब तक के उनके जीवन की लीला शृंगार के संयोग पक्ष के अन्तर्गत आती है । इस प्रकरण में कृष्ण आलंबन हैं और राधा एवं गोपियाँ आश्रय हैं। राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन अत्यन्त सहज स्वाभाविक तथा मोहक परिस्थिति में होता है । कृष्ण काछनी और पीताम्बर पहनकर हाथ में भौंरा चकडोरी लेकर ब्रज की गलियों में खेलने निकलते हैं । अचानक वे बड़े बड़े नेत्रों वाली, सुन्दरी, किशोरी राधा को लड़कियों के साथ आते हुए देखते हैं । पहली दृष्टि में ही वे रीझ जाते हैं । अत्यन्त मनोरम ढंग से

---

1. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.165
2. रामचन्द्र शुक्ल सूरदास - पृ.184

उससे बातें करते हैं और उसे बातों में भुला लेते हैं[1]। राधा भी कृष्ण पर आकर्षित हो जाती है। इस तरह दोनों के मन में प्रेमभाव उत्पन्न होता है[2]। इसके पश्चात् तो राधा की मनोदशा अत्यन्त व्याकुल हो जाती है। कृष्ण से नैन मिलते ही मन को न जाने क्या हो गया। कहीं मन नहीं लगता। मन तो कृष्ण के वश में हो गया है। उसकी व्याकुलता उसे घर में नहीं रहने देती और वह माता से दोहनी मांगकर कृष्ण से मिलने चल देती है -

नागरि मन गई अरुझाइ ।
अति बिरह तनु भई व्याकुल, घर न नैकु सुहाइ ।
स्याम सुन्दर मदन मोहन, मोहिनी सी माइ ।
चित्त चंचल कुंवरि राधा, खानपान भुलाइ ।
कबहुं बिहंसति, कबहुं बिलपति सकुचि रहति लजाइ ।
.. .. ..
सूर प्रभु कौं हरषि मिलिहौं, गए मोहि भुलाइ[3] ।।

व्याज मिलन में चतुरता आवश्यक है। राधिका में वह चतुरता आ गई है। वह माँ से कहती है कि मुझे वहाँ देर लगेगी। तुम घबड़ाकर मत आ जाना क्योंकि ग्वाले जब अपनी गाय दुह लेते हैं तभी हमारी दुहते हैं[4]। पूर्व निश्चित स्थान पर पहुँचने पर वह कृष्ण को वहाँ नहीं पाती। वह व्यथित व चकित होती है। वह लौट जाना चाहती है। तभी कृष्ण अचानक प्रकट होते हैं और दोनों का सानंद मिलन होता है -

---

1. खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी ।
   कटि कछनी पीताम्बर बांधे, हाथ लए भौंरा, चकडोरी ।
   ....
   सूरस्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी । - सूरसागर - 1290
2. प्रथम सनेह दुहुनि मन जान्यौ - सूरसागर - 1292
3. सूरसागर - 1296
4. सूरसागर - 1297

नवल किसोर, नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया ।
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर, स्यामा स्याम उमगि रस भरिया ।
यों लपटाइ रहे उर उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया ।
उपमा काहि देउँ को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया ।
सूरदास बलि बलि जोरी पर, नन्द कुँवर वृषभानु कुँवरिया ।[1]

धीरे धीरे राधा और कृष्ण का प्रेम प्रगाढ़ होने लगता है । गोदोहन प्रसंग में दोनों के प्रेम का भावमय चित्र सूर प्रस्तुत करते हैं । किशोर प्रेम का चित्रण अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक हुआ है । उनका आकर्षण किस तरह स्वाभाविक रीति से बढ़ता है, हास परिहास और छेड़छाड़ द्वारा कैसे प्रेम सरस होता है - इन सब तथ्यों का सूर की कुशल लेखनी ने सूक्ष्मता से अनावरण किया है ।

गोदोहन प्रसंग को लेकर सूर ने राधा कृष्ण के किशोर हृदयों में उत्पन्न होने वाले प्रथम स्नेहाकर्षण तथा स्वाभाविक स्नेह विकास को जितनी कुशलता से अंकित किया है वह सारे कृष्ण काव्य में अद्वितीय है ।[2] सूर प्रत्येक के हृदय में पैठकर प्रायः उसी के मुख से उसके भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करते आते हैं । इस प्रकार की भावयोजना तथा भावाभिव्यंजना कृष्ण काव्य में अलभ्य है ।

कृष्ण और राधा का यह प्रेम निरन्तर अबाधित गति से चलता है । साथ साथ खेलते हैं, फिरते हैं । मिलन के बहाने दोहनी लेकर राधा सुबह-सुबह कृष्ण के घर आती है । यशोदा के कहने पर मट्ठा बिलोने बैठ जाती है, पर मन तो कहीं और है । व्याकुलचित्त वो खाली पात्र में दही मथती है ।[3]

---

1. सूरसागर - 1306
2. डॉ॰जगदीश गुप्त - ब्रज भाषा कृष्ण भक्ति काव्य [पु॰सं॰] - पृ॰206
3. सूरसागर - 1333

प्रेम जनित विह्वलता कृष्ण में भी कम नहीं । कृष्ण गाय के स्थान पर बैल दुहने लगते हैं[1] । सखा तारी दे देकर हँसते हैं । चतुर कृष्ण की चतुरता को इस नयी प्रीति ने चुरा लिया है[2] । दोनों का प्रेम छिपाये नहीं छिपता[3] ।

राधा कृष्ण का यह विहार वृंदावन प्रसंग में और भी चमत्कार के साथ प्रस्तुत है । वृन्दावन अनुपम सौन्दर्य की रंगस्थली है । कृष्ण और राधा के लिए सेज सज्जित है । बादल छाया हुआ है । बिजली चमकती है । बादलों व बगुलों की श्वेत पंक्ति सुशोभित रहती है । चातकों और मयूरों का कूजन उत्तेजक वातावरण उपस्थित करता है । राधा और कृष्ण तरह तरह के बहाने बनाकर विहार करते हैं । उनकी विह्वलता, प्रेम, हर्ष आदि भावनाओं का स्तुत्य चित्र सूर ने प्रस्तुत किया है ।

सूर का संयोग वर्णन अत्यन्त स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त है । वे श्लील अश्लील की सीमा के परे हैं । कहीं कोई रुकावट नहीं, और न ही झिझक, ऐसा उन्मुक्त वर्णन सूर ने किया है । -

किसोरी अंग-अंग भेंटी स्यामहिं ।
कृष्ण तमाल तरुन भुज साखा, लटकि मिली ज्यौं दामहिं[4] ।

तथा

नागर नागरि करत बिहार ।
काम नृपति सेना दुहुँ अंगनि सोभा वार न पार ।
अधर अधर नैननि नैननि भुज भाल कियौ इक ठोर[5] ।

---

1. सूरसागर - 1335
2. वही - 1335
3. वही - 1338
4. वही - 2748
5. वही - 2650

ऐसे स्वच्छन्द प्रेम में जहाँ हार भी मिलन में बाधक है - "उतारत है कंठनि तें हार ।"[1] राधा को विश्वास नहीं होता कि कृष्ण उसे मिल गये हैं । वह रात दिन कृष्ण के साथ रहती है, फिर भी प्रेम की प्यास नहीं बुझती[2] । यह प्रेम के उत्कर्ष की सीमा है -

राधेहि मिले हूँ प्रतीत न आवति
जदपि नाथ बिधुबदन बिलोकत, दरसन को सुख पावति
....
सूर प्रेम की बात अटपटी मन तरंग उपजावति[3] ।

संयोगावस्था की पवित्र और अत्यन्त कोमल उद्भावना के कारण सूर का श्रृंगार एकान्त सुन्दर बन गया है और सामान्य कवियों में परिलक्षित मांसलता एवं विलासिता का रंग उसमें गल घुलकर इस प्रकार रूपान्तरित हो गया है कि ऐसी प्रतीति दृढ हो जाती है कि प्रेम शरीर की क्रीडा तथा अन्तरात्मा की लगन है[4] ।

पनघट प्रस्ताव[5], यमुना विहार[6], भरे घर में संकेतों द्वारा वार्तालाप[7], हिंडोला[8], रास[9] आदि की लीलाएं होती रहती हैं, जिनके द्वारा विकसित होता हुआ वह प्रेम स्वच्छन्द रमण के साम्राज्य में प्रवेश करता है ।

सूर का संयोग वर्णन रीति कालीन कवियों की भांति गुलगुली गिलमों और गलीचों तक ही सीमित नहीं रहता । उसमें प्रकृति का अनन्त प्रसार है । सीमित संचारियों की कृत्रिम धारा के स्थान पर सरस हृदय का

1· सूरसागर - 1305
2· वही - 2474
3· वही - 2741
4· डॉ· रामशंकर तिवारी - सूर का श्रृंगार वर्णन - पृ·119
5· सूरसागर - 2016-2085
6· वही - 1343-1345
7· वही - 1332
8· वही - 3447-3460
9· वही - 1806-1801

उन्मुक्त भाव वर्णन है । पं॰रामचन्द्र शुक्ल का कथन है "उनकी उमड़ती हुई वाग्धारा उदाहरण रचनेवाले कवियों के समान गिनाये हुए संचारियों से बंधकर चलने वाली न थी ।[1]" तथा सूर का संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम-संगीतमय जीवन की एक गहरी धारा है, जिसमें अवगाहन करनेवाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता[2] ।

सूरदास ने स्वकीया नायिका का ही अधिक वर्णन किया है । परन्तु परकीया के भी अनेक उदाहरण सूरसागर में मिलते है । वचन विदग्धा,[3] क्रिया विदग्धा,[4] वासकसज्जा,[5] खण्डिता,[6] मानवती,[7] उत्कण्ठिता,[8] प्रोषितपतिका,[9] विप्रलब्धा,[10] अभिसारिता[11] - इन सब के उदाहरण सूर सागर में मिलते है ।

राधा कृष्ण का प्रेम, रासलीला, जलक्रीडा, दानलीला, चीरहरण आदि प्रकरण संयोग श्रृंगार के उज्वल उदाहरण है । श्रृंगार को उद्दीप्त करने वाले उद्दीपन है चांदनी रात, सरिता तट, सुन्दर सुमनावलियां, निर्जन स्थान आदि । रास लीला वर्णन में ये सारे उद्दीपन प्रस्तुत है । यही कारण है कि रास लीला के चित्रण में संयोग श्रृंगार अपनी पूर्ण उज्वलता पर पहुंचता है ।
उदाहरणार्थ -

गति सुघंध नृत्यति व्रजनारी,
हाव भावति नैननि सैननि दे दे, रिझवत गिरि वर धारी ।
पग पग पटकि भुजनि लटकावति, फूंदा फरनि अनूप,

1• शुक्लजी - सूरदास - पृ•167
2• वही - पृ•182
3• सूरसागर - 2642
4• वही - 2643
5• वही - 2647
6• वही - 3100
7• वही - 3198
8• वही - 3096
9• वही - 3999
10• वही - 2693
11• वही - 2703

चंचल चपल चुमिये अंचल, अद्भुत है वह रूप ।

"　　　　"　　　　"

गान करति नागरि रीझे पिय, लीन्हीं अंक लगाइ,
रस बस ह्वै लपटाइ रहे दोउ, सूर सखी बलि जाइ[1] ।

कृष्ण के प्रति प्रेम का दूसरा आश्रय है गोपियाँ । ये भी किशोरियाँ हैं । आयु में शायद राधा से भी छोटी । राधा के समान इनका मन भी पूरी तरह कृष्ण पर अनुरक्त है । उन्हें देखने के बहाने गोपियाँ शिकायतें लेकर यशोदा के पास आती है । कृष्ण गोचारण के लिए जाते हैं तो गोपियाँ उनकी प्रतीक्षा करती हैं और संध्या समय उनके सुन्दर मुख को देखकर तृप्त होती है[2] । उनके रूप पर गोपियाँ इतनी मुग्ध हैं कि वियोग में भी इस रूप की बार बार स्मृति करती हैं ।

कृष्ण के रूप के साथ उनकी मुरली का स्वर भी उन्हें प्रेम विह्वल कर देता है[3] । मुरली की तान सुनने पर वे सब कुछ भूलकर कृष्ण के पास चली जाती हैं

कृष्ण गोपियों का चीर हरते हैं तथा उन्हें सुख पहुँचाते हैं । इस लीला की चरम परिणति रास में होती है जहाँ सोलह सहस्र गोपियों के साथ कृष्ण शरत्पूर्णिमा में रास रचते हैं । पनघटलीला, दानलीला सभी में इस मिलन भाव की व्यंजना है ।

एक साथ रहने से गोपियों पर कृष्ण के बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य का जो अद्भुत प्रभाव पड़ा और उससे जिस उज्ज्वल प्रेम का उदय हुआ, वह जीवन के स्वाभाविक आनन्द के रूप में दिखाई देता है ।

---

1. सूरसागर - 1675
2. वही - 1234
3. वही - 1239

कृष्ण का अङ्ग-माधुर्य एवं बुद्धि-वैभव गोपियों की नस नस में, रोम रोम में बिंध गया है। वह माखनचोर गोपियों का चितचोर बन बैठा। मोहन मूर्ति ने संपूर्ण ब्रज को आकर्षित कर लिया। गोपियाँ तो "सब तज हरि भज" की मूर्तिमान उदाहरण बन गई -
सूर लिखते हैं :-

स्याम रंग रांची ब्रज नारी। और रंग सब दीनी डारी।।
कुसुम रंग गुरुजन पितुमाता। हरित रंग भगिनी अरु भ्राता।।
दिना चारि में सब मिटि जैहैं। स्याम रंग अजरायल रैहैं[1]।।

सब गोपियाँ इस अजरायल रंग में रंगी दिखाई पड़ने लगीं। संक्षेप में आचार्य शुक्ल के शब्दों में हम कह सकते हैं - "सूर का संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीत में जीवन एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करनेवाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता[2]।"

<u>वियोग श्रृंगार</u>

प्रेमी और प्रेमिका वियोग के दुखद क्षणों में जिस प्रेम जन्य शोक, संताप और वेदना का अनुभव करते हैं उसीका चित्रण वियोग श्रृंगार में किया जाता है।

कृष्ण गोपियों को छोड़कर ब्रज से मथुरा चले जाते हैं। गोपियों का हृदय मधुवन सहसा मुर्झा जाता है। जो गोपियाँ क्षण भर केलिए भी अपने प्रियतम का वियोग सहने में असमर्थ थीं, वे अब उसका चिर वियोग कैसे सह सकती थीं।

---

1. सूरसागर - 2530
2. आचार्य शुक्ल - सूरदास - पृ.182

उनका हृदय वियोग की ज्वाला से जल उठता है । उन्हें अपना जीवन भार स्वरूप जान पड़ता है । अपने प्रियतम की उपस्थिति में उन्हें जो वस्तुयें स्वर्गीय सुख प्रदान करती थी, वे ही सब उनको अत्यन्त दुखदायी जान पड़ती है -

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजै,
तब वे लता लगत तनु सीतल, अब भईं विषम अनल की पुंजै ।
वृथा बहति यमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलनि अलि गुंजै ।
पावन पानि, घनसार सजीवन, दधि सुत किरनि भानु भईं भुंजै ।
यह ऊधो कहियो माधव सों, मदन मारि कीन्हें हम लुंजै,
सूरदास प्रभु तुम्हारे दरस को मग जोवत अंखियाँ भई छुंजै[1] ।।

काव्य शास्त्रियों ने वियोग श्रृंगार की 10 मनोदशायें मानी है - अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणगान, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मूर्छा[2] । सूर के वियोग वर्णन में इन सभी मनोदशाओं के चित्र उपलब्ध है ।

अभिलाष :-

ऊधो, श्याम यहाँ ले आवहु,
ब्रज जन चातक मरत पियासे, स्वाति बूंद बरसावहु[3] ।

चिन्ता :-

मधुकर ये नयना पै हारे
निरखि निरखि मग कमल नयन के प्रेम मगन भये भारे[4] ।

---

1. सूरसागर - 4688
2. श्रीविश्वनाथ कविराज - साहित्य दर्पण - 3-190 तथा रामबहोरी शुक्ल - काव्य प्रदीप - पृ.66
3. सूरसागर - 4396
4. सूरसागर - 4199

स्मरण

एक दिन नवनीत चोरत हौं रही दुरि जाइ ।
निरखि मम छाया भजे मैं दौरि पकरे धाइ ।
पोंछि कर मुख लिये कनियां तब गई रिस भागि ।
वह सुरति जिये जात ना हीं रही छाती लागि ।।[1]

गुणगान :-

कहा दिन ऐसे ही जैहे ।
सुनि सखि मदनगोपाल [अबकिन] आँगन मैं ग्वालन संग न ऐहैं [रहैं]
कबहुं जात पुलिन जमुना के बहु बिहार बिधि खेलत ।
सुरति होत सुरभी संग आवत [बहुत कठिन] पुहुप गरे कर मेलत ।।
मृदु मुसुकानि आनि राखो जिय चलत कह्यो है आवन ।
सूर सो दिन अ कबहुं तो ह्वै है मुरली शब्द सुनावन ।।[2]

उद्वेग :-

कहाँ लौं मानौं अपनी चूक ।
बिनु गोपाल सखी ये छतियां ह्वै न गई द्वै टूक ।।
हृदय जरत है दावानल ज्यों कठिन विरह की हूक ।।[3]

प्रलाप :-

मनो ब्रज भयो धरनि ते स्वर्ग
सब बन पर गिरि अवगिरि पर ये प्रीति किये यह वर्ग ।[4]

---

1. सूरसागर - 3835
2. वही - 3842
3. वही - 3839
4. वही - 3840

उन्माद :-

मसि कर अंबु ले अंचरि मारि ।
तब तो पै कहूँ न मिटै, अब अति छूट गये तन जारि ।।
उठि इकबार जाइ मंदिर चढ़ि, ससि सन्मुख दरपन बिस्तारि ।
ऐसी भाँति बुलाइ मुकुर मैं, अति बल खंड खंड करि डारि ।।[1]

व्याधि :-

चितवत ही मधुबन दिन जात ।
नैननि नींद परत नहिं सजनी, सुनि सुनि बातनि मन अकुलात ।।
अब ये मदन देखियत सुने, धाइ धाइ हमकौं ब्रज खात ।
कौन प्रतीति करौं मोहन की, जिन छाड़े निज जननी तात ।।
अनुदिन नैन तपत बरसन कौं, हरद समान देखियत गात ।।[2]

जड़ता :-

निसिदिन कलमलात तुम सजनी सिर पर गाजत मदन अरे ।
सूरदास प्रभु रही मौन ह्वै कहि नहिं सकति नैन के भरे ।।[3]

मूर्छा :-

जबहिं कह्यो ये स्याम नहीं ।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला जो जहाँ रही सो तहीं ।।[4]

---

1. सूरसागर - 3972
2. वही - 3870
3. वही - 3857
4. वही - 4087

कृष्ण के चलते समय ब्रजयुवतियों को वियोग जन्य उदासी घेर लेती है[1]। विरह में गोपियाँ अपनी सुध बुध खो देती है। उनकी आँखों से आँसू बह निकलते है। उन्हें रह रहकर ख्याल आता है - "अब देखि से री स्याम को मिलनो बडी दूरि।" विरहानल की जलन से वे तड़प उठती हैं। उनके लिए अनल से अधिक दाहक है विरहाग्नि -

अनल ते विरह अगिनि अति तातो[2]।

कृष्ण का रथ चला गया और गोपियाँ लौटकर घर की ओर चलीं, परन्तु पैर आगे को नहीं पड़ते और आँखें, जिनके रूप लोभ ने यह गति बना दी, अब भी पीछे की ओर ही लगी थीं। यदि ईश्वर ने उन्हें पावन पताका या धूलि बना दिया होता तो वे श्याम के साथ ही चली जातीं[3]।

"मुरलि धरी ब्रजनाथ" से कृश, विकल और विवर्ण गोपियों का सजीव चित्र सामने आ जाता है। उनकी प्रेम पीड़ा का मार्मिक और संवेदनशील चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

मानव हृदय के भावों का प्रकृति के साथ सभी भारतीय कवियों ने सामंजस्य स्थापित किया है। वह मनुष्य के सुख दुख में हँसती और रोती है। जड़ और चेतन जगत् की एक ही ब्रह्म से उत्पत्ति मानने वाले भारतीय मनीषी उनमें अभेद देखते हैं। यही कारण है कि वियोगिनी गोपियों को यमुना नदी भी कृष्ण के वियोग ज्वर से काली पड़ी हुई दीख पड़ती है[4]।

---

1. सूरसागर - 3578
2. वही - 3583
3. वही - 3619
4. वही - 3809

परन्तु मधुवन अब भी हरा भरा खड़ा है । वही मधुवन जिसने गोप वल्लभ की अगणित क्रीड़ाओं का साक्षात्कार किया था, जिसके निकुंज कृष्ण की बांसुरी के मधुर स्वर के साथ कामिनी कलकण्ठों से निर्गत कोमल ध्वनियों से गुंजते रहे थे, जिसके हृदय में रासकर्ता मोहन के पदचिन्ह आज भी बने हुए हैं, कृष्ण के वियोग में गोपियों का साथी न बना[1] । साथी वही है जो दुःख में साथ दे । मधुवन की यही विफलता गोपियों को क्षुब्ध कर देती है और वे उसे कोसने लगती हैं -

मधुवन तुम क्यों रहत हरे ।
विरह वियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे[2] ।।

जो नैन प्रेम के प्रवर्तक थे, जिनके उत्पात के कारण गोपियाँ कृष्ण के प्रेमपाश में बद्ध हुई, उनकी भी वियोग में सावन भादों की मेघ घटाओं के समान दशा हो गई[3] । मेघ तो कुछ देर के लिए रुक भी जाते हैं, पर गोपियों के नैन निशा-दिन बरसाते हैं -

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब ते स्याम सिधारे[4] ।
सभी तो नैनों से बादल भी हार गये -

सखी इन नैननि तें घन हारे ।
बिनहीं रितु बरसत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे[5] ।

---

1. सूरसागर - 3829
2. वही - 3829
3. वही - 4103
4. वही - 3853
5. वही - 3853

सूर का विरह वर्णन विश्व साहित्य में अनुपम है। भ्रमरगीत का उपजीव्य विरह प्रसंङ्ग ही है। भ्रमरगीत में गोपियों के तर्क के सामने उद्धव भले ही कुछ उत्तर दे सके, पर उनके प्रेम विह्वल अटपटे वचनों से उन्हें भी हार माननी पड़ी। उनकी प्रेम रस धारा में उद्धव के ज्ञान की गुरु गठरी न जाने कहाँ बह गई। इस प्रसंङ्ग में गोपियों की अन्तर्दशा का जैसा वर्णन सूर ने किया है अन्यत्र दुर्लभ है। गोपियाँ विरह में जल रही हैं और भ्रमर को उपालंभ बनाकर कृष्ण के संदेशवाहक उद्धव को व्यंग्य कर रही है। अत: वियोग श्रृंगार की दृष्टि से उन्होंने अपने भ्रमरगीत में प्रेम का जो चित्र उपस्थित किया है वह अद्वितीय है। विप्रलंभ श्रृंगार के अन्तर्गत "भ्रमर गीत" का सृजन करके सूर ने हिन्दी साहित्य को एक अमर और अद्वितीय निधि दे दी है। सूरदास का विप्रलंभ श्रृंगार हिन्दी साहित्य में अनुपम है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं "प्रेम भाव की मनोवृत्ति का जैसा विस्तृत और पूर्ण परिज्ञान सूर को था, वैसा और किसी कवि को नहीं[2]।" फिर वे लिखते हैं - उनका विप्रलंभ ऐसा ही विस्तृत और व्यापक है। वियोग की जितनी अन्तर्दशाये हो सकती है, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यत: हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं[3]।

कृष्णगाथा में श्रृंगार वर्णन

श्रृंगार के जितने रूप हो सकते हैं, सबकी कृष्णगाथा में व्यंजना है। यह श्रृंगारानुभूति लौकिक नहीं, ईश्वर के प्रति है। कृष्णगाथा में यह श्रृंगार व्यंजना सौन्दर्य की चरम सीमा पर पहुँचकर काव्यानंद का अजस्र स्रोत प्रवाहित करती है। इसके आध्यात्मिक आनन्द का रस भक्त जन ही ले सकते हैं। साधारणत: जो भाव मनुष्य के नित्य जीवन से संबद्ध है, जिनमें सार्वजनिकता पायी जाती है, वे सत्य होने के कारण अधिक आनन्ददायी प्रतीत होते हैं। कवि अपनी सूक्ष्म

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास - पृ.159
2. वही - पृ.143
3. वही - पृ.138

निरीक्षण शक्ति, कल्पना और अनुभूति के द्वारा जीवन और जगत् के नाना दृश्यों और अनुभवों को समेटकर वाणी के माध्यम से सहृदयों के समक्ष प्रस्तुत करता है। ऐसी स्थिति में ही पाठक या श्रोता काव्य रस का आस्वादन करता है। इसी अनुभूति को रसवादी आचार्य ब्रह्मानंद सहोदर मानते हैं। कृष्णगाथा में सार्वजनिक प्रेम भाव को उपस्थित करने वाले चित्र भरे पडे हैं। वे अपने सौंदर्य के प्रभाव के कारण अद्वितीय हैं।

पूर्वराग अवस्था·

कृष्ण गाथा की गोपकुमारियाँ किशोर अवस्था की है। वे प्रणय सम्बन्धी बातों में अनभिज्ञ नहीं है। अतएव कवि ने इस प्रणय का चित्रण करते समय प्रेम की पूर्वराग अवस्था का ही वर्णन किया है। प्रणय जगत् में प्रवेश करते ही गोपि अपने प्रियतम कृष्ण में नयी माधुरी नया रूप, और एक अपरिचित आकर्षण पाने लगती हैं[1]। जब गोपियाँ पनघट जाती हैं या दधि बेचने केलिए जाती हैं तब कृष्ण का साक्षात्कार होता है[2]। कभी कभी रास्ते में यों ही उनसे मिलती हैं। उस समय कृष्ण के सलोने रूप, बाँकी झाँकी, अनुराग से भीगी भीगी आँखें, मुरली की सुरीली तान आदि से वे प्रेमोन्मत्त हो जाती हैं। ऐसे सन्दर्भों में कृष्ण और गोपिकाओं के पूर्वराग का वर्णन कवि करते हैं। यौवन की उन्मत्त अवस्था में कृष्ण उन्हें साक्षात् कामरूप दिखाई देते हैं। जब कभी व्रज पर आपत्तियाँ छा जाती है गोपियाँ उन्हें अतुल शक्तिशाली रक्षक के रूप में देखती हैं। कृष्ण के दिव्य रूप और दिव्य गुणों पर व्रज किशोरियाँ समान रूप से मुग्ध हैं। कृष्ण के शील, सौन्दर्य और शक्ति का सूर और चेरुशेरी दोनों ने तल्लीनता से चित्रण किया है।

1· कृष्णगाथा - वेणुगानं - 248-262

2· कृष्णगाथा - विप्रपत्न्यनुग्रहलीला - 46-48

कृष्णगाथा में मिलन की उत्कट कामना की व्यंजना भी बहुत प्रभावशाली है।[1] उदाहरणार्थ प्रेमी की विभिन्न दशाओं - जैसे मिलन-उत्कंठा,[2] हृदय की लालसाभरी तड़पन,[3] प्रिय का ध्यान और उसकी याद,[4] प्रेम की कसकभरी उर्मी[5] आदि का कृष्णगाथा में चित्रण हुआ है। कवि ने इस चित्रण में परिस्थिति का भी ध्यान रखा है।

गोपियों की जो उत्कट विरह वेदना कृष्ण के प्रवास पर व्यक्त की गयी है उसमें उर्मी है, उत्साह है और आत्मसमर्पण है; प्रलाप, व्याधि, जड़ता, उद्वेग आदि भावों का इसमें समावेश नहीं।

भारतीय काव्य परंपरा के अंतर्गत प्रेम के उत्कर्षवर्द्धक उपकरणों में सखी, सखा तथा दूतियों का विशेष स्थान है। नायक के साथ उसका अंतरंग सखा और नायिका के साथ उसकी अंतरंग सखी का चित्रण प्रायः सभी भारतीय प्रेम काव्यों में हुआ है। गोपी और कृष्ण प्रेम में भी कवियों ने प्रेम के उद्दीपन विभाव रूप में सखाओं का वर्णन किया है। प्रेम की पूर्वराग तथा मान अवस्थाओं में कृष्णगाथाकार ने सखियों के कार्य का विशेष वर्णन किया है।

कृष्णगाथा में शृंगार रस का चित्रण गोपियों और कृष्ण के प्रेम प्रसंगों और उनकी विरह वेदना के व्यापारों को लेकर हुआ है। इस प्रसंग में कृष्णगाथाकार का कवि रूप भक्त रूप की अपेक्षा अधिक उभरकर दिखाई देता है।[6]

---

1. कृष्णगाथा - गोपिका दुख - 1-80, 93-110
2. वही - - 1-6
3. वही = 55-59
4. वही = 60-62
5. वही = 1483-84
6. वेलनाट अच्युत मेनन - प्रदक्षिणं - पृ. 63

वात्स्यायन से शुरू होनेवाले काम शास्त्रों के आधार पर ही गोपिदुग्ध रासक्रीड़ा जैसे श्रृंगार दृश्य लिखे गये हैं।[1]" कृष्णगाथा में गोपिकादुग्ध में विप्रलंभ श्रृंगार को और रासक्रीड़ा में संयोग श्रृंगार को प्रधानता दी है।

संयोग श्रृंगार

गोकुल में रहते हुए जो भी लीलाएं - दानलीला, चीरहरण लीला, रासलीला, मानलीला आदि - कृष्ण ने गोपियों के साथ कीं वे सब संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत आती हैं।

कृष्ण की रूप माधुरी का पान करती हुई गोपियाँ कामातुर होती हैं।[2] कृष्ण उनके विकार को अपने स्निग्ध व्यवहारों से उद्दीप्त करते हैं।[3] चीरहरण,[4] दानलीला[5] आदि के सहारे वह काम शनैः शनैः वृद्धि पाता है। रासलीला[6] के समय हमें उसका पूर्ण रूप दृष्टिगोचर होता है।

कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा को हृदय में धारण करके गोपियाँ शिव और सूर्य की आराधना में तल्लीन हो जाती हैं।[7] मगर कृष्ण की चंचलता और धृष्टता उनके धैर्य को भंग करती है। गोपियों का मन उत्कंठा, आवेग और विकलता से भर जाता है।[8]

---

1. डॉ. के.एम. जार्ज - साहित्य चरित्रं प्रस्थानङ्ङळिलूटे - पृ.325
2. कृष्णगाथा - उलूखलबन्धन - 160-180
3. वही - 240-260
4. वही - हेमन्तलीला - 30-270
5. वही - विप्रपत्न्यनुग्रहलीला - 1-120
6. वही - रासक्रीड़ा - पू.1-1260
7. वही - हेमन्तलीला - 1-20
8. वही - हेमन्तलीला - 260-270

इसके पश्चात् कवि काम की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करता है गोपियां उन्मत्त होकर खाली गगरी लिए वन वन गोरस बेचती हैं। कभी कृष्ण की याद कर चौंक पड़ती हैं। विकल होकर यमुना के तीर पर जाती हैं[1]। वहाँ बैठकर दान लीला का अभिनय करती है। इस तरह कृष्ण के गुणों का स्मरण कर कृष्ण प्रेम में मग्न हो जाती हैं। कभी हंसती और कृष्ण को बुलाती हैं[2]। कभी हंसति और क रिसकर उन्हें बरज देती हैं[3]। वे पूर्ण रूपेण कृष्ण प्रेम में संलग्न हो गईं। हर्ष, गर्व, विकलता, क्षोभ आदि अनेक भावों का अनुभव करती इन भावों में निहित आनन्द रास के प्रसंग में पूर्णता प्राप्त करता है। हिंडोल और वसन्त की लीलाओं में रति सुख अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

कृष्ण ने अपने पास खड़ी प्रेयसी के मृदुल केश कलाप को अपने हाथ में ले लिया। उंगलियों से उसे सहलाते हुए उसके मनोहर मुख को प्रेम पूर्वक चूम लिया। उसके थक जाने पर कृष्ण ने स्नेह उसके वक्ष पर हाथ फेरा। उसे छाती से लगाये, वस्त्रांचल से झलकर उसकी थकावट दूर की। वह कृष्ण के मुख पर अपना मुख लगाये अपने को भी भूलकर लेट गई[4]।

इस प्रकरण में संयोग शृंगार का बेलौरी से हृदयहारी चित्र अंकित कि है। यद्यपि इसका संबन्ध रति क्रीड़ा से है तथापि प्रेमी तथा प्रेमिका का जो पारस्परिक विश्वास, आत्म समर्पण और आत्मविस्मृति का जो भाव है वह पाठ के अन्तरंग को छूने में समर्थ है। उच्छृंखल काम भावना कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। सभी आचरण अत्यन्त संयत और रुचिपूर्ण है।

इस प्रकार के सन्दर्भ कृष्णगाथा में भरे पड़े हैं। कुछ एक उदाहरण प्रस्तुत। रुक्मिणी स्वयंवर से एक प्रकरण प्रस्तुत है। कृष्ण ने रुक्मिणी को बलात्

---

1. कृष्णगाथा - विप्रपत्न्यनुग्रहलीला - 40-60
2. वही - गोपिकादुख - 73-76
3. वही - गोपिकादुख - 668-672
4. कृष्णगाथा - रासक्रीडा - 770-780 का छायानुवाद।

हर लिया था । दोनों यद्यपि एक दूसरे के रूप और गुणों से प्रभावित और प्रेमासक्त थे तथापि दोनों के सम्मिलन में बाधायें अनेक थीं । रुक्मिणी का भाई रुक्मी अपनी बहन का विवाह शिशुपाल के साथ कराना चाहता था । शिशुपाल कृष्ण का जाने दुश्मन था । इस स्थिति ने रुक्मिणी और कृष्ण दोनों को एक विचित्र स्थिति में डाल दिया । अपनी प्रेमिका की विपन्न स्थिति को समझकर कृष्ण ने अपनी सेनाओं के साथ जाकर सभी राजाओं को पराजित कर उसका उद्धार किया ।

हमेशा रुक्मिणी की तरफ कृष्ण अधिक आकृष्ट थे । उनके साथ कृष्ण के रमण का कवि ने विशेष ध्यान देकर वर्णन किया है[1] ।

"रुक्मिणी यद्यपि कृष्ण के प्रेम में आसक्त थी तथापि उनसे खुलकर मिलने में लज्जा का अनुभव करती थी । कृष्ण ने जब उसकी तरफ देखा, उसने आँखें झुका लीं[2] ।"

प्रियतमा को लज्जा विवश देखकर प्रिय ने प्रेम भरे वचनों में उससे कहा - "प्यारी तुम से मिलने और तुम्हारे मृदुल तन से लगने के लिए ही मैं इतने दूर से तुम्हारे पास आया हूँ । तुम क्यों इतनी लज्जित होती हो । मेरे पास आओ[3] ।"

कृष्ण के वचन सुनकर रुक्मिणी अधिक लज्जित होती है । फिर झुककर मौन खड़ी होती है । कृष्ण का स्पर्श पाकर वह रोमांचित होती है । चुंबन पाने पर आँखें मूंद लेती है[4] ।

---

1. रुक्मिणी स्वयंवर - 1-1120
2. कृष्णगाथा - रुक्मिणी स्वयंवरम् - 1143-1148
3. वही - 1149-1153
4. वही - 1150-1180 का छायानुवाद

इस प्रकार की अनेक क्रीडाओं में मग्न होकर पति पत्नी आनन्द दिन बिताने लगे ।

यहाँ पर भी कवि के संयोग वर्णन में यह विशेषता पायी जाती है कि उनके नायक नायिकाओं की चेष्टायें सभ्यता की सीमा का उल्लंघन नहीं करती । प्रेमी प्रेमिकाओं के परस्पर मिलन के सन्दर्भ में साधारण कोटि के कवि आत्मनियन्त्रण को छोड देते हैं और स्थूल एवं मांसल श्रृंगार चेष्टाओं का चित्र प्रस्तुत करते हैं । वस्तुत: श्रृंगार का मांसल वर्णन सच्ची रसानुभूति में बाधक है । वह पाठकों के हृदय को वासनाग्रस्त बना देता है । परन्तु श्रेष्ठ कवि स्थूल चित्रों के स्थान पर व्यंग्य चित्र ही खींचते हैं । वह पाठकों की सौन्दर्य चेतना का परिष्कार करके उन्हें कला का वास्तविक आनन्द प्रदान करता है । चेळोदी के श्रृंगार वर्णन की यही विशेषता है । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके काव्य में सर्वत्र "ध्वन्यात्मक व्यापार" ही प्रमुख है । कहीं कहीं संयोग पक्ष के स्थूल चित्र भी मिलते हैं । इसका कारण कवि के युग की प्रवृत्ति है । कवि जिस युग में जीवित थे वह भोगपरता का युग था । संभवत: हमारे कवि भी युग के प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं रख सके ।

प्राकृतिक वातावरण और प्रेमियों की नवीन वेश-भूषा, रूप लावण्य आदि संयोग दशा में प्रेम को बढाने में सहायक होते हैं । गाथाकार ने रुक्मिणी की अपार रूपराशि तथा आकर्षक वेश का बहुत सुन्दर वर्णन किया है[1] । साथ ही संयोग दशा के ऐसे आमोद प्रमोदों का भी वर्णन है जो ऋतु शोभा के प्रभाव से आनन्द की वृद्धि करते हैं ।

---

1. कृष्णगाथा - रुक्मिणी स्वयंवरम् - 114-120

संयोग शृंगार की उद्दीपक ऋतुओं में, हमारे देशमें दो - वर्षा और वसंत - का विशेष महत्व रहा है और शृंगार चित्रण में इन्हीं दोनों का प्रचुर वर्णन हमारे देश के कवियों ने किया है । दोनों ऋतुओं में प्रकृति की शोभा सुहावनी हो जाती है, प्राणी का हृदय उमंग से भर जाता है और मानव इन्हीं दिनों अनेक उत्सव मनाने का आयोजन करता है । गाथाकार ने भी वर्षा और वसन्त ऋतूत्सवों और गोपी-कृष्ण प्रेम प्रमोदों का बड़े उत्साह से वर्णन किया है[1] ।

विप्रयोग शृंगार

कृष्ण के मथुरागमन पर गोपियों की विरह वेदना का चित्रण वियोग शृंगार के अंतर्गत है । संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार के चित्रण में गाथाकार को अधिक सफलता मिली है[2] ।

प्रेम चाहे लौकिक हो या अलौकिक उसकी गहराई का परिचय प्रेमी की व्याकुलता से ही मिलता है । संयोगावस्था के सुख का महत्व विरह की वेदना ही प्रकट करती है ।

प्रेमी भक्त अपने प्रिय परमात्मा की याद में आत्म विस्मृत हो जाते हैं । वे अपने को प्रिय में ही मिला देना चाहते हैं । प्रिय को भीतर बाहर सर्वत्र देखते हैं । इस अवस्था को एक प्रकार की सायुज्य मुक्ति की दशा कहा जाता है[3] ।

विरहानुभूति की आवश्यकता तथा महत्ता का वर्णन चेरुशेरी ने बड़े विस्तार से किया है[4] । अनेक प्रकार से विरह जन्य मानसिक अवस्था के चित्र

---

1. कृष्णगाथा - प्रावृड्वर्णन और शरदवर्णन
2. उल्लूर - केरल साहित्य चरित्रं - भाग-2, पृ.151
3. डा.धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश - भाग-1, पृ.655
4. कृष्णगाथा - गोपिका दुःख और उद्धवदूत

अंकित किये हैं[1]। काव्य शास्त्र में कही गई वियोग श्रृंगार की सभी अवस्थाओं[2]- अभिलाषा[3], चिंता[4], स्मृति[5], उद्वेग[6], प्रलाप[7], उन्माद[8], व्याधि[9] आदि-के बड़े ही मार्मिक वर्णन हमारे कवि ने किये हैं।

विरह वेदना से प्रताड़ित शारीरिक तथा मानसिक व्यापारों - जैसे मलिनता, पांडुता, कृशता, अरुचि, दीनता, तन्मयता आदि के चित्रण में साधाकर पूर्णतः सफल हुए हैं[10]। चेरुश्शेरी की उत्कट विरह वेदना अंत में दैन्य भाव धारण कर उनको प्रिय के साथ तन्मय कर देती है और वे भावजगत् में ब्रह्मानन्द का अनुभव करने लगते हैं[11]।

कृष्णगाथा का गोपिकादुःख वियोग श्रृंगार का सुन्दर उदाहरण है। यथा - कृष्ण के ओझल होने पर व्रजवासिकाएं विरह दुःख से अत्यन्त कातर हो गईं प्रकृति की शीतल वस्तुएं उनकेलिए दाहक प्रतीत होने लगीं। कृष्ण के गुणगणों का वर्णन करते हुए वे इस प्रकार विलाप करने लगीं -

> हे कारुण्य पूरक, तारक, मेघवर्ण, श्याम, कृष्ण तुम देखो
> हमारे प्रति तुम्हारे मन में जो करुणा थी वह अब कहाँ चली
> गई ? तुम्हारे मन इतना निष्करुण हो गये कैसे ?[12]

---

1. उद्धव दूत - 50-113
2. काव्य शास्त्र में वियोग श्रृंगार की दस दशायें बताई गई है - साहित्यदर्पण 3-190
3. कृष्णगाथा-रासक्रीडा - 148-153
4. कृष्णगाथा-गोपिकादुःख - 1483-1490
5. कृष्णगाथा-उद्धव दूत - 55-60
6. कृष्णगाथा-गोपिका दुःख - 438-448
7. वही - 537-541
8. वही - 570-580
9. वही - 238-240
10. वही - और उद्धवदूत
11. कृष्णगाथा - अनुरागमर्म - 280-290
12. कृष्णगाथा - गोपिकादुःख 1325-1330 का छायानुवाद

कृष्ण रूपी उज्ज्वल दीप के ओझल होने से गोपिकाओं के हृदय में दुख का घोर तिमिर छा गया । उनके मन में कृष्ण के प्रति प्रेम तो था ही, उसके साथ थोड़ा रोष भी आ गया । पास खड़े कृष्ण को कहीं न देख पाने के कारण वे अधीर हो रोने लगीं -

> हाय सखि क्या कहूं, ऐसा कभी मैं ने नहीं देखा था ।
> हाय घोर वन के मध्य में हमें अकेले छोड़ कर वह कृष्ण
> कहाँ चला गया[1] ।"

संयोगावस्था में सुखदायी अनुभव होनेवाली वस्तुओं का वियोगावस्था में दुखदायी अनुभव होना स्वाभाविक है । कृष्ण से संयुक्त रहते समय जो मधुवन गोपियों को प्यारा लगता था, वही अब अप्रिय लगता है और वे कहती है कि "मधुवन तुम क्यों हरे भरे रहते हो ? श्याम सुन्दर के विरह में तुम क्यों जल नहीं गए[2] ?" गोपियाँ जानती है कि गोकुल वही है, लोग वे ही है, यमुनातट भी वही है, वन वही है और लता भी वही है । चातक और कोयल का मधुर रव सुनना अब उन्हें सह्य नहीं है[3] । मधुवन के सुन्दर सुगन्धित पुष्प उन्हें अब अग्नी के समान जलाने वाले है[4] । दूध भी उन्हें विष के समान लगते है[5] । चन्द्र भी विरहिणी के दुख को दुगना करने केलिए चाँदनी बरसाते है[6] । कृष्ण के बिना सब कुछ उन्हें फीका लगता है । ये सारे वर्णन विरहिणी गोपियों के हृदय की व्यथा वेदना को व्यक्त करते है ।

यद्यपि कहीं कहीं ऊहात्मक उक्तियाँ उन्होंने अवश्य कही है, तथापि स्वाभाविकता का निर्वाह उन्होंने अपनी अधिकांश पंक्तियों में किया है । इसलिए इनका विरह वर्णन इतना सजीव, इतना प्रभावोत्पादक, और इतना करुण प्रतीत होता है ।

---

1. कृष्णगाथा - गोपिकादुख - 526-540
2. वही - 880-890
3. वही - 1171-1178
4. वही - 1181-1182
5. वही - 1186-1187
6. वही - 1114-1118

प्राकृतिक व्यापारों के बीच गोपियों के विरह दृश्य की जैसी परमोज्वल रसधारा कृष्णगाथा में बही है वैसी मलयालम साहित्य में कहीं देखने को नहीं मिलती ।

तुलना

आचार्यों ने श्रृंगार के संयोगपक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष को अधिक महत्व पूर्ण माना है । इसका कारण यह है कि वियोग स्नेह स्वर्ण केलिए कसौटी सदृश होता है । जब हम सूर और चेरुश्शेरी के विप्रलंभ श्रृंगार पर विचार करते हैं तब स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं कि दोनों का विप्रलंभ श्रृंगार उनके संयोग श्रृंगार से भी अधिक सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी है । दोनों अपने को विप्रलंभ श्रृंगार के अद्वितीय कवि सिद्ध करते हैं । गोपियों की वियोगदशा का वर्णन हमारे सम्मुख वियोग जन्य नाना प्रकार की मानसिक दशाओं के मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है । संयोग और वियोग दो अंग होने से श्रृंगार की व्यापकता बहुत अधिक होती है और इसलिए वह रसराज कहलाता है । इस दृष्टि से यदि सूरदास को हम रससागर कहें तो बेखटके कह सकते हैं[1] ।" सूर में वियोग का सफल चित्रण है । इस क्षेत्र में सूर की समता करने वाला, विरह वेदना का इतना विस्तृत और गंभीर अनुभव करनेवाला कोई कवि नहीं दिखाई पड़ता[2] । चेरुश्शेरी के सम्बन्ध में भी यह कथन पूर्णतः सत्य है[3] ।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - त्रिवेणी - पृ.93
2. डॉ. मुंशीराम शर्मा - सूरसौरभ - पृ.248
3. उल्लूर - केरल साहित्य चरित्रं - भाग-2, पृ.151

सूर और बेकोरी में हास्य

सूरसागर और कृष्णगाथा में शृंगार, वीर, करुण आदि प्राय: सभी प्रमुख रसों का परिपाक मिलता है । पर शृंगार को छोड़ने पर अन्य रसों की अपेक्षा हास्य को ही अधिक प्रमुखता प्राप्त हुई है । इसलिए इस प्रसंग में उसका प्रतिपादन आवश्यक है ।

हँसना जितना सरल है, हास्य का विवेचन करना उतना ही कठिन है[1]। जो मनुष्य अपने जीवन में कभी नहीं हँसा उसके सम्बन्ध में कहना पड़ेगा "वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।" वह मनुष्य नहीं, पुच्छविषाणहीन द्विपद पशु है, क्योंकि हँसना मनुष्य का विशेषाधिकार है[2]।

हास्य रस

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ही रस का प्रथम बार नियमबद्ध उल्लेख मिलता है । उसके अनुसार मूल रस चार हैं - शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स[3]।

अग्निपुराण भी मुख्य रस के संबन्ध में नाट्यशास्त्र का अनुगमन करता है[4]। उसके अनुसार शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और बीभत्स से भयानक की उत्पत्ति होती है[5]।

---

1. डॉ॰बरसानेलाल चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य में हास्य रस - पृ॰1
2. गुलाबराय - डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी कृत हिन्दी साहित्य में हास्य रस की भूमिका - पृ॰5
3. तेषामुत्पत्तिहेतवश्चत्वारो रसा: । तद्यथा शृंगारो रौद्रो,वीरो बीभत्स इति - नाट्यशास्त्र 6-39
4. अग्निपुराण - अध्याय 339 श्लोक-6,7 - चौखम्बा प्रकाशन
5. शृंगाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणोरस: ।
   वीराच्चाद्भुत निष्पत्ति: स्याद्बीभत्साद् भयानक: ।
   अग्निपुराण - 339-7,8 [सं॰बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन]

भरत मुनि भी शृंगार से हास्य की उत्पत्ति मानते हैं[1]। फिर वे कहते हैं "शृंगार रस की अनुकृति हास्य है[2]। अनुकृति का अर्थ है अनुकरण अथवा नकल करना। नकल हँसी की जड़ है। किसी की बातचीत, चाल-ढाल, वेष-भूषा आदि की नकल जब विनोद के लिए की जाती है तब हँसी का प्रादुर्भाव होता है।

हास्य रस के उद्रेक के सम्बन्ध में दशरूपककार धनंजय कहते हैं -

"विकृता कृति वाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्याद् परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रि प्रकृतिः स्मृतः[3]।।

अर्थात् हास्य का कारण अपनी अथवा दूसरे की विचित्र वेष भूषा, चेष्टा, शब्दाल तथा कार्य कलाप है।

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ हास्य के उद्रेक के सम्बन्ध में कहते हैं

"विकृताकार वाग्वेष चेष्टादेः कुहकाद् भवेद्।
हास्यो हास स्थायि भावः श्वेतः प्रमथ दैवतः[4]।।

अर्थात् वाणी, चेष्टा तथा आकार की विकृति से हास्य रस का आविर्भाव होता

हास्य का साहित्य शास्त्र में स्थान

भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने रसराज शृंगार के बाद दूसरा स्थान हास्य को दिया है। इससे उसका महत्व सहज ही प्रकट होता है। "रति" की भाँति हास भी मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है।

---

1. शृंगारादि भवेद्धास्यो - नाट्यशास्त्र - 6-39
2. नाट्यशास्त्र - 6-40
3. दशरूपक -4प्रकाश - पृ॰75
4. साहित्यदर्पण - परिच्छेद-3, श्लोक 214
   [चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन - 1963]

हास्य रस के उपादान

हास्य रस का स्थायी भाव है हास । वाणी, वेश-भूषा आदि की विपरीतता से जो चित्त का विकास होता है वह हास कहलाता है[1] ।

इसके विभाव हैं - वस्तुमात्र में देखी हुई विकृति अथवा विपरीतता, व्यंग्य दर्शन, परचेष्टा का अनुकरण, असम्बद्ध प्रलाप आदि[2] ।

जिसकी विकृति-आकृति, वाणी, वेष तथा चेष्टा को देखकर लोग हंसते हैं वह आलम्बन और उसकी विविध चेष्टाएं उद्दीपन विभाव हैं[3] ।

नयनों का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना हास्य के अनुभाव हैं[4] ।

यहाँ गोपन, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, अवहित्था, स्वप्न आदि हास्य के व्यभिचारी भाव हैं[5] ।

हास्य के भेद

साहित्य दर्पण में हास्य के छः भेद किये गये हैं - स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अति हसित[6] ।

---

1. वागादि वैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते - साहित्यदर्पण - 3-214 पृ०251
2. नाट्यशास्त्र (चौ०सं०) पृ. 74.
3. विकृताकार वाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः ।
   तमत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।। साहित्यदर्पण - 3-215 - पृ०25
4. अनुभावो ऽक्षि संकोच वदन स्मेरतादयः - साहित्य दर्पण - 3-216
5. साहित्य दर्पण - 3-216
6. ज्येष्ठानां स्मित हसिते मध्यानां विहसितावहसिते च ।
   नीचानामपहसितं तथापि हसितं तदेष षड्भेद ।।
   - साहित्यदर्पण (शालिग्राम की टीका) - पृ०158 श्लोक 217

भरत ने हास्य के दो विभाग किये हैं - आत्मस्थ और परस्थ । जब पात्र स्वयं हंसता है तो आत्मस्थ है, जब दूसरे को हंसाता है तो परस्थ है[1] ।

विभाव को देखने से जो हास्य उत्पन्न होता है उसे पंडितराज जगन्नाथ आत्मस्थ मानते हैं और किसी अन्य को हंसाता हुआ देखकर जो हास्य उत्पन्न होता है वह उनके अनुसार परस्थ है ।

पश्चिमी विद्वानों ने हास्य के पांच भेद किये हैं[2] -

1. स्मित हास्य (Humour)
2. वाग्वैदग्ध्य (Wit)
3. व्यंग्य (Satire)
4. वक्रोक्ति (Irony)
5. प्रहसन (Farce)

सूर और वेलोरी में हास्य

स्थान काल के अंतर के बावजूद सूर और वेलोरी की हास्य चेतना में बड़ी समानता है । हास्य तो मनोरंजन का एक माध्यम है, समाज सुधार का एक माध्यम भी है । श्रोताओं या पाठकों के मनोरंजन के लिए ही सूर और वेलोरी दोनों ने हास्य सृष्टि की । भक्ति और दर्शन के जटिल तत्व तथा सूखे इतिवृत्त कथन को पाठकों के हृदय में पहुंचाने के लिए बीच बीच में हास्य रूपी मसाला भी आवश्यक है । सरस प्रसंगों में हास्य को मिलाने के कारण दोनों कवियों का दिल भी हल्का बन गया, पाठकों का मन भी ऊब जाने से बच गया ।

---

1. यदा स्वयं हसति तदा आत्मस्थः ।
   यदा तु परं हासयति तदा परस्थः ।। नाट्यशास्त्र (चौ.सं.) - पृ.74
2. बरसानेलाल चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य में हास्य रस - पृ.37 में उद्धृत,
   सरोज खन्ना - हिन्दी कविता में हास्य रस - पृ.32 में उद्धृत

पर दोनों की प्रतिपादन रीति और विचारधारा में अन्तर है। सूर सूर हैं और पेरुशेरी पेरुशेरी।

"श्रृंगार" के एक छत्र सम्राट होने के साथ साथ "वात्सल्य" में भी सूर अपना सानी नहीं रखते। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि प्रायः आलोचक यह कहना भूल जाते हैं कि इन दोनों रसों की भांति ही हास्य रस के क्षेत्र में भी कोई उनके समक्ष नहीं ठहर सकते। उनका हास्य उनके श्रृंगार एवं वात्सल्य से किसी भी भांति पीछे नहीं है। वे तो साक्षात् हास्यरसावतार थे। "सूर विनोदी रे मधु बनिया।" उनकी प्रकृति अत्यन्त विनोदमयी थी। जैसे सूक्ष्म हास्य के दर्शन सूर में होते हैं वैसा हास्य विश्व साहित्य के बड़े से बड़े लेखक में भी दुर्लभ है।

गाथाकार की हास्यात्मक शैली प्रसिद्ध ही है। श्रृंगार और वात्सल्य के समान या उससे भी बढ़कर हास्य रस की व्यंजना कृष्णगाथा में हुई है। कतिपय प्रसंगों के अवलोकन से यह बात प्रमाणित हो सकती है। गाथाकार अपने बारे में यों कहते हैं - "स्वर्गलोक में जब मैं पहुँचूँगा तब "लो वह कवि आया जिसने कृष्णगाथा रची थी" कहते हुए अभिमान आदर के साथ खड़े होंगे[1]।

पेरुशेरी की सरस भावना पंख फैलाकर फिर भी उड़ने लगती है "दुख के समुद्र में लेटनेवाले ईश्वर कवि की रचना से संप्रीत होकर वात्सल्य रस युक्त कटाक्षों द्वारा उसको वरदान देंगे[2]।"

सूर और पेरुशेरी दोनों कृष्ण भक्त कवि हैं। दोनों ने पुराण कथाओं को काव्य का आधार बनाया। इन कथाओं में कुछ प्रसंग विशेष रूप से रसमय हैं। उनका विस्तार दोनों ने भिन्न प्रणाली से किया है। यही उनमें मौलिक भेद है। व्यक्तिगत रुचिभेद इस अंतर का कारण है।

---

1. कृष्णगाथा - स्वर्गारोहण - 1000-1010
2. वही - 1030-1040

दोनों का व्यक्तित्व रसमय था । दोनों का लक्ष्य लोगों को वैरागी बनाना न था । दोनों मनोविज्ञान के पारखी थे । वे जानते थे कि हास्य और प्रेम मानव मन के सर्वाधिक व्यापक तथा मौलिक भाव हैं । कला का चरम उद्देश्य मौलिक मनोभावों को जाग्रत करना है । भक्ति तथा वेदान्त चिन्तन के साथ श्रृंगार तथा हास्य को समन्वित करने में ही उनकी प्रतिभा की शक्ति दिखा पड़ती है ।

वात्सल्य एवं श्रृंगार का पोषक हास्य

वात्सल्य एवं श्रृंगार के पोषक के रूप में ही हास्य की अभिव्यंजना की गई है । यद्यपि सूर में श्रृंगार जैसे अन्य रसों का भी समावेश है तथापि वह मुख्यतः वात्सल्य के ही कवि है । वात्सल्य चित्रण में तो सूर ने लगभग एक हज़ार पंक्तियाँ लिखी है । वात्सल्य-प्रसंग वेंकोरी का भी इतनी ही पंक्तियों में व्याप्त है ।

सूर तथा वेंकोरी की आत्मा पर तो कृष्ण का बाल एवं तरुण रूप ही छाया रहा । अतः स्वाभाविक ही है कि उन्होंने केवल श्रृंगार तथा वात्सल्य का ही प्रचुरता से वर्णन किया है । अन्य प्रसंगों की खानापूरी मात्र ही की गई है ।

साधारणतः श्रृंगार वर्णन प्रसंग में कवियों की हास्यवृत्ति खूब रमती है । विषयवासना के शिकार होने वाले कमज़ोर लोगों के या प्रेमी प्रेमिकाओं के वेष, वाणी, व्यवहार, आकृति और प्रकृति का बेतुकापन हास्य का आलम्बन हो जाता है ।

कुछ प्रमुख प्रसंगों का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -

सुभद्राहरण कथा में खाने केलिए बैठे अर्जुन तथा परोसने केलिए खड़ी सुभद्रा के असंतुलित व्यापारों के वर्णन में चेरुशेरी ने हास्य दिखाया है[1]। मारे घबराहट के सुभद्रा जितने चावल लायी थी, सब पत्तल पर डाल दिया। उसकी दृष्टि भिक्षु पर तो अटक गयी थी। उसने सारा घी पत्ते पर उंडेल दिया। केले का अग्रभाग दूर फेंककर उसने छिलके को परोस लिया। क्रम के विरुद्ध तरकारि परोसी गयी। सुभद्रा के मुख से आँख न लौटा सकनेवाले अर्जुन परोसे भात केलिए "बस" नहीं कहा, यह भी नहीं केले के बदले उसके छिलके को चबा चबाकर अनजाने खा लिया था।

इस प्रसंग पर सूर ने हास्य सृष्टि नहीं की है।

कृष्ण का वेणुगान सुनने पर गोपियाँ सुध बुध खोकर बेढंग समान व्यवहार करती हैं। साज श्रृंगार करनेवाली सूर की गोपियाँ यह भी समझ नहीं पातीं कि कौन सी वस्तु कहाँ पहनी जाय। कंठ में धारण करने का हार वह पैरों पर बाँध लेती हैं, वक्ष पर धारण करने का कंचुक कमर पर बाँध लेती है और कमर में पहनने का लहंगा वक्षस्थल पर धारण कर लेती है[2]।

इस अवस्था का चेरुशेरी ने इस प्रकार वर्णन किया है :-
एक गोपी अपनी आँखों में काजल लगा रही थी। एक आँख में ही उसने काजल लगायी। तभी मुरलीनाद सुनाई पड़ा। दूसरी आँख में बिना काजल लगाए ही वह दौड़ पड़ी। और एक कानों में कुण्डल पहन रही थी। एक कान में कुण्डल पहनते ही मुरलीनाद सुनाई पड़ा। दूसरे कान में कुण्डल पहने बिना ही वह दौड़ी[3]।

---

1. कृष्णगाथा - सौभद्र का कथा - 560-580
2. सूरसागर - 1239, 1241, 1243
3. कृष्णगाथा - गोपिकादुख - 100-150

इस प्रसंग में सूर और चेरुश्शेरी दोनों की वर्णन प्रणाली एक ही है। प्रेम जनित विह्वलता स्त्रीयों में ज्यादा होती है। इस रहस्य से वे दोनों ज्ञाता हैं। प्रेम में उन्मत्त होनेवाली स्त्रीयाँ सुधबुध खोकर आचरण करेंगी, इसमें कोई संदेह नहीं। हमारे कवियों ने इस तथ्य को समझकर ही उनकी चेष्टाओं का वर्णन किया है। हास्य इस प्रसंग में स्वयं जुड़ा रहता है। शृंगार अथवा प्रेम यहाँ अलौकिक भाव है, उसके सहचारी के रूप में ही हास्य का संचार होता है। प्रेम की भावना को आघात पहुँचाये बिना ही हास्य का संचार होता है। यही दोनों कवियों की प्रतिभा की परिचायक बात है।

चीरहरण प्रसंग

हास्य का संचार करनेवाला और एक प्रसंग है चीरहरण। सूर कहते हैं - गोपियों के वस्त्र कदम्ब की शाखाओं पर ऐसे लटकते हैं मानों वे उसके फलफूल के फल हों[1]। गोपियों को हाथ जोड़ जल से बाहर आकर वस्त्र स्वीकार करना पड़ता है[2]।

चेरुश्शेरी की गोपियाँ एक हाथ से अपनी नग्नता छिपाती हैं और दूसरे हाथ को ऊपर उठाकर प्रार्थना करती हैं[3]। कृष्णगाथा का रसिक कृष्ण उनसे कहता है "सिर्फ एक हाथ से वंदना करने पर दूसरे हाथ को काट देना न्याय है। अतः दोनों हाथों को मुकुलीकृत करके प्रार्थना करो[4]।" अन्त में विवश होकर पृथकपनी तरह से शरीर को ओढ़कर वे एक क्षण केलिए अंजलिबद्ध खड़ी होती हैं। फिर झट उनके हाथ नग्नता छिपाने में लगते हैं। चेरुश्शेरी के कृष्ण नटखट तो हैं ही। वे कहते हैं - "लो स्वीकार करो अपना वस्त्र।" वे वस्त्र स्वीकार करते

---

1. सूरसागर - 1402
2. वही - 1411
3. कृष्णगाथा - प्रेमप्रलपनीम - 175,76
4. वही - 180-184

उपक्रम करती हैं । कृष्ण हँसते ही रहते हैं । वस्त्र नहीं देते । गोपियाँ पुनः नग्नता छिपाती हैं । कृष्ण फिर कहते हैं - 'लो लो अपना वस्त्र'[1]।"

इस प्रकार के प्रसंगों में चेरुश्शेरी की हास्य कल्पना सूर की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक, रसानुरूप और हृदयग्राही प्रतीत होती है । भागवत् के दशम स्कन्ध के अतिरिक्त ब्रह्म वैवर्त पुराण को भी दोनों ने इस प्रसंग में उपजीव्य बनाया है ।

भ्रमरगीत प्रसंग

सूर ने अपनी हास्य कला की पूर्णता दिखायी है भ्रमरगीत प्रसंग में[2]। भ्रमर के माध्यम से सूर ने व्यंग्य एवं उपालंभ की परंपरा का उद्घाटन किया । सूर की गोपियों के वचनों में विदग्धता और मधुरता भरी है । उनकी वक्रोक्ति में कैसी चपलता, सजीवता और चिड़चिड़ाहट है ? बेचारे उद्धव आये तो थे गोपियों को उपदेश देने[3]। पर उलटे उन्हीं पर तानों उलाहनों की बौछार होने लगी । गोपियाँ उन्हें इतना अवसर भी नहीं देती कि वह अपना उपदेश सुना भी सकें । कहाँ तो वे महाविद्वान और कहाँ भोली भाली ग्रामीण युवतियाँ ।

चेरुश्शेरी ने तो सिर्फ नाम मात्र के लिए इस प्रसंग पर प्रकाश डाला है[4]।

वात्सल्य के पोषक रूप में हास्य

कृष्ण के बाल्यकाल की चेष्टाओं का सूक्ष्म निरीक्षण हास्य चेतना के साथ सूर और चेरुश्शेरी ने किया है । इन चेष्टाओं में अत्यन्त हृदयहारी है माखनचोरी का प्रसंग ।

---

1. कृष्णगाथा - हेमन्त लीला - 212-216
2. सूरसागर - 4029-4777
3. वही - 4040-4044
4. कृष्णगाथा - उद्धवदूत

अपने घर के माखन को छोड़कर दूसरों के यहाँ से माखन चुराकर खाने एवं अपने सखाओं को खिलाने में कृष्ण निरत होते हैं । इन क्रीड़ाओं का वर्णन सूर और चेरुशेरी दोनों ने किया है ।

चोरी के बीच रंगे हाथों पकड़े जाने पर सूर तथा चेरुशेरी का बालकृष्ण चोरचातुर्य प्रकट करते हैं । चोरों के राजा अपने को हरिश्चन्द्र साबित करते हैं । प्रत्युत्पन्नमतित्व के द्वारा रक्षा पाना चाहते हैं । सूर का बालकृष्ण यों कहता है :-

पहला प्रसंग - "मुझे अन्धेरी रात में अपने घर का धोखा हो गया । अचानक इस घर में आ गया । समझा यह अपना घर है । दही के बरतन में चींटी निकालने केलिए ही मैं ने हाथ डाला था । मैं चोरी थोड़े ही करता हूँ[1] ।"
दूसरा प्रसंग - "मैं ने माखन नहीं खाया । सखाओं ने मिलकर मेरे मुख पर माखन लपट दिया[2] ।"
तीसरा प्रसंग - "कहाँ तो माखन का पात्र इतना ऊंचा और और कहाँ मेरे नन्हे नन्हे हाथ[3] ?" चौथा प्रसंग - "मैं ने चोरी नहीं की । पिताजी ने भी कहा है कि मैं अच्छा लड़का हूँ[4] ।"

अपने पक्ष को मज़बूत रखने केलिए नन्द बाबा का प्रमाण पत्र भी हाज़िर करता है ।

अब चेरुशेरी का बाल कृष्ण क्या कहता है, यह भी देखें -
1. कृष्ण अपनी माता से कहते हैं - "मैया, जब तू नहाने गयी तो मैं ने देखना चाहा कि तू ने मक्खन अच्छी तरह रखा है कि नहीं[5] ।"

---

1. सूरसागर - 897
2. सूरसागर - 952
3. वही - 952
4. वही - 958
5. कृष्णगाथा - उलूखल बन्धन - 276-280

2. "तू तो बड़ी मेहनत करके इसे रखती है, इस कोई बिल्ली आकर न खावे, इस विचार से मैं यहाँ आया ।"

माखनचोरी का यह प्रसंग बालकृष्ण के जीवन की एक प्रमुख घटना है । इसीकारण कवियों ने उसका विस्तृत वर्णन किया है । सूर का बालकृष्ण अपना निरपराधित्व स्थापित करने केलिए अनेक तर्कों का पेश करता है । वह कहता है "मैं ने जान बूझकर किसी अन्य घर में प्रवेश नहीं किया । अंधकार के कारण ही भ्रम उसको हो गया । यह भी नहीं वह यह देखना चाहता है कि माता ने माखन ठीक ठीक रखा है या नहीं ।

इस कथन के द्वारा कृष्ण बड़ी बुद्धिमत्ता के द्वारा अपने को निर्दोष ठहराता है । वह माता के हृदय को जीत लेना चाहता है । अपने को निर्दोष स्थापित करने केलिए वह पिता के मतों को भी प्रस्तुत करते हैं । कृष्ण के चातुर्य इससे व्यंजित होते हैं, पर यह हास्य का अच्छा नमूना भी बनता है क्योंकि माता को यह मालूम ही है कि कृष्ण ने यह सब जानबूझकर ही कहा है । जो इस तथ्य को जानता है वह हँसे बिना रह नहीं सकता ।

चेरुशेरी का प्रतिपादन भी इस प्रकरण में हृदयहारी हुआ है । उनके कृष्ण ज्यादा चालाक दिखाई पड़ते हैं । उनका विशेष तर्क है कि चींटियों को निकालने केलिए ही उन्होंने माखन के पात्र में अपना हाथ डाला । एक बच्चे से बच्चे के मुँह से इस प्रकार की बातों को सुनने पर सब लोग हँस पड़ेंगे ।

स्पष्ट है कि माखनचोरी के इस प्रसंग में दोनों कवियों ने बालकों के मनोविज्ञान का परिचय दिया है । उनकी सहज प्रेरणा और सरस वाणी इस प्रसंग को अधिक आकर्षक बनाते हैं । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि माखनचोरी प्रसंग द्वारा हास्य प्रस्तुत करने में सूर और चेरुशेरी दोनों समान रूप से सफल हुए हैं ।

---

1. कृष्णगाथा - उपयुक्त ग्रन्थ - 282-284

अपने बुद्धि कौशल से माता से अधिक मात्रा में मक्खन और दूध लेने में चेरुश्शेरी का कृष्ण प्रवीण है । जब माता ने कृष्ण को मक्खन दिया तब कृष्ण कुछ दूध भी पीना चाहता है । वह आँखें फाड फाडकर निगलना दिखाते हुए कहता है "गले के अन्दर मक्खन अटक गया है । कुछ दूध, कुछ दूध[1] ।" दूध पिलाने के बाद माता की उत्कण्ठा है - "अब कैसा है, अब कैसा है[2] ?" मुस्कुराहट के साथ कान्ह का कथन है "इस बहाने से ही तू दूध देगी[3] ।"

"एक हाथ जब मक्खन पाता है तब दूसरा हाथ मक्खन केलिए रो र है[4] ।" यों कहकर माता से अधिकाधिक मक्खन प्राप्त करना, रखवाली की मजदूरी के रूप में मक्खन मांगना[5], हाथ का मक्खन खा लेने के बाद कौए के छीन लेने का कपट कहकर और भी मक्खन पाना[6] - ये सब चेरुश्शेरी के कृष्ण के विनोद हैं

सूर में ये बातें प्राप्त नहीं ।

शरारतें

कृष्ण की शरारतों के वर्णन द्वारा सूर और चेरुश्शेरी ने अपनी विनो मनोवृत्ति की झलक दी है ।

सूर का कृष्ण एक दिन एक गोपी के घर में घुसकर माखन खाने के ब भाजनों को तोड डाला । फिर सोते बच्चों को कुचकर जगाया और हँसते हँसते भ खड़ा हुआ[7] ।

---

1. कृष्णगाथा - उलूखल बन्धन - 360-370
2. वही - 375-376
3. वही - 379-382
4. वही - 334-345
5. वही - 303-317
6. वही - 341-345
7. सूरसागर - 935

इसी प्रकार पेरियाळवार (पेरियाळ्वार) के कृष्ण ने भी शरारतें कीं । एक दिन एक गोपिका ने अपने पिता को देने के लिए विशेष प्रकार का स्वादिष्ट भोजन बनाया । उसने उसे सींके में सुरक्षित रखा । उसी समय कृष्ण वहाँ पहुँचा और सब रोटियाँ खाने के बाद उसने उस पात्र में गोबर भर दिया । गोपिका भोजन का बर्तन पिता के घर में ले गयी । बेचारा पिता और वहाँ के लोग रोटी समझ गोबर खाने लगे । रोटी समझ गोबर खाने वाले लोगों की स्थिति का सरस वर्णन पेरियाळ्वार ने किया है[1]

इस प्रकार की शरारतें कृष्ण ने और भी की है जिनका वर्णन सूरसागर और कृष्णगाथा में मिलता है । लेकिन उक्त शरारतें हास्य रस की दृष्टि से अत्युत्तम है ।

सूर का कृष्ण माखन खाने के बाद बर्तनों को तोड़ डालता है । यह साधारण सी एक शरारत है । लेकिन सोने वाले बच्चों को जगाने के बाद दौड़ पड़ना उस दृश्य को और भी हास्यमय बना देता है । इससे कहीं अधिक कठोर शरारत है खाने के बर्तन में गोबर भर देना । स्वादिष्ट भोज्य वस्तु समझकर गोबर खाने वाले लोगों का चित्र हृदय में आते ही हँसी छूट पड़ने लगती है इस प्रसंग में सूर की अपेक्षा पेरियाळ्वार हास्योत्पादन की सृष्टि में अधिक सफल प्रतीत होती है ।

सूर की निजी विशेषता

अब ऐसे कुछ प्रसंग लें जहाँ सूर ने वात्सल्य के पोषक के रूप में हास्य सृष्टि की है और पेरियाळ्वार ने जिनकी तरफ दृष्टि भी नहीं डाली । सूर की यशोदा मैया बच्चों को रात में कथा सुनाती है । कथा सुनते सुनते कृष्ण सो जाता है । कथा जारी रहती है । सीताहरण के प्रसंग पर बालकृष्ण सुषुप्ति से

---

1. कृष्णगाथा - उत्तुङ्ग सन्धम - 417-480

जाग उठता है और पुकारता है "अरे मक्खन खाय गो ।" माँ डर जाती है । माता का यह अकारण भय हास्योद्रेक का कारण हो जाता है[1] ।

और एक प्रसंग है छाया दर्शन का । माखन खानेवाला बालकृष्ण एक घड़े के पानी में अपनी छाया देख समझता है कि और एक बालक भी वहाँ मक्खन खा रहा है । ईर्ष्यालु बच्चा पिता से शिकायत करता है । अपनी बात को सही सिद्ध करने केलिए वह पिता को बुला लाकर यह दृश्य दिखाता है । अपने और पिता के प्रतिबिंब को देखकर बालक अपने को तो पहचान नहीं पाता, पिता को अवश्य पहचान लेता है । क्रुद्ध होकर झट उनकी गोद से उतर जाता है । माता के पास जाकर वह शिकायत करता है कि पिता और किसी बच्चे को गोद में लेकर पुचकार रहे हैं[2] ।

यह प्रसंग हास्य की दृष्टि से श्रेष्ठ और सरस है । इससे सूर की अद्भुत कल्पना शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है । पेरियाल्वार में ऐसा कोई प्रसंग नहीं मिलता ।

इस प्रकार चाँद का प्रसंग भी सूर की मौलिक हास्य योजना का उदाहरण है। एक दिन जिद्दी बालकृष्ण रोने लगता है । रुलाई रोकने केलिए माता ने उसे चंदा दिखाया । ऐसा करके यशोदा ने मानो फूस को आग ही लगा दी । मचलने का एक और बहाना बच्चे को मिल गया - "मैया मैं तो चंद खिलौना लैहों[3]" चंचल बालक कहाँ माननेवाला ? वह तो अधिक मचल उठा । वह न तो दूध पियेगा न चोटी गुंथवायेगा और न ही नन्द बाबा का लड़का कहलायेगा[4] ।

1• सूरसागर - 816

2• वही - 774

3• वही - 811

4• वही - 811

यशोदा ने धीरे से कहा - "एक बात सुनो लाल, कहीं बलदाउ न सुन ले, मैं तुम्हें चाँद सी सुन्दर दुल्हिन ला दूँगी[1]।" बात तो कही गयी थी, टालने केलिए, लेकिन बच्चे तो आखिर बच्चे ही होते हैं, उस पर यह तो नटखट बालक भी। "मैं तो अभी ब्याहने जाऊँगा[2]।" नयी ज़िद का प्रादुर्भाव होता है।

यह कृष्ण की शरारत भरी आदत को द्योतित करनेवाला एक मनोहर प्रसंग है। कृष्ण हरदम हठ करनेवाला शिशु है। बेचारी माँ उस हठ को दूर करने में कभी सफल नहीं होती। एक ज़िद को दूर करने केलिए माता जब एक पदार्थ का सहारा लेती है तो कृष्ण उस केलिए ज़िद करने लगता है। लगता है उसके ज़िद का कोई उपचार है ही नहीं। इस प्रकार के प्रसंगों के वर्णन से सूर ने हास्य रस के परिपाक में भी अपने को अति दक्ष स्थापित किया है। इसमें सन्देह नहीं केवल शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में ही नहीं हास्य के क्षेत्र में भी उनकी समानता दूसरा कोई कवि नहीं कर सकता।

कृष्ण की शरारत की कोई सीमा नहीं। वह बड़े भाई पर भी शिकायत करता है। अब उसकी शिकायत है "वह स्वयं काला और बलराम गोरा है। यह क्यों" इस बात को लेकर बलराम कृष्ण को चिढ़ाते हैं। इस पर कृष्ण माँ से शिकायत करता है[3]। कुछ क्षणों के बाद वही कृष्ण सब कुछ भूलकर बड़े भाई के साथ खेलने भी जाता है।

बालों को बढ़ाने की इच्छा से सूर का कृष्ण कच्चा दूध भी पीता है बीच बीच में माँ से वह पूछता है - "मैया कबहीं बढ़ेगी चोटी[4]?"

---

1. सूरसागर - 811
2. वही - 811
3. वही - 833
4. वही - 793

बाल के न बढ़ने पर वह माता से शिकायत भी करता है - "किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी ।[1]"

सूर के बालकृष्ण को "हाऊ का डर" है । कई असुरों को, पूतना को यहाँ तक कि कंस को भी मारने की क्षमता रखने वाले के लिए यह भय विचित्र लगता है और हास्यात्मक भी । इस प्रकार की हास्य कल्पनायें सूर में और भी वर्तमान है । पर सबका विवरण संभव नहीं । ऐसी हास्य कल्पनाओं की सृष्टि सिर्फ सूर ने की है, चेरुश्शेरी ने नहीं । यों हम कह सकते हैं कि वात्सल्य के पोषक रूप में हास्य की सृष्टि करने में सूर ने ही चेरुश्शेरी से बढ़कर कुशलता दिखाई है ।

हास्य स्वतंत्र रूप में

श्रृंगार और वात्सल्य के सहायक रूप में ही नहीं, स्वतंत्र रूप में भी सूर और चेरुश्शेरी दोनों ने हास्य की अभिव्यक्ति की है । ऐसे संदर्भों में दोनों ने प्रायः समान आलंबनों को ग्रहण किया है ।

देवों पर व्यंग्य

विनोदी वृत्ति के होने के कारण वे अपने आराध्यों को भी हास्य पात्र बनाने में नहीं हिचकते । भगवान का उपालंभ करना सूर की एक सामान्य प्रवृत्ति है । लेकिन यह चेरुश्शेरी में उतनी प्रकट नहीं । सूर अपनी भूल के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं, कभी भगवान को चुनौती देते हैं तो कभी उनका उपालंभ करते हैं । प्रभु से सूर की छेड़छाड़ प्रसिद्ध ही है । विनय के पदों में सूर

---

1. सूरसागर - 793

बड़ी चतुराई से आत्म निवेदन करते हैं । प्रभु से होड़ करने का दुस्साहस वे इसलिए करते हैं कि उनके आराध्य ने अनेक पतितों का उद्धार किया पर उनका नहीं । भगवान पतित पावन हैं और सूर के समान पतित दुनिया में कोई नहीं है इसलिए उनके उद्धार के बिना भगवान का पतित पावन नाम सार्थक नहीं होगा[1] । इसमें कवि के बनावटी क्रोध के अच्छे नमूने मिलते हैं । अपने आराध्य के बल पर उसीको चुनौती देना सूर की हास्यात्मकता की निजी विशेषता है ।

चेरुश्शेरी में भी स्वतन्त्र हास्य के अनेक प्रसंग हैं जिनमें से हम यहाँ दो एक प्रमुख प्रसंगों का विवेचन करेंगे ।

नारद के उपदेशानुसार वृकासुर शिव की तपस्या करके यह वर प्राप्त करते हैं कि वह जिस किसी के सिर पर हाथ रखेगा वह तुरन्त भस्म हो जायेगा । असुर ने वर के प्रभाव की परीक्षा शिवजी पर ही करने का निश्चय किया । शिव का वर व्यर्थ होने वाला नहीं । इसलिए स्वयं शिव आत्मरक्षा केलिए भागने लगे इस विचित्र स्थिति का वर्णन चेरुश्शेरी ने अत्यन्त हास्य भरे ढंग से किया है "तेज़ी से दौड़ते समय नीचे खिसक गिरनेवाले शार्दूल चर्म को एक हाथ से पकड़े शिव भागने लगे । गले के साँप एक एक करके गिरने लगे । पृथ्वी पर गिरे बालचन्द्र को लेते हुए पार्वती को सान्त्वना देते हुए भगवान शिव भाग रहे थे[2] ।

चेरुश्शेरी का जरासन्ध भगवान कृष्ण पर भी व्यंग्य कसता है । कृष्ण जरासन्ध युद्ध का प्रसंग है । घमासान युद्ध के बीच कृष्ण की सुन्दरता को देखकर जरासन्ध कहने लगता है कि "मैं बच्चे से युद्ध नहीं करना चाहता । उसको लेकर पुचकारना चाहता हूँ ।" लड़ाई के बीच में भी पुचकारने की बात कहकर कवि ने हँसी का अच्छा अवसर प्रदान किया है[3] ।

---

1. सूरसागर - 130
2. कृष्णगाथा - वृकासुरवधा - 72-112
3. कृष्णगाथा - राजसूयं - 103-112

अलंकार चमन पर आधारित हास्य तो सूर ने प्रस्तुत किया है। सूर के उद्धव का अलंकार गमन विरहातुर गोपियों के सामने होता है। उद्धव अपने ज्ञान पर गर्विष्ट हैं। गोपिकाओं की प्रेमलक्षणा भक्ति के सम्बन्ध में उनके मन में अवज्ञा का भाव है। परन्तु उनका ज्ञान गर्व उन निरीह गोपिकाओं की प्रभु भक्ति के सामने चकना चूर होता है। इस दृश्य का जो अंकन सूर ने किया है वह हमारे हृदय को हर्ष प्रदान करता है और साथ ही साथ हंसने का अवसर भी देता है[1]।

देखोटी में यह प्रकरण प्राप्त नहीं। हास्य के जितने प्रकार हैं सूर साहित्य में सब मिलते हैं। व्यंग्य का प्रयोग देखिए -

"ऊधो धनि तुम्हारो व्यौहार
धनि वै ठाकुर धनि तुम सेवक, धनि तुम बरतन हार[2]।"

निर्मल हास्य (pure humour) की जितनी शुद्ध व्यंजना सूर में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऊधो को देखकर गोपियां कहती हैं -

"आये जोग सिखावन पांडे।
परमारथी पुरानन लादे ज्यों बनजोर टांडे[3]।"

जब वे अपनी निर्गुण ज्ञान गाथा बघारते हैं तो गोपियां उन्हें बनाना प्रारंभ कर देती हैं -

"निर्गुन कौन देस को बासी
मधुकर कहु समझाय सौंह दे बूझति सांच न हांसी[4]।"

---

1. सूरसागर - भ्रमरगीत प्रसंग - 4030-4777
2. वही - 4529
3. वही - 4224
4. वही - 4251

सूर की नायिकाओं के समान चेरुशेरी की नायिकायें भी वचन विदग्धा है। रुक्मिणि सखियों से अपना अनुराग रहस्य छिपा रखती है। उसका शरीर तो दुबला हो गया है। इसका कारण पूछनेवाली सखियों से रुक्मि कहती है कि उसे बुखार है[1]। रुक्मिणी के तोते ने अपनी मालकिन के एकान्त में अपनाने किए गए प्रलापों को बार बार सुनकर उसे कंठस्थ किया था। तोता इस अवसर पर गाने लगा[2] - "हे ईश्वर! मैं तुम से प्रार्थना करती हूं। मुझे छोड़ना मत। देवकी नन्दन के शरीर से मुझे भी मिलाना[3]।" नासमझ का बहाना करती हुई सखियां हंसती हंसती बताती है कि बेचारी शारिका को कृष्ण से प्रेम लग गया है[4]। "कृष्ण" शब्द सुनने मात्र से रुक्मिणी पुलकित हो उठी[5]। चतुर सखियां रुक्मिणी से पूछती है "बुखार के कारण तेरा शरीर पुलकित हो उठा है क्या? तू शारिका से रुष्ट क्यों? इन बातों से भी कोप दिखाती है क्या?[6]"

यहां रुक्मिणी की सखियां भी वचन विदग्धा हैं।
सूर मूलतः भक्त कवि हैं। चेरुशेरी केवल भक्त नहीं, वे तत्वतः कवि भी है। ब्रज, वहां की सुन्दरियां, कृष्ण की क्रीडायें - इन सब की ओर चेरुशेरी एक कवि के रूप में ही देखते हैं, भक्त के रूप में नहीं। चेरुशेरी के भक्त ने उनके कवि के स हार मान ली है[7]।

संक्षेप में हमारा मूल्यांकन यों है - सूर और चेरुशेरी की रचनायें सूखी गाथायें नहीं, सरस काव्य है। सहज विनोद और सहृदयता को दोनों ने

---

1. कृष्णगाथा - रुक्मिणी स्वयंवरम् - 322-326
2. वही - 333-335
3. वही - 336-338
4. वही - 343-347
5. वही - 360-364
6. वही - 364-370
7. डॉ॰ चेलनाट अच्युत मेनन - प्रदक्षिणं - पृ॰63

एकदम छोड़ा नहीं । दोनों ने अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार अपनी अपनी रीतियों में हास्य सृष्टि की है, व्यंग्य विनोद प्रस्तुत किए हैं, और वचन विदग्धता भी पेश की है । सूर का हास्य आवृत है, प्रकट नहीं । बेढ़ोरी का हास्य अनावृत है, प्रकट है ।

सूर और बेढ़ोरी की हास्य प्रवृत्तियों की विवेचना के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह आरोप "यह बात अपनी पड़ती है कि शिष्ट और परिष्कृत हास्य का जैसा सुन्दर विकास पाश्चात्य साहित्य में हुआ है, वैसे अपने यहाँ अभी दिखाई नहीं दे रहा है।[1] - ठीक नहीं दिखाई पड़ता ।

...

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.474

वात्सल्य चित्रण

वात्सल्य को रस मानना चाहिए या भाव इस विषय पर साहित्याचार्यों ने पर्याप्त चर्चा की है। हमारे आलोच्य कवियों ने वात्सल्य का विशद वर्णन किया है। सूर की अपिरत्य शक्ति का पूर्ण प्रकर्ष उनके वात्सल्य चित्रण में ही स्पष्ट होता है - बहुत से साहित्य मर्मज्ञ यही कहा करते हैं[1]। वात्सल्य रस का अपने में क्या स्थान है ? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढना इस प्रसंग में इसलिए अनिवार्य हो जाता है कि महाकवि सूरदास का महत्व बहुधा उनके वात्सल्य वर्णन में ही निहित है।

क्या वात्सल्य स्वतंत्र रस है ?

भरत मुनि मूलतः रसों की संख्या चार ही मानते हैं - श्रृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स[2]। उनसे क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की भी उत्पत्ति मानी गई है[3]। नाट्य शास्त्र में इन आठ रसों का विवरण है[4]। वात्सल्य पर भरत मुनि ने पृथक विचार नहीं किया है।

उद्भट आठ के स्थान पर रसों की संख्या नौ मानते हैं[5]। उनके नवरसों में वात्सल्य की गणना नहीं है।

---

1. अ. रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास - पृ. 167
   आ. श्रीद्वारिका दास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूर निर्णय - पृ. 283
2. तेषामुत्पत्तिहेतवश्चत्वारो रसाः। तद्यथा शृङ्गारो रौद्रो वीरो, बीभत्स इति। नाट्यशास्त्र - 6-39
   भरत का नाट्यशास्त्र - रघुवंश-प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. शृङ्गाराद्धि भवेद् हास्यो रौद्रात्तु करुणो रसः।
   वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः॥ नाट्यशास्त्र-6-39
4. शृंगार हास्यकरुणारौद्र वीर भयानकाः।
   बीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥
   नाट्यशास्त्र - 6-25
5. उद्भट - काव्यालंकार सार संग्रह - 413-41

भामह[1], दण्डी[2], रुद्रट[3], आनन्दवर्धन[4], अभिनव गुप्त[5], जैसे आचार्य वात्सल्य को केवल भाव मानने के पक्ष में हैं ।

पण्डितराज जगन्नाथ वात्सल्य के रस तत्व पर विश्वास रखते हैं, पर इस कारण उसे भाव मात्र मानते हैं कि भरतादि आचार्यों की रसरूप में स्वीकृति उसे प्राप्त नहीं है[6] ।

पर बहुत से आचार्य वात्सल्य को स्वतंत्र रस मानने के पक्ष में हैं । राजा भोजदेव[7] रसों की संख्या दस मानते हैं और दसरसों में वात्सल्य को भी स्थान देते हैं -

शृंगार वीरकरुणाद्भुत रौद्र हास्य बीभत्स वत्सल भयानक शान्तना
आम्नासिषुर्दशरसान सुधियो वयन्तु शृंगारमेवरसनाद्रसमामनामः[8] ।

बारहवीं शती के आलंकारिक वल्लाराज[9] वात्सल्य को स्वतंत्र रस मानते थे । रस रत्नप्रदीपिका में वे लिखते हैं -

वत्सलं तु रसं प्राहुरन्ये सा रतिरेव हि ।
यथा अल्पात्मिकाने भावोय: पित्रोरुपजायते ।
सा रति: कथिता सम्भिर्वात्सल्यं तत्प्रकीर्तितम्[10] ।।

---

1. भामह - काव्यालंकार - तृतीय परिच्छेद - 5,6 वि०1685 चौखम्बा सं० सं
2. काव्यादर्श-2 - 275, 276, 281
3. काव्यालंकार - 12-1
4. ध्वन्यालोक - द्वितीयोद्योत - 6
5. ध्वन्यालोक - पृष्ट 191 - व्याख्याता - पं० बट्टाभिराम शास्त्री सं०1997
6. पं० जगन्नाथ - रसगंगाधर - रसप्रकरण - पृ०129,276 चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, 1955
7. शासनकाल 1028-1050 - डॉ० सांकरन सम् आस्पेक्ट्स आफ रसास् - पृ०13
8. भोजराज - शृंगार प्रकाश - प्रथम प्रकाश - 6
9. रसरत्न प्रदीपिका - भूमिका - पृ०43,44
10. रसरत्न प्रदीपिका - षष्ठ परिच्छेद - पृ०43, संपादक-आर०एन०दण्डेकर ।

विश्वनाथ कविराज [14 वीं शती] वात्सल्य को दसवाँ रस स्वीकार करते हैं। वे भी पुत्रादि आलंबन से उत्पन्न स्नेह को वात्सल्य ही मानने के पक्ष में हैं।

"स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालंबनं मतम्॥[1]

विश्वनाथ का विचार है कि स्वयं मुनीन्द्र [भरत] वात्सल्य को स्वीकार करते थे।[2]

साहित्य दर्पण के व्याख्याकार हरिदास शर्मा इस प्रसंग में लिखते हैं -

"मुनीन्द्रस्य प्राचीनतमालंकारिकस्य भरतस्य
सम्मतो वत्सलो रसो निरूप्यत इति शेषः[3]।"

स्पष्ट है कि संस्कृत के अनेक आचार्य वात्सल्य रस की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हैं।

हिन्दी में केवल आधुनिक काल में ही रस की वैज्ञानिक चर्चा शुरू होती है। पं. शुकदेव बिहारी मिश्र,[4] पं. प्रतापनारायण मिश्र,[5] कन्हैयालाल पोद्दार[6] जैसे हिन्दी के आधुनिक विद्वान तथा मलयालम के पी. कृष्णन नायर[7] जैसे काव्यशास्त्रकार वात्सल्य को केवल भाव ही मानते हैं।

---

1. साहित्य दर्पण [व्याख्याता शालग्राम शास्त्री] - III - 251
2. "अथ मुनीन्द्र संमतो वात्सल्य" - साहित्य दर्पण - III - 151
3. साहित्य दर्पण [व्याख्याकार - हरिदास शर्मा - पृ.211
4. साहित्य पारिजात " पृ.345,349 [प्र.सं.] सं.1997
5. साहित्य पारिजात - पृ.345,349
6. काव्य कल्पद्रुम - प्रथम भाग - रसमंजरी - चतुर्थसंस्करण का तृतीय पुष्प [चतुर्थ सं सं.1998 - पृ.234
7. काव्य जीविका वृत्ति - पुस्तक - 3, रसभाव प्रकरण - पृ.218,263

डॉ॰ नगेन्द्र के मत में वात्सल्य शृंगार में अंतर्भुक्त है । "नर नारी का प्रेम शृंगार, मित्र के प्रति प्रेम सख्य, सन्तान या सन्तानतुल्य व्यक्तियों के प्रति प्रेम वात्सल्य, इष्ट के प्रति प्रेम भक्ति, प्रकृति के प्रति प्रेम प्रकृति प्रेम और देश के प्रति प्रेम देश भक्ति बन जाता है । उपर्युक्त रसों के स्वतंत्र स्थायी भाव नहीं, वरन् सभी का स्थायी भाव प्रेम है जो आलंबन के भेद से विभिन्न रूप धारण कर लेता है[1] ।"

पर आधुनिक हिन्दी के अधिकतर आचार्य वात्सल्य को स्वतंत्र रस मानने के पक्ष में हैं । रामचन्द्र शुक्ल,[2] अयोध्यासिंह उपाध्याय,[3] डॉ॰ गुलाबराय,[4] पं॰रामदहिन मिश्र,[5] डॉ॰ आनन्द प्रकाश दीक्षित,[6] जैसे विद्वान वात्सल्य को स्वतंत्र रस मानते हैं ।

इस प्रसंग में डॉ॰ राघवन का विचार विशेष उल्लेख योग्य है । रसों की संख्या पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कोई भी भाव विभावादि से परिपुष्ट होने पर रस दशा तक पहुँच सकता है । भक्ति और वात्सल्य अलग अलग रस है । उदाहरणार्थ राम के विरह से तड़प तड़प कर प्राण त्यागनेवाले दशरथ की मृत्यु यह व्यक्त करने में काफी है कि वात्सल्य एक उदात्त और स्थायी भाव है जिसकी पुष्टि रस दशा तक की जा सकती है[7] ।"

---

1. डॉ॰ नगेन्द्र - रस सिद्धांत - पृ॰268 [प्र॰सं॰] - 1964 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
2. डॉ॰एन॰रामन नायर कृत हिन्दी मलयालम भक्तिकाव्य में वात्सल्य रस-पृ॰89
3. रसकलश - पृ॰212,213 [द्वितीय सं॰] सं॰2002 में उद्धृत
4. सिद्धान्त और अध्ययन - पृ॰122 [सन् 1951 का संस्करण]
5. काव्य दर्पण - पृ॰155,156
6. रस सिद्धान्त - स्वरूप विश्लेषण सातवाँ अध्याय - पृ॰295 [राजकमल प्रकाशन दिल्ली [प्र॰सं॰] - 1960
7. डॉ॰ राघवन - दि नम्बर ऑफ रसास - पृ॰113 दि अड्यार लाइब्रेरी 1940

वात्सल्य को श्रृंगार रस के अन्तर्गत माननेवाले यह भूल जाते हैं कि कान्ता विषयक रति ही श्रृंगार में आ जाती है। श्रृंगार की व्युत्पत्ति [श्रृंगार मे/अ मन्मथोद्भेदतदागमन हेतुक:] में मन्मथ शब्द जुड़ा हुआ है। इसलिए वात्सल्य को श्रृंगार के अंतर्गत मानना अनुचित है।

कुछ लोगों के अनुसार वात्सल्य केवल भाव मात्र है। वह रसत्व को प्राप्त नहीं कर सकता। पर यह विचार भी ठीक नहीं है। वात्सल्य स्थायी, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी से पुष्ट होता है, और रसत्व की दशा में प्रवेश करता है। श्रृंगार में जितने विभाव और अनुभाव हैं उनसे वात्सल्य के विभाव और अनुभाव संख्या में कम नहीं, शायद स्नेहस्राव आदि सात्विक की इसमें अधिकता है। अत: वात्सल्य को स्वतंत्र रस मानना ही उचित है।

वात्सल्य को कुछ लोग केवल व्यभिचारी भाव मानते हैं। व्यभिचारी भाव स्थायी में उपस्थित होकर उसी में विलीन होते हैं। वात्सल्य की भी यही हालत है[1]। लेकिन यह अनुभव सिद्ध बात है कि वात्सल्य एक स्थिर भाव है। इसकी उपस्थिति वासना रूप में सभी मानवों में है। अत: उसको व्यभिचारी मानना ठीक नहीं।

यह भी स्मर्तव्य है कि सारे रस अपुष्ट रहने पर व्यभिचारी ही रह जाते हैं। उनका स्थायित्व तभी रहता है जब वे विभावानुभवों से युक्त व्यभिचारी से उन्मेष प्राप्त करते हैं। अभिनव गुप्त के मतानुसार व्यभिचारी भी अन्य भावों की सहायता से स्थायित्व एवं रसत्व को प्राप्त कर सकते हैं[2]।

---

1. काव्य प्रदीप - आनन्दाश्रम संस्करण - पृ.126
2. व्यभिचारिणामपि च व्यभिचारिणो भवन्ति तथा निर्वेदस्य चिन्ता, अन्यस्य निर्वेद इत्यादि निरूपयिष्यते - अभिनव गुप्त - ध्वन्यालोक - व्याख्याता - पं. पट्टाभिराम शास्त्री [सं.1997] अध्याय - 7, पृ.346

कुछ लोगों का कथन है कि वात्सल्य रस की काव्य सामग्री अन्य रसों की अपेक्षा सीमित है । वात्सल्य प्रधान काव्य भी नहीं लिखा गया है । पर वात्सल्य की काव्य सामग्री अन्य रसों की काव्य सामग्री की अपेक्षा सीमित नहीं है । कालिदास आदि नाटककारों में वात्सल्य की अद्भुत छटा देखी जा सकती है । [कण्व का शकुन्तला से वात्सल्य आदि] श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध में वात्सल्य की अपूर्व पुष्टि हुई है । तुलसी और सूर में वात्सल्यके दिव्य लोक का अनावरण ही हुआ है । मलयालम में चेरुश्शेरी, पूंतानम्, एषुत्तच्छन जैसे कवियों में वात्सल्य का चरमोत्कर्ष दृष्टिगत होता है ।

श्रृंगार की तरह वात्सल्य के भी वियोग और संयोग दोनों पक्ष वर्तमान हैं । इसलिए यह आक्षेप भी निर्मूल है । तब यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि वात्सल्य के रसत्व पर किसी तरह का आक्षेप नहीं हो सकता । यह निष्कर्ष निकालने में कोई आपत्ति नहीं होगी कि वात्सल्य स्वतंत्र रस है ।

सूर सागर में वात्सल्य

सूर का बाल वर्णन गहनता और व्यापकता दोनों दृष्टियों से अनुपम है । दर्जनों पदों में सूर के बालकृष्ण की झांकी उपलब्ध होती है । दर्जनों पदों में उनकी तुतली बोली सुनाई पड़ती है । बाल मनोविज्ञान के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों के भी ज्ञाता थे सूर । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं - वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आंखों से किया उतना किसी अन्य कवि ने नहीं । इन क्षेत्रों का कोना कोना वे झांक आये । उक्त दोनों के प्रवर्तक रति भाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके उतना और कोई नहीं ।[1]

---

1. रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास - पृ.167

सूरदास के काव्य में वात्सल्य का जैसा स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी कथन हुआ है, वैसा किसी भी भाषा के कवि ने आज तक नहीं किया[1]। सूर का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वथा अनुपम एवं अद्वितीय माना जाता है। इसी कारण रामचन्द्र शुक्ल ने "आगे होने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती है" कहकर सूर की प्रशंसा की

डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने "बालकृष्ण के शैशव में, श्रीकृष्ण के मचलने में, माँ यशोदा के दुलार में - हम चिरतव्यापी माता पुत्र प्रेम देखते हैं" कहकर सूर के वात्सल्य वर्णन की भूरि भूरि प्रशंसा की है[3]।

डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - "यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है[4]।"

वल्लभ संप्रदाय में वात्सल्यासक्ति और दाम्पत्यासक्ति का विशेष महत्त्व है। इन दोनों की अभिव्यक्ति सूर काव्य में विशेष दक्षता के साथ की गई है।

सूर के काव्य में वात्सल्य के दोनों (संयोग और वियोग) पक्षों का सम्यक् चित्रण मिलता है।

यशोदा बालकृष्ण को पालने में झुला रही है। अपने लाडले के लिए वह नींद को आमन्त्रित करती है। वह नींद से पूछती है - हे नींद तू क्यों मेरे लाल के पास नहीं आती ?

---

1. द्वारिका दास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूर निर्णय - पृ॰274
2. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰165
3. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰537
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी - सूरसाहित्य - पृ॰129

मेरे लला को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावे ।
तू काहें नहिं बेगहि आवे तोको कान्ह बुलावे ।
कबहु पलक हरि मूंदि लेत हैं, कबहु अधर फरकावे[1] ।

माता का यह वचन सुनकर हरि कभी कभी पलक मूंद लेता है तो कभी अधर फड़काता है ।

सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावे ।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुर गावे ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नन्द भामिनि पावे[2] ।।

यशोदा बालकृष्ण को स्तनपान कराकर सुलाती है -

गोद लिए हरि कों नंदरानी, अस्तन पान करावति है
बार बार रोहिनि को कहि कहि, पलिका अजिर मंगावति है ।
....
कहिर लेअने गह मोहन को मुखा उठि सोवावति है ।
सूरदास प्रभु सोए कन्हैया, हलरावति मलरावति है[3] ।

सूर की यशोदा मातृहृदय की अनेक अभिलाषाओं का उद्घाटन करती है । वे चाहती हैं कि कृष्ण जल्दी बड़े हो जाएं, मधुर वचन बोलें, "मैया" कहकर पुकारें आदि[4] । माता की अभिलाषा पूर्ण होने लगती है । कन्हैया "घुटुरुनि" चलने लगते है । उनके उस रूप सौन्दर्य का क्या वर्णन करें । सूर के स्वामी के दर्शन से हम धन्य हो जाते हैं -

---

1. सूरसागर - 10-661
2. वही - 10-661
3. वही - 10-668-669
4. वही - 10-691,93,94

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए ।
चारु कपोल, लोल, लोचन, गोरोचन तिलक दिए ।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहि पिए ।
कठुला-कंठ वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए ।
धन्य सूर एकौ पल इहि सुख, का सत कल्प जिए[1] ।

बालकों के स्पर्धा भाव का और अपने समवयस्कों से चिढ़ाये जाने पर आत्म गौरव की रक्षा के हेतु बड़ों से शिकायत करने के भाव का सूरदास ने चित्रण किया है । कृष्ण कभी कभी अपनी माता से अपनी चोटी न बढ़ने के कारण झगड़ा करते हुए दिखाई पड़ते हैं । कभी कभी कहते हैं - "मैया मुझे बड़ा कर दो ।" -

1. मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।
किती बार मोहि दूध पियत भई यह आजहुं है छोटी[2] ।

2. मैया, मोहि बड़ो करि लै री
दूध-दही-घृत-माखन-मेवा, जो मांगौं सो दे री[3] ।

कभी कभी कृष्ण माता से बलराम की शिकायत करते हैं । यह पद प्रसिद्ध ही है -

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।
मो सौं कहत मोल को लीन्हो, तू जसुमति कब जायो ।
कहा करौं इहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात ।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात ।

---

1. सूरसागर - 10-717
2. वही - 10-793
3. वही - 10-794

चुटकी दे-दे ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात ।
तू मोही कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै[2] ।।

कृष्णगाथा में वात्सल्य

कृष्णगाथा में वात्सल्य की बहुत सुन्दर व्यंजना हुई है । चेरुश्शेरी इस क्षेत्र का कोना कोना झांक आये हैं । वस्तुत: कृष्णगाथाकार को मातृ हृदय प्राप्त था । माता का हृदय ही वात्सल्य की पूरी झांकी दे सकता है । जिसे मातृ हृदय प्राप्त नहीं, वह वात्सल्य को समझ ही न सकेगा ।
कवि चेरुश्शेरी कहते हैं -

कृष्ण और बलराम के मुख में छोटे छोटे दांत प्रकट होने लगे हैं । दांतों का निकलना पहले पहल माताओं के स्तनों ने ही समझ लिया -

व्रजवासियों के लाल राम और श्याम सबको आनन्द देते हुए बढ़े होने लगे । उनके मनोहर लाल लाल अधरों के बीच दांत अंकुरित होने लगे, मानों पल्लवित माधवी लता पर कलियाँ कोमल अंकुरित हुई हों । दूध पिलाने केलिए जब मातायें उन्हें सन्तोष बुलाती हैं तब दोनों बालक हँसी की मधुर धारा बहाने लगते हैं । उनके छोटे छोटे दांत दिखाई पड़ते हैं । माताओं के स्तनों ने दांतों का उगना महसूस कर लिया है । बच्चों के दन्तांकुर देखकर माताएं आनंद का अनुभव करती हैं । वे उन्हें चूमती हैं पर स्तनाग्र पर दांतों से काटने के कारण मुंह अलग नहीं किये जा सकते । देखनेवाली गोपियाँ अपने नेत्रों को उस दृश्य से हटा नहीं पातीं । इस प्रकार कृष्ण-बलराम सबका हृदय हर्षित करने लगे हैं[1] ।

---

1. कृष्णगाथा - उलूखल बन्धन - 155-170

2. सूरसागर - 10-794

इस प्रसंग में वात्सल्य का पूरा परिपाक हुआ है । यहाँ स्थायी भाव पुत्र रति है । कृष्ण और बलराम मुख्य आलंबन है । यशोदा आदि मातायें आश्रय है । बालकों के दांत उद्दीपन हैं । माताओं का आनन्दित होना अनुभाव है । हर्ष संचारी भाव है । इस प्रकार स्थायी भाव पुत्र रति विभाव अनुभाव और संचारियों के संयोग से वात्सल्य में परिणत होती है ।

नन्हे कान्ह की क्रीडाओं का सूर और येसोंरी दोनों ने अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है । गोपांगनायें उनकी केलि देखकर इतनी मुग्ध हो जाती हैं कि वे घर के काम काज सब बिसरा कर देती हैं । कृष्ण की आयु जैसे जैसे बढ़ती जाती है, वैसे वैसे नवनीत के प्रति उनका प्रेम बढ़ता जाता है । वे अपने सखाओं के साथ ब्रजग्राम में विहार करने लगते हैं । माता यशोदा घर में यह सोचती रहती है कि "मेरे लाल रुनक झुनक पैंजनी बजाते हुए कब आएगा, कब मेरे मन को मोद पहुँचाएगा और कब दूध पिएगा । परन्तु "माखन चोर" तो निकले हैं" दूसरे के घरों पर धावा बोलने । दूसरों के घरों में माखन चुराने के बाद वे चुपचाप अपने घर पहुँचते हैं मानों उन्हें कुछ ज्ञात ही न था ।

सूरदास और येसोंरी दोनों बालमनोविज्ञान के पारखी हैं । बालकों की स्वाभाविक चेष्टाओं का दोनों ने बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है । जैसे खेलना, खाना, घुटनों के बल चलना, रोना, हँसना, मधुर बोली बोलना आदि बाल सुलभ चेष्टाओं का सूर और येसोंरी दोनों ने स्पष्ट वर्णन किया है ।

वियोग वात्सल्य

सूर तथा येसोंरी के संयोग वात्सल्य का उदाहरण हमने ऊपर प्रस्तुत किया है । अब वियोग वात्सल्य का चित्र उपस्थित किया जायेगा । दोनों ने अनेक स्थानों पर विविध प्रकरणों के माध्यम से वियोग वात्सल्य का चित्र प्रस्तुत किया है । सब का प्रस्तुतीकरण यहाँ संभव नहीं है ।

विरह कातर माता की मनोदशा देवकी की अपेक्षा सूर ने अधिक मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त की है। अक्रूर का आगमन प्रसंग इसका उज्ज्वल उदाहरण है। श्याम बलराम को मथुरा ले जाने के लिए अक्रूर ब्रज आता है। समाचार पाकर माता का हृदय विकल हो जाता है। अपने अबोध नन्हें बच्चों की सुकुमारता और मथुरा के असुर समूह की कठोरता का स्मरण कर वह कह उठती है -

[मेरे] कमल नैन प्राननि तैं प्यारे।
इन्हैं कहा मधुपुरि पठाऊँ, राम कृष्ण दोउ जन बारे।
जसुदा कहै सुनौ सुफलक सुत मैं इन बहुत दुखनि सौं पारे।
ये कहा जानैं राज सभा कौं, ये गुरुजन बिप्रहुँ न जुहारे।।
मथुरा असुर समूह बसत है, कर कृपान, जोधा हत्यारे।
सूरदास ये लरिका दोऊ, इन कब देखे मल्ल अखारे[1]।।

वे अक्रूर को क्रूर कहने में संकोच नहीं करतीं[2]। वे ऐसे हितैषी को ढूंढती है जो कृष्ण को मथुरा जाने से रोक सकें[3]।

कृष्ण और बलराम रथ पर चढ़कर जाने लगते हैं। यशोदा की पीड़ा पराकाष्ठा पर पहुँचती है। हरि का नाम लेकर आँसू बहाती हुई वह भूमि पर लोट जाती है -

जबहीं रथ अक्रूर चढ़े।
तब रसना हरि नाम भाषि कै, लोचन नीर बाढ़े।
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ तरु ज्यौं धरनि लुटाइ[4]।।

---

1. सूरसागर - 3586
2. वही - 3593
3. वही - 3591
4. वही - 3610

पुत्र वियोग जन्य वेदना के कारण वह अपने पति को भी कटु वचन सुनाती है[1] । भक्त कवि की तन्मयता मातृहृदय की सरलता का रूप धारण करती है ।

ऐसे प्रकरणों की सूरसागर में भरमार है ।

कृष्णगाथा में वियोग वात्सल्य

वियोग वात्सल्य के हृदयद्रावक दृश्य कृष्णगाथा में कम नहीं है । मातृ हृदय की सर्वाधिक मनोरम व्यंजना कृष्ण के अक्रूर के साथ मथुरा चले जाने पर होती है । अक्रूर के व्रज पहुँचते ही सब ग्वाल बाल एकत्र हो जाते हैं । अक्रूर के आगमन का उद्देश्य सुनते ही माता यशोदा कातर हो उठती है । गोपिकायें कहने लगती हैं -

'कृष्ण को ले जाने के लिए ही
ये कल्याणहीन पापी आये हैं ।
हम क्या कर सकती हैं सखियो !
अब भगवान स्वयं हमारे विरुद्ध हो जाते हैं ।
सब लोग क्यों इन्हें अक्रूर कहते हैं ?
यह अक्रूर नहीं बिल्कुल क्रूर है[2] ।'

चन्द्रमा की ओर देखते हुए चकोरी जैसे कभी तृप्त नहीं होती उसी प्रकार अपने पुत्रों के मुख का दर्शन करके यशोदा कभी तृप्त नहीं होती । निरंतर देखते रहने की इच्छा बनी रहती है । एक क्षण का वियोग भी उन्हें सह्य नहीं है । वह विलाप करती है -

---

1. सूरसागर - 3748
2. कृष्णगाथा - अक्रूरागमनं - 151-156 का भावानुवाद

"कृष्ण हमारे प्राण हैं । उन्हें ले जाने वाले अक्रूर हमारे लिए काल समान हैं[1] ।"

कृष्ण की प्रिय वस्तुओं को देखकर यशोदा ही नहीं अन्य गोपियाँ भी करुण क्रन्दन करती हैं[2] । उन्हें वे प्रेम से लेती हैं[3] । जिस रास्ते से कृष्ण अक्रूर के साथ गया था उसी का वे पीछा करती हैं[4] ।

वियोग वात्सल्य के वर्णन में कृष्णगाथाकार को पूरी सफलता मिली है - इसमें कोई सन्देह नहीं ।

निष्कर्ष

दोनों काव्यों में वात्सल्य वर्णन का स्थान अद्वितीय है । इस में कोई मत भेद नहीं । जहाँ तक हिन्दी की बात है वरिष्ठ समीक्षकों ने ही नहीं आम जनता ने भी घोषित किया है कि कवि सूर वात्सल्य के सम्राट हैं । मलयालम में चेरुश्शेरी के सम्बन्ध में भी यही बात है । सब समालोचक यही स्वीकार करते हैं कि कृष्णगाथा में वात्सल्य के जैसे सुन्दर और रोचक चित्र हैं वैसे मलयालम के अन्य काव्यों में नहीं ।

सूरदास अष्टछाप के कवि थे । वे वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित भी थे अतः उनके काव्य में सांप्रदायिक पद्धति पर रचित बालकृष्ण की नित्य लीला, वर्षोत्सव आदि के पद भी मिलते हैं । चेरुश्शेरी संप्रदाय मुक्त थे । इसलिए संप्रदायबद्ध बाल वर्णन उनमें नहीं है । कवि ने अपनी स्वच्छ रुचि के अनुसार कृष्ण की लीलाओं को वाणी दी है ।

संक्षेप में कह सकते हैं दोनों के वात्सल्य वर्णन में भावुकता, प्रगल्भता और कलात्मकता का त्रिवेणी संगम पाया जाता है ।

---

1. कृष्णगाथा - अक्रूरागमनं - 158-162
2. वही - 210-220
3. वही - 217-218
4. वही - 282-284

अलंकार योजना

काव्य में अलंकार का स्थान

काव्य की कलात्मकता अथवा उसकी चमत्कारिक शैली के विवेचन केलिए अलंकारों पर सर्वप्रथम दृष्टि जाती है । अलंकार कविता कामिनी के आभूषण हैं । काव्य के सौन्दर्य वर्धन केलिए ये उतने ही आवश्यक हैं, जितने स्वर्ण, रजत आदि के अलंकार कामिनी के सौन्दर्य वर्धन केलिए आवश्यक हैं । यद्यपि सुकवियों की रचनाएं स्वाभाविक ही सुन्दर होती है, तथापि अलंकारों से सुसज्जित होने पर उनका सौन्दर्य और आकर्षण और भी निखर उठता है ।

भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी कभी सहायक होनेवाली युक्ति ही अलंकार है[1]

संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने अलंकारों को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है । राजशेखर ने अलंकार शास्त्र को "वेदांग" तक कह दिया है । उनके मतानुसार इस शास्त्र के आदि स्रष्टा भगवान शंकर है । शंकर से इस शास्त्र का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ और उनके शिष्य भरत, नन्दिकिशोर, पिंगल और उपमान्यु द्वारा इस शास्त्र का सर्वत्र प्रसार हुआ । शास्त्रीय ढंग से अलंकार शास्त्र की चर्चा संस्कृत साहित्य में भरत मुनि से शुरू हुई । संस्कृत की यह परंपरा प्राकृत और अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी में आई ।

अलंकार का अर्थ

रूप, स्वभाव, कार्यव्यापार, दृश्य, घटना और भावना के चित्रणों में सौन्दर्य बोध कराने केलिए कवि को अप्रस्तुत दृश्य अथवा कार्य व्यापार की सृष्टि

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - गोस्वामी तुलसीदास - पृ.127

करनी पड़ती है । प्रस्तुत के ग्रहण के लिए अप्रस्तुत का उपयोग काव्यशास्त्र में अलंकार के नाम से अभिहित है । कवि अप्रस्तुत की योजना विविध प्रकार से करते हैं । इन योजना प्रणालियों का नामकरण विविध अलंकारों के रूप में किया जाता है[1] ।

भामह और दण्डी ने अलंकार का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है । इसलिए उन्होंने रस तक को रसवत अलंकारों में सम्मिलित कर लिया । इन आलंकारिक आचार्यों के मत से काव्य का समस्त सौन्दर्य अलंकार है ।

अलंकार की परिभाषा

आचार्य हेमचन्द्र की परिभाषा इसी पद्धति पर है - "अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्"[2] । इसमें एक साथ दोषहीनता, गुण और अलंकार अनिवार्य हो जाते हैं ।

काव्य में अलंकार का महत्व होते हुए भी रस का पहला, गुण का दूसरा और अलंकार का तीसरा स्थान है क्योंकि निरलंकार रचना भी काव्य होती है[3] ।

"जिस प्रकार एक कुरूपा स्त्री अलंकार धारकर सुन्दर नहीं हो सकती, उसी प्रकार प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की रमणीयता के अभाव में अलंकारों का ढेर काव्य का सजीव स्वरूप नहीं खड़ा कर सकता[4] ।"

1· ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास - पृ·307

2· आचार्य हेमचन्द्र - काव्यानुशासन - 3-27

3· पं· रामदहिन मिश्र - काव्य दर्पण [चतुर्थ सं·] - पृ·320

4· पं· रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि पहला भाग - पृ·184

आचार्यों ने भी अलंकारों को काव्य शोभाकर, शोभातिशायी आदि कहा है। महाराज भोज अलंकार को "अलमर्थमलङ्कर्तुः" कहते हैं। इससे से सुन्दर अर्थ को ही अलंकार शोभित कर सकता है। सुन्दर अर्थ की शोभा बढ़ाने में जो अलंकार प्रयुक्त नहीं, वे काव्यालंकार नहीं।

पं॰ रामचन्द्र शुक्ल का मत

भरत मुनि ने रस की प्रधानता की ओर ही संकेत किया था, पर भामह उद्भट आदि कुछ प्राचीन आचार्यों ने वैचित्र्य का पल्ला पकड़ अलंकारों को प्रधानता दी। इनमें बहुतेरे आचार्यों ने अलंकार शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में रस, रीति, गुण आदि काव्य में प्रयुक्त होने वाली सारी सामग्री के अर्थ में किया है। पर ज्यों ज्यों शास्त्रीय विचार गम्भीर और सूक्ष्म होता गया त्यों त्यों साध्य और साधनों को विविक्त करके काव्य के नित्य स्वरूप या मर्म-शरीर को अलग निकालने का प्रयास बढ़ता गया[1]।

अलंकार प्रस्तुत या वर्ण्य वस्तु नहीं, बल्कि वर्णन की भिन्न प्रणालियां हैं, कहने के खास खास ढंग हैं[2]।

डॉ॰ भगीरथ मिश्र का मत

किसी तथ्य, अनुभूति, घटना या चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति केलिए अलंकारों का उपयोग होता है[3]। अलंकार कथन की ललित भंगिमा है। जिस उक्ति में कोई बांकापन मिलता है, वही उक्ति अलंकार है। उक्ति वैचित्र्य के अनेक रूप हो सकते हैं, वे ही विभिन्न अलंकार हैं[4]। जिस प्रकार

1· पं॰ रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि पहला भाग - पृ॰182
2· वही - पृ॰183
3· डॉ॰भगीरथ मिश्र - काव्य शास्त्र (द्वितीय सं॰) - पृ॰169
4· वही - पृ॰170

कविता केलिए उद्देश्य अनिवार्य है, उसी प्रकार वह अलंकार केलिए भी अनिवार्य है[1]।

डॉ॰ राघवन का मत

रस अलंकार आदि पर वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाले डॉ॰ राघवन ने अलंकारों की चर्चा में यों बताया है "अलंकारों का प्रयोग न्याययुक्त है, लेकिन उसका सफल प्रयोग श्रेष्ठ कवियों में ही निर्भर है। यदि वह शब्दालंकार हो या अर्थालंकार वह रस केलिए बहिरंग नहीं, जब तक वह रस केलिए उपयोगी है। कवि के विचारों का प्रभावशाली अभिव्यक्ति ही अलंकार है। अलंकार पेटी में रखे हुए आभूषण के समान नहीं जिसे हम लेकर जोड सकते हैं। विचार प्रकट करने का विविध मार्ग है जो रस को अलंकार तक पहुँचाता है[2]।

---

1. The Purposiveness of Alankara is inevitable like the purposiveness of poetry. V. Raghavan - Some concepts of the Alankara Sastra. p.91

2. Figures are thus legitimate, though a proper use of them is a gift which only the greater among the poets are endowed with. Be it a Sabda alankara or an Arthaalankara, be it a sound effect or a striking turn of the idea; it is not bahiranga for Rasa, so long as it is useful for Rasa. Effective expression, the embodiment of the poets idea is, Alankara. It is not as if it were in some separate place, like jewels in a box, to be taken and added. It is the several ways of expressing ideas which are to convey the Rasa that are called Alankaras.

   V.Raghavan - Some concepts of the Alankara Sastra. p.90

सूर और पेखोरी में अलंकार

आचार्य दण्डी ने "काव्य शोभाकरान् धर्मानलंकारान प्रचक्षते"[1] लिखकर अलंकारों को काव्य की शोभा का साधन माना है और यह सत्य भी है, किन्तु सूरदास और पेखोरी के समान भक्तिमार्गी कवियों का उद्देश्य रीतिकालीन आचार्य कवियों की तरह अपना काव्य शास्त्र विषयक पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं था। यही कारण है कि उनके द्वारा नियोजित अलंकार कहीं भी साध्य रूप में नहीं, पर सर्वत्र भावाभिव्यक्ति के साधन के रूप में ही आये हैं। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि सूरसागर और कृष्णगाथा में अलंकारों के सर्वोत्कृष्ट रूप को स्थान मिला है। दोनों कवियों ने स्वयं अलंकार ढूंढ-ढूंढकर अपने काव्य को सौन्दर्यपूर्ण बनाने का प्रयत्न नहीं किया, वरन् वे स्वयं ही आकर सूरसागर और कृष्णगाथा के शृंगार बन गये हैं।

सूरसागर में अलंकार योजना

सूरसागर की कथावस्तु सूक्ष्म है। कथावस्तु को अधिक हृदयहारी और चमत्कार जनक बनाने केलिए ही सूर ने अलंकारों का प्रयोग किया है। उक्ति वैचित्र्य केलिए अलंकार प्रयोग वे पसन्द नहीं करते थे। अनेक प्राचीन आलंकारिकों ने काव्य में आन्तरिक सौन्दर्य की अवहेलना करके उसके बाह्य रूप को शोभायुक्त बनाने के उद्देश्य से अलंकारों का प्रयोग आवश्यक माना था। पर सूर जैसे महाकवियों ने अलंकारों का प्रयोग काव्य सौन्दर्य की वृद्धि में सहज सहायक तत्वों के रूप में ही किया है। अतः उनके अलंकार सौन्दर्यधायक तत्व के रूप में विशेष महत्वपूर्ण बन गए हैं।

---

1. दण्डी - काव्यादर्श - 2-12

सूर ने केशव की भांति पाण्डित्य प्रदर्शन केलिए नहीं, अपितु किसी भाव, गुण, रूप या क्रिया का उत्कर्ष प्रकट करने केलिए अलंकारों का प्रयोग किया है । उन्होंने केवल अलंकारों केलिए अलंकारों का प्रयोग कहीं भी नहीं किया । अलंकारों ने सूरसागर की शोभा बढाई है । सूर अलंकारों के घटाटोप में नहीं पडे । जायसी की भांति उनकी रचना में दो-दो, तीन-तीन अलंकार अस्पष्ट रूप में एक दूसरे पर लदे नहीं पडे हैं[1] ।

सूर के अलंकार अत्यन्त स्पष्ट सुबोध हैं । सूरसागर के आलंकारिक प्रसाधनों में उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक का महत्वपूर्ण स्थान है । सूर जब उल्लसित कल्पनाओं के सहारे रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तथा भावों की अभिव्यंजना में निरत होते हैं तब उपमाओं की धारासार वर्षा होने लगती है, रूपकों से जीवन्त प्रतिमाएं उपस्थित होने लगती हैं, उत्प्रेक्षाओं की झडी लग जाती है, अन्य अलंकार भी काव्य प्रसाधन केलिए मानो स्वतः हाथ जोड जोड कर आने लगते हैं । इस प्रकार काव्य शोभा वर्धक धर्मों[2] - अलंकारों - के जीवन रस से स्नात सूरसागर लोक और काव्य की आधार भूमि को अपनी दिव्य सुरभिलता से उद्वेलित करता है । सूर की अलंकार कुशलता पर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - "सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानों अलंकारशास्त्र हाथ जोडकर उनके पीछे पीछे दौडा करता है । उपमाओं की बाढ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है । संगीत के प्रवाह में कवि स्वयं बह जाता है । वह अपने को भूल जाता है । काव्य में इस तन्मयता के साथ शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह विरल है । पद पद पर मिलनेवाले अलंकारों को देखकर कोई अनुमान नहीं कर सकता, कि कवि जान बूझकर अलंकारों का उपयोग कर रहा है । पन्ने पर पन्ने पढते जाइए : केवल उपमाओं और रूपकों की छटा, अन्योक्तियों का ठाठ, लक्षणा और व्यंजना का चमत्कार - यहाँ तक कि एक ही चीज़ दो-दो, चार-चार, दस-दस बार तक दुहरा जा रही है, फिर भी स्वाभाविक और सहज प्रवाह कहीं भी आहत नहीं हुआ ।

1· डॉ· मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ [चतुर्थ सं·] - पृ·180

2· "काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते । तेचाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति" - दण्डी - काव्यादर्श - परिच्छेद -2, श्लोक-12

काव्यगुणों की इस विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है । वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं, जिसका सौन्दर्य पद पद पर माली के कृतित्व की याद दिलाया करता है, बल्कि उस अकृत्रिम वन भूमि की भाँति है, जिसका रचयिता रचना में ही घुल-मिल गया है[1] ।

कोमलकान्त पदावली के विन्यास में अनुप्रास की पूर्ति स्वयमेव हो जाती है । सूर को अनुप्रास लाने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता । वर्णन के अन्तर्गत भाव की उमड़न के साथ वह अपने आप आ जाता है । परवर्ती कवि अनुप्रास के आकर्षणपाश में बुरी तरह जकड़ जाते हैं । अपनी रचना को शब्दाडम्बर से आच्छादित कर भावों की निर्जीव मूर्ति खड़ी करते हैं । सूर जैसा भावना जगत् का कुशल चित्रकार ऐसा नहीं कर सकता था । उसकी रचना सर्वत्र, स्वाभाविक, सजीव और रसमयी है । अलंकारों ने उसके बाह्य रूप एवं भावलालित्य को वर्धमान किया है ।

सूरसागर में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का सफल प्रयोग हुआ है । दोनों का अलग अलग विवेचन हम करेंगे ।

शब्दालंकार

शाब्दिक सौन्दर्य की वृद्धि करनेवाले चमत्कारपूर्ण शब्द शब्दालंकार कहलाते हैं । ये कविता के श्रुति माधुर्य को बढ़ाते हैं । सूर में श्रुति माधुर्य को वर्धमान करनेवाले शब्दालंकार पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं । अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्ति प्रकाश जैसे अलंकार सूरसागर में प्रचुर मात्र में मिलते हैं ।

---

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 3 [राजकमल प्रकाशन] - पृ.360 [हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास]

अनुप्रास

सूर ने इस अलंकार का प्रयोग बार बार किया है। छेक, वृत्ति, लाट, श्रुति और अन्त्य इस अलंकार के प्रकार हैं।

छेकानुप्रास

"चपला अति चमचमात, ब्रजजन सब अति डरात"[1]।
"गिरि जनि परै टरै नख तैं जनि"[2]।

पहले उदाहरण में "च" व्यंजन और दूसरे में "र" व्यंजन की आवृत्ति होती है।

स्वर हीन व्यंजनों की एक बार आवृत्ति होने के कारण इन पंक्ति में छेकानुप्रास है।

वृत्ति अनुप्रास

सुनत करुणा बैन, उठे हरि कल ऐन
मैनकी सैन गिरि तन निहार्यो[3]।।
गोपी गाइ ग्वाल गोकुल सब दुख बिसर्यो, सुख करत समाज[4]।"
कर कंकन कंचन धार मौल माल लिए[5]।

पहले उदाहरण में "न" दूसरे में "ग" और तीसरे "क" वर्ण का बार बार प्रयोग हुआ है।

---

1. सूरसागर - 1475
2. वही - 1492
3. वही - 1488
4. वही - 1490
5. वही - 642

ऊपर उद्धृत पंक्तियों में प्रयुक्त शब्दावली में एक स्वाभाविक प्रवाह है जो सिद्ध करता है कि कवि को उसके पीछे दौड़ने का प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। शब्दावली स्वयं कवि के शासन में भाव के साथ चिपटी चली आई है।

श्रुति अनुप्रास

ऐसे हम देखे नंदनन्दन।
स्याम सुभग तनु पीत वसन जनु मनहु जलद पर तड़ित सुछन्दन[1]।

इस पद में दन्त स्थानीय अक्षरों की अधिकता के कारण श्रुतिमधुरता उत्पन्न होई है। अतः श्रुतिअनुप्रास है।

लाटानुप्रास

"कमल नयन के कमल वदन पर वारिज वारिज वारि[2]।"

यमक

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं[3]।

यहाँ पहले "जोग" का अर्थ है "योग" तथा दूसरे जोग का अर्थ है योग्य।

"सारंग विनय करति सारंग सौं सारंग दुख बिसरावहु[4]।"

यहाँ "सारंग" शब्द का भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है।

---

1. सूरसागर - 2398
2. वही - 2434
3. वही - 4542
4. वही - 2715

श्लेष

"निरखत अंक श्याम सुन्दर के बार बार ले छाती[1]।"
ऊधौ हरि गुन हम चकडारे।
गुन सौं ज्यौं भावे त्यौं फेरौ, यहै बात कौ ओर
॥ ॥ ॥
सूर सहज गुन ग्रंथि हमारे, दई स्याम उर माहिं।
हरि के हाथ परै तौ छूटै, और जतन कछु नाहिं[2]।

सूर ने इन उक्त अंशों में "अंक" और "गुण" - इन द्विअर्थी शब्दों से श्लेष का सुन्दर चमत्कार उत्पन्न किया है।

पुनरुक्ति प्रकाश

"सील की रासि रूप रासि आनन्द रासि[3]।"
नयो पीताम्बर नई चूनरी नई नई बूँदनि भीजति गोरी।
नयो नेह नयो गेह्य नयो रस नवल कुंवरि वृषभानु किशोरी[4]।"

वक्रोक्ति

हम मूरख तुम चतुर हौ ? कछु लाज न आवै[5]।
वक्रोक्ति के द्वारा गोपियां उद्धव को मूर्ख बनाती हैं।

---

1. सूरसागर - 4105
2. वही - 4162
3. वही - 2421
4. वही - 1303
5. वही - 2571

माँग कहो तुमको अपनी माँ भूलति बात निदाने ।
सूर स्याम जब तुमहिं पठायो तब नेकहु मुसकाने[1] ।

यहाँ व्यंग्य है पर उक्ति की वक्रता के कारण अर्थ है कि कृष्ण ने उद्धव को मूर्ख समझकर बनाया है ।

अर्थालंकार

प्राय: सभी अर्थालंकारों का प्रयोग सूरसागर में देख सकते हैं । पर उनमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का सर्वाधिक प्रयोग हुए हैं ।

उपमा

कवि की उपमाओं में सबसे बड़ा गुण है उनकी सरलता । वे जितनी ही सुपरिचित हैं, उतनी ही अधिक भाव व्यंजक[2] । सूरसागर में प्रयुक्त उपमा के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है ।

1. निरखति रहौं फणिक की मणि ज्यों
   सुन्दर स्याम विनोद बिहारे[3] ।

2. लोचन टेक परे सिसु जैसे[4] ।

3. स्रवन कुण्डल गण्ड मण्डल उदित ज्यों रवि भोर[5] ।

---

1. सूरसागर - 4139
2. ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास - पृ.535
3. सूरसागर - 914
4. वही - 2977
5. वही - 1999

मालोपमा

स्याम भये राधा अस ऐसे ।
चातक स्वाति चकोर चन्द्र ज्यों, चक्रवाक रवि जैसे[1] ।

सांगरूपक

लट बाँड उपचार चूट, अम परी प्रसेद पनारी ।
खिगलित कच कुच कालि पुलिन पर पंकजु काजल मारी[2] ।

निरंग रूपक

मान धर्यो नागरि जिय गाडो सूख्यो कमल हियो[3] ।

परंपरित रूपक

चित्त चातक प्रेम धन लोचन चकोरनि चंद[4] ।

रूपकातिशयोक्ति

अद्भुत एक अनुपम बाग ।
जुगल कमल पर गज वर क्रीडत तापर सिंह करत अनुराग ।
हरि पर सरवर, सर पर गिरि वर गिरि पर फूले कंज पराग[5] ।

---

1. सूरसागर - 2756
2. वही - 3809
3. वही - 3041
4. वही - 1245
5. वही - 2728

इसमें राधा के शरीर का बाग से रूपक बाँधा गया है और उपमानों द्वारा उपमेय के रूप अंगों को प्रकट किया गया है ।

उत्प्रेक्षा

बाल कृष्ण के घुटनों चलने का वर्णन करते हुए कवि कहता है - मणि आँगन में घुटनों चलते हुए कर और पग के प्रतिबिंब ऐसे जान पड़ते हैं मानों पृथ्वी अपने उर में कमल संपुट सुभाग छवि भर रही हो । कनक-भूमि पर कर पग छाया ऐसी लगती है मानों वसुधा प्रति पद पर प्रति मणि में कमल की बैठकी सजा रही हो[1] ।

इसी प्रकार और एक उदाहरण देखें -

"अरुन सेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ ।
मानों सरस्वति गंग जमुन मिलि आगम कीनों आइ[2] ।।

सूरसागर में प्राय: सभी अलंकारों का प्रयोग हुआ है परन्तु सूरदास के प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक और रूपकातिशयोक्ति ही हैं । इन अलंकारों के द्वारा उन्होंने अपनी वर्ण्य वस्तु का चित्र सा उपस्थित कर दिया है ।

सूर ने कहीं कहीं पाण्डित्य प्रदर्शन और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए भी अलंकारों के प्रयोग किये हैं, जैसे दृष्टिकूट की शैली में । ऐसे अलंकार प्रयोग कौशल हृदय को नहीं बुद्धि को ही प्रभावित करता है । सूर के इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण उक्तात्मक अलंकार प्रयोग के दो एक उदाहरण देखें -

---

1. सूरसागर - 727-728
2. वही - 2431

अद्‌भुत एक अनुपम बाग ।
युगल कमल पर गजवर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग ।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग ।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ।
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृग-मद काग ।
खंजन, धनुष, चन्द्रमा, ऊपर, ता ऊपर एक मनिधर नाग ।।
अंग अंग प्रति और और-और छवि, उपमा ताकों करत न त्याग ।।[1]

रूपकातिशयोक्ति का यह दृष्टिकूट रूप अत्यन्त चमत्कारपूर्ण एवं केवल ऊहात्मक है, जिसमें चरणों, जंघाओं, कटि, नाभि, हृदय, स्तन, ग्रीवा, मुंह, ओष्ठ, नासिका, भृकुटी नेत्र, मुख, केश आदि का अत्यन्त कल्पनामय वर्णन किया गया है ।

दूरि करहि बीना कर धरिबो ।
रथ थाक्यो, मानो मृग मोहे, नाहिन होत चन्द्र को ढरिबो[2] ।।

ऐसे चमत्कार प्रधान ऊहात्मक पद अस्वाभाविक जान पड़ते हैं । परन्तु ऐसे पद, उस समय की परंपरा के अनुसार ही सूर ने लिखे होंगे । अनेक पदों में पाये जाने वाले अलंकार स्वाभाविक, सजीव एवं रसमय है जो काव्य के भावाभिव्यक्ति एवं रस माधुर्य को अनेक गुना बढ़ाते हैं ।

<u>कृष्णगाथा में अलंकार योजना</u>

कृष्णगाथा में अलंकारों के विविध तथा मनोहारी इन्द्रधनुषी रेखाएं अंकित है । इसमें अलंकार अपना सहज सौन्दर्य बिखेरते हैं । चेल्लोरी ने अपने

---

1. सूरसागर - 2728
2. वही - 3795

काव्य में भावों की जो अपूर्व सरिता प्रवाहित की उसमें अलंकारों के विविध सौन्दर्य बिन्दु देखने को मिलते हैं। शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का बहुत सुन्दर संगम कृष्णगाथा में हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि की भावधारा में अलंकार स्वत: बढ़ते चले आते हैं।

कृष्णगाथा के प्रत्येक पद में कवि अपनी अलंकार कुशलता को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं।[1] स्पष्ट है चेरुश्शेरी के समान अलंकार कुशलता में सफल कवि मलयालम साहित्य में विरले ही हैं।[2] इस दिशा में वे अनेक संस्कृत कवियों से भी बढ़कर हैं।[3] अलंकार कुशलता में संस्कृत साहित्य में श्रीहर्ष को जो स्थान है वही स्थान मलयालम साहित्य में चेरुश्शेरी को प्राप्त है।[4]

द्वितीयाक्षरप्रास

मलयालम के आदिकालीन साहित्य में अधिकांश कवि द्वितीयाक्षरप्रास का प्रयोग करने में दत्तचित्त थे। पद्य के प्रत्येक चरण में दूसरा अक्षर जब समान दिखाई पड़ता है तब उस पद्य में द्वितीयाक्षर प्रास होता है। चेरुश्शेरी भी इससे अपवाद नहीं। उनके काव्य में हम द्वितीयाक्षर प्रास देख सकते हैं।[5]

यह एक प्रकार का शब्दालंकार है जो अनुप्रास के अन्तर्गत है। यह हिन्दी के तुकांत के समकक्ष है। यह अलंकार केरलियों को बहुत प्रिय है। अत: इसे केरल प्रास भी कहते हैं। मलयालम के कविगण इसे अपनी कविता कामिनी का

---

1. महाकवि उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रम् - भाग-2, पृ.145
2. पी.के. नारायण पिल्ले - कृष्णगाथा की भूमिका - पृ.84
3. वही - पृ.85
4. साहित्य लोकम त्रैमासिका-केरल साहित्य अकादमी-भाग-3, जुलाई-सितंबर-77 पृ.21
5. इन्दिरा तन्नुटे पुंचिरियायोरु
चन्द्रिका मेय्युमल परक्कयाले
पालाभि वेल्लत्तिल मुड्डिनिन्नीटुन्न
नीलाभ मायोरु शैलं पोले ।। कृष्णगाथा-कृष्णोत्पत्ति-प्रथम चार पंक्तियाँ

सुहाग चिह्न मानते हैं[1] ।

अर्थालंकार

अलंकार तो चेरुशेरी की कल्पना सृष्टि के अन्तर्गत अनायास ही आ गए हैं । कृष्णगाथा में प्राय: सभी अलंकार मिल जाते हैं, पर उनमें शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकार ही अधिक हैं । काव्य में रस की निष्पत्ति वास्तव में इन अलंकारों और बिंबों की प्रयोजना से हुई है ।

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक चेरुशेरी के प्रिय अलंकार हैं । "उपमा कालिदासस्य" के समान "उत्प्रेक्षा कृष्णगाथायां" कहा करते हैं[1] । यह पूर्णत: ठीक है । चेरुशेरी का सबसे प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा है[2] । कृष्णगाथा में जितनी उत्प्रेक्षा मिलती है उतनी और किसी भी काव्य में नहीं[3] । काव्य का आरंभ ही उत्प्रेक्षा के साथ होता है । –

लक्ष्मी देवी की स्मिति रूपी चाँदनी छा जाने से भगवान विष्णु का शरीर ऐसा शोभित होता है मानों क्षीरसागर में निमग्न नीलाचल हो[4] ।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा के और भी उज्वल उदाहरण पूरे काव्य में बिखरे पड़े हैं । कालिय मर्दनम के बाद सन्ध्या जब आ जाती है उसका वर्णन कवि यों करते उस समय सारे पृथ्वी मण्डल पर घना अन्धकार छा गया मानों कालिन्दी नदी का जल सर्वत्र व्याप्त हो गया हो[5] ।

1· डॉ· नगेन्द्र – भारतीय काव्य शास्त्र की परंपरा–भाग–2, पृ·177
1· उल्लूर एस·परमेश्वरय्यर – केरल साहित्य चरित्रम् – भाग–2, पृ·147
2· वही – पृ·187
3· डॉ· के·एम· जार्ज – साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे – पृ·352
4· कृष्णगाथा – कृष्णोत्पत्ति – 1–4
5· कृष्णगाथा – कालियमर्दनम् – 215–218 – पृ·197

उसी सिलसिले में कवि फिर उत्प्रेक्षा करते हैं । स्वेदकण रूपी मोतियों से कृष्ण का कलेवर सुशोभित होता था । आकाश में तारागण उस समय इसमें उद्दीप्त दिखाई पड़े मानों वह कृष्ण के स्वेद कणों से होड़ लेना चाहता हो[1] ।

उपमा

डॉ॰ जोपूसन ने बताया है " प्रस्तुत को उत्कृष्ट बनाकर उसका उदाहरण देना उपमा है[2] । " कृष्णगाथा की उपमायें इन दोनों धर्मों का पालन करने वाली हैं । कालिदास की उपमाओं के समान चेरुश्शेरी की उपमायें भी अत्यन्त सफल हैं[3] ।

कृष्णगाथा में उपमायें प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों से स्वीकृत हैं । प्रकृति में जो अत्यन्त सुलभ और सुन्दर वस्तुयें हैं उन्हीं को उपमान के रूप में ग्रहण किया गया है । इस कारण रसानुभूति सहज रूप से हुई है । उपमा अलंकार के प्रयोग में चेरुश्शेरी की सिद्ध हस्तता प्रकट करनेवाले कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

सन्दर्भ कालिय मर्दनम् का है । कृष्ण कदम्ब वृक्ष के ऊपर से यमुना नदी में कूद पड़ते हैं । यह दृश्य अद्भुत जनक है । कृष्ण की उपमा कवि मेरु पर्वत से करते हैं । जलाशय में पहाड़ के गिर पड़ने से जो बड़ा भारी आलोड़न होता है उसे बोधगम्य बनाने केलिए ही कवि ने कृष्ण की तुलना मेरु पर्वत से की[4] ।

शरद् ऋतु के वर्णन में उपमा की छटा विशेष दर्शनीय है - जैसे मन्द बुद्धि वाले लोग माया में डूबे रहने के कारण यह नहीं जानते कि उनके जीवन के दिन व्यर्थ बीतते जाते हैं । उसी प्रकार जल में निवास करनेवाली मछलियाँ यह नहीं जानती कि पानी धीरे धीरे कम होता जा रहा है[5] ।

1· कृष्णगाथा - कालियमर्दनम् - 226-230 - पृ॰198

2· A simile should ennoble and enlighten the subject-John Life

3· डॉ॰के॰एम॰जार्ज - साहित्य चरित्रं प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ॰353

4· पारिच्चु चाटिनान चाररते वारिधियिल् वेरट्ट मेरु कुन्नेन्नपोले ।।
कृष्णगाथा - कालियमर्दनम् 51,52

5· कृष्णगाथा - शरद्वर्णन - 12-16

रूपक

उपमा और उत्प्रेक्षा के समान रूपक के प्रयोग में भी चेरुशेरी अत्यन्त कुशल है। रूपक बांधने केलिए उन्होंने जिन जिन पदार्थों का चयन किया है वे सुपरिचित होने के कारण विशेष हृदयस्पर्शी हुए हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

कृष्ण जन्म का दिन है। वासुदेव शिशु को बचाने वृन्दावन ले जा रहे थे। उस समय बड़ी वर्षा हुई। वर्षा से शिशु को बचाने केलिए अनन्त ने अपने फणों को छाते के समान फैलाया। इस दृश्य को देखकर कवि एक जुलूस की उद्भावना करते है। शिशु कृष्ण वासुदेव के हाथ रूपी वाहन पर यात्रा कर रहा है। बादलों का गर्जन नगाड़ा है। सर्प का फण छता बना हुआ है। *बिजली* बिजली दीपक है। किसी प्रबल राजा की धूम धाम से यात्रा की प्रतीति इससे प्राप्त होती है। इसमें रूपक की जो योजना हुई है वह अत्यन्त विशिष्ट है।[1]

परंपरित रूपक

कृष्ण का रूप वर्णन करते हुए कवि परंपरित रूपक का प्रयोग करते हैं। गोपिकादुख में कृष्ण के सुन्दर शरीर के अंगों का वर्णन रूपक द्वारा कवि प्रस्तुत करते हैं कृष्ण की आँखें मछली हैं, माथा पहाड़ है, नाक सर्प है। नासिका रूपी सर्प नेत्र रूपी मछली को पकड़ने केलिए अलक रूपी डोरी काम में लाती है[2]। स्मरण रखना चाहिए कि सर्प काम विकार और पहाड़ और उसके निकट के लता निकुंज उस विकार के उद्दीपक है। गोपिकाओं की कामातुरता का वर्णन करने वाला यह सन्दर्भ अत्यन्त मनोहर हुआ है।

इनके अतिरिक्त अतिशयोक्ति, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का भी चेरुशेरी ने यथास्थान प्रतिपादन किया है।

---

1. कृष्णगाथा - कृष्णोत्पत्ति - 606-622
2. कृष्णगाथा - गोपिकादुख - 985-996

अतिशयोक्ति

अतिशयोक्ति का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है । हेमन्त वर्णन के प्रसंग में चेरुश्शेरी कहता है कि शैत्य इतना अधिक बढ़ गया है कि स्वयं आग भी अपने को तपाना चाहती है । जल का नाम सुनते ही लोग थर थर कांपते हैं[1] ।

उल्लेख

कृष्ण के वेणुगान का वर्णन उल्लेख का सुन्दर उदाहरण है । "बालकृष्ण का वेणुगान ब्रह्मा के लिए सामगान, मुक्तों के लिए नित्य तत्व, भक्तों के लिए मन को शीतल करनेवाला मधु, पुष्पित वृक्षों के लिए दोहद और समस्त प्रपंच के लिए मोहन मन्त्र तथा युवतियों के लिए कामदेव का अपने बाणों मारण मन्त्र प्रतीत हुआ है[2] ।

माया भगवती का चित्रण

माया भगवती के वर्णन में चेरुश्शेरी की अलंकार कुशलता देखने योग्य है। वे कहते हैं देवी के श्री लावण्य का यथोचित वर्णन करना मेरी जिह्वा की शक्ति से परे है[3] । उनके बालों का वर्णन मैं करना चाहता हूँ । सादृश्य रहित शब्दों का प्रयोग किया जाए तो वह बहुत अच्छा होगा । इन पदों में कवि ने देवी के बाल, अलक, भाल, भौंहें, कान, नाक, गण्डस्थल, अधर, मुस्कराहट, गला, हाथ, दाँत, जाँघें, जानु, नख, चरण, चरणरज आदि शिख से नख तक का वर्णन किया है[4] । यह नख शिख वर्णन का स्मरण दिलाता है ।

---

1. कृष्णगाथा - हेमन्त वर्णनम् - 66-70
2. कृष्णगाथा - वेणुगानम् - 344-356
3. कृष्णगाथा - कृष्णोत्पत्ति - 695-966
4. वही - 700-850

बालों की उपमा काले बादल, ताल वृक्ष की काली मंजरी आदि से की है।[1] किन्तु एक वस्तु से उपमा करते समय कवि सोचते है कि दूसरी नाराज़ हो जाएगी। इस प्रकार कहकर जिनसे उपमा की गई है उनका निषेध करके उपमा देने के काम से निवृत्त होते हैं। यहाँ अनन्वय अलंकार है।

भाल रूपी आंगन में खेलते हुए केश रूपी नायिका के पुत्रों से अलक की उत्प्रेक्षा की गई है।[2] यहाँ रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

भाल को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानों शिव के मस्तक के चन्द्र बिम्ब का आधा रूप टूटकर गिरते पर भौहों पर आकर रुक गया हो।[3] यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

भौहों की उत्प्रेक्षा युद्धस्थल की सीमन्त रेखा से की गई है। मुख मेरे समान है, ऐसा मानकर चन्द्र आगे बढ़ा। तब कमल ने कहा - मेरे समान है। जब दोनों में युद्ध छिड़ गया तो मुख की श्री बीच में पड़ी और रेखा खींचकर चन्द्र से ऊपर रहने और कमल से नीचे रहने को कहा। इस प्रकार की खींची हुई सीमन्त रेखाएं हैं भौंहें।[4] मुख के ऊपरी भाग की चन्द्र से तथा निचले भाग की कमल से तुलना की गई है - यही सार है।

आँखों को भौंहें रूपी लहरों के नीचे खेलनेवाली मछलियाँ कहा है।[5] लहरों के नीचे ही मछलियाँ खेलती हैं - यही प्रसिद्ध है। आँखों में मत्स्यत्व का आरोप करने से यहाँ अनुमान अलंकार है।

---

1. कृष्णगाथा - कृष्णोत्पत्ति - 702-706
2. वही - 711-714
3. वही - 715-720
4. वही - 723-730
5. वही - 731-735

कानों की तुलना आनन-कान्ति रूपी तरुणी के सोने के झूले से की गई है। अधर रूपी बिम्बाफल को देख, खाने केलिए आगे बढ़ने वाले कीर को ओठों से उत्प्रेक्षा की गई है।[1]

सौन्दर्य की होड़ में लाल फूल अधर से हार गया। अत: अपमानित होकर माला में गुंथने के बहाने फांसी पर चढ़ना चाहता है।[2] यहाँ कैतवापह्नुति और उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छाती पर शोभित मोतियों का हार देखकर दांत उसके पास न जाए, इस विचार से होंठ दांतों को छिपा देते हैं।[3] यहाँ उत्प्रेक्षा है।

मुस्कुराहट को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि वह शिवजी के नेत्र रूपी चकोरों के खाने केलिए चांदनी हो।[4] कवि संकल्प है कि चकोर चांदनी खाता है यहाँ मुस्कुराहट पर चांदनी का आरोप करने के कारण अनुमान अलंकार है। मुख के अधोभाग और कण्ठ को पूर्णचन्द्र को सिर पर धारण किए शिव जी के लिंग से उत्प्रेक्षा की गई है।[5] मुख पूर्णचन्द्र और गला शिवलिंग के समान है।

हाथ मानों स्तनरूपी मलयपर्वत से निकलने वाले सर्प हों।[6] स्तनों को यौवन रूपी मस्त हाथी के मस्तकों और रोमावलियों को सूंड के समान बताया है।[7] उन रोमावलियों के अग्रभाग में नाभि रूपी पुष्कर दिखाई देता है। हाथी के मस्तक के मध्य से सूंड निकली हुई है। उसी प्रकार स्तनों के मध्य से रोमावलियां हैं।[8]

---

1. कृष्णगाथा - कृष्णोत्पत्ति - 736-742
2. वही - 740-750
3. वही - 751-754
4. वही - 755-758
5. वही - 759-763
6. वही - 764-768
7. वही - 769-772
8. वही - 773-778

नितंब मानों रथ हों, जिस पर बैठकर कामदेव ने बदला लेने केलिए शिव के शरीर को आधा कर दिया हो[1]। [देवी के नितंब पर मोहित होकर शिवजी ने अपने शरीर का आधा भाग देवी को दे दिया था - यह कथा प्रसिद्ध है।]

जंघाओं को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानों हाथी अपने मुंह से नमस्कार करता हो[2]। घुटने मंजरी के समान है। पर घुटने सोचेंगी कि उपमारहित होने के कारण हमसे दूसरी वस्तुओं की तुलना की गई है। ऐसा विचार कर शायद वे कुपित होंगी। अत: कवि कहते हैं - उनके समान वे ही हैं। अत: इसमें अनन्वय अलंकार है।

नूपुर के मोहक शब्द रूपी हंसनाद सर्वदा सुनने के कारण वे देवी के चरण कमल कहे जा सकते हैं[3]। देवों के करकमल इनको देखते ही मुक जाते हैं, जिससे चरण चन्द्र भी कहे जा सकते हैं[4]। फिर अपनी पूजा करने वालों के दुख रूपी कानन को जलाने के कारण देवी को अपनी भक्तों के मानस का अंधकार मिटाने के कारण उन्हें सूर्य भी कह सकते हैं[5]। चरण रज को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानों ब्रह्म ने इससे प्रपंच की सृष्टि की हो[6]।

स्पष्ट है अलंकार प्रयोग कुशलता में चेरुश्शेरी मलयालम के श्रेष्ठतम कवियों की कोटी में रहता है। चेरुश्शेरी ने अपने प्रत्येक पद को अलंकारों से सुसज्जित किये हैं। चेरुश्शेरी ने अपने प्रत्येक पद को अलंकारों से सुसज्जित किये की अलंकार कुशलता हिन्दी के रीतिकालीन कवियों के अलंकार वर्णन का स्मरण दिलाता है। सूरदास के समान ही चेरुश्शेरी उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि अलंकारों के सम्राट माने जाते हैं[7]।

---

1. कृष्णगाथा - कृष्णोत्पत्ति - 781-784
2. वही - 785-786
3. वही - 809-812
4. वही - 813-816
5. वही - 817-825
6. वही - 826-829
7. द्रष्टव्य - डॉ.के.भास्करन नायर - हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य - पृ.283

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से दोनों कवियों की उर्वर कल्पना शक्ति, विस्तृत ज्ञान, सूक्ष्म निरीक्षण, सौन्दर्य प्रियता, वचन विदग्धता और असाधारण प्रतिभा के साथ उनकी अतीव संवेदन शीलता और भाव प्रवणता का भी परिचय मिलता है। एक ओर जहाँ सूर और सेनापति उत्प्रेक्षाओं और रूपकों की नवीन नवीन उद्भावना के द्वारा कल्पना की विचित्रता और अनुरंजकता व्यक्त करते हैं तथा अतिशयोक्ति के द्वारा कल्पना की ऊँची उड़ान प्रस्तुत करते हैं, वहाँ दूसरी ओर साधारण और प्रचलित उपमाओं के सामान्य रूप में चित्रोपमता उपस्थित कर देते हैं। दोनों कवियों द्वारा प्रयुक्त अलंकारों में उनके व्यक्तित्व की अप्रतिम संपन्नता का उद्घाटन होता है।

काव्य रूप

सूरसागर प्रबन्धात्मक गीति पद्धति पर प्रणीत काव्य है । साधारण गीति काव्यों से इसकी भिन्नता है । गीति काव्य में कथा की अन्विति नहीं होती गीत स्वयं अपने में पूर्ण और स्वतंत्र है । पर सूरसागर में एक कथावस्तु का क्रमानुसार वर्णन मिलता है । कथा का आधार श्रीमद् भागवत है । भागवत की कथावस्तु इसमें नवीन शैली में प्रतिपादित की जाती है । इसका रूप मुक्तक का है, पर इसमें प्रबन्धात्मकता बनी रहती है । इस कारण हम इसे प्रबन्धात्मक गीति काव्य कह सकते हैं ।

कृष्णगाथा प्रबन्ध काव्य है ही । पर यह साधारण प्रबन्ध काव्यों से कुछ अंशों में भिन्न है । यह गेय प्रबन्ध काव्य है । इसकी जनप्रियता का रहस्य गेयता में निहित है । गेय काव्य के रूप में ही गाथा अधिक प्रसिद्ध है । कृष्णगाथा प्रबन्ध काव्य होते हुए भी गेय काव्य है और सूरसागर गेय काव्य होते हुए भी प्रबन्धात्मक भी ।

पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर काव्य के भेद

पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के प्रमुख दो भेद किए हैं - विषयीगत (subjective) और विषयगत (objective)[1] अन्य रूप इन्हीं दो स्थूल भेदों के अन्तर्गत आते हैं । हडसन के अनुसार विषयीगत काव्य (subjective poetry) के निम्न लिखित भेद हैं[2] -

---

1. W.H. Hudson - An Introduction to the study of literature (1954) p.96

2. ibid p.97-102

1. विचारात्मक एवं दार्शनिक गीत (Meditative and Philosophical Lyr
2. सम्बोधन गीत (Ode)
3. शोक गीत (Elegy)
4. पत्र गीत (Epistle)
5. व्यंग्य गीत (Satire)
6. वर्णनात्मक गीत (Descriptive poetry)

विषयगत काव्य के दो भेद हैं[1] -

1. वर्णनात्मक कविता (Narrative poetry)
2. अभिनयात्मक काव्य (Dramatic poetry)

वर्णनात्मक कविता के अन्तर्गत महाकाव्य (Epic) आते हैं और अभिनयात्मक काव्य के अन्तर्गत अभिनयात्मक गीति काव्य (Dramatic Lyric) और अभिनयात्मक कहानी (Dramatic Story) आते हैं।

महाकाव्य

महाकाव्य का भारतीय लक्षण

भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने महाकाव्य के जो लक्षण बताए हैं उनका सारांश यह है[2] -

1. प्रबन्ध की दृष्टि से महाकाव्य को सर्गबद्ध होना चाहिए। सर्गों की संख्या सामान्यतः आठ से अधिक होती है। उसका आकार न अति स्वल्प और न अति दीर्घ होना चाहिए। महाकाव्य का आरंभ नमस्कार, आशीर्वाद तथा वस्तु निर्देश के साथ होता है। प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर आनेवाले सर्ग की कथा की सूचना होती है।

1.
2. साहित्य दर्पण - श्लोक - 613-622

2· महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में सामान्यतः एक ही वृत्त का प्रयोग होना चाहिए

3· कथावस्तु की दृष्टि से महाकाव्य का निर्माण किसी इतिहास प्रसिद्ध, अन्यथा सुजन-समाज में प्रचलित वृत्त को लेकर होना चाहिए ।

4· महाकाव्य का नायक या तो कोई देवता होता है या कोई धीरोदात्त, धीर प्रशांत या धीर ललित पुरुष ।

5· महाकाव्य में श्रृंगार, वीर, और शांत रसों में से एक को अंगी एवं शेष समस्त रसों को उसके अंगों के रूप में आना चाहिए ।

6· महाकाव्य का लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति होना चाहिए ।

7· महाकाव्य में विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपांग वर्णन आवश्यक है - यथा सूर्य, चन्द्र, प्रभात, सन्ध्या पर्वत आदि का । कहीं कहीं खलों की निन्दा और सन्तों का गुण वर्णन भी होना चाहिए ।

8· महाकाव्य का नामकरण कथानक अथवा नायक के नाम के अनुसार होना चाहिए

उपर्युक्त रूपरेखा से ज्ञात होता है कि हमारे साहित्य शास्त्रियों का ध्यान विशेषतः महाकाव्य के आकार प्रकार के विषय में रहा है, उसकी अन्तरात्मा के विषय में नहीं ।

महाकाव्य सम्बन्धी पश्चिमी विचार

वर्तमान युग का साहित्य प्रेमी इन लक्षणों से सन्तुष्ट नहीं हो सकता उसके मन में यह शंका उठ सकती है क्या आकार प्रकार की महानता से ही कोई रचना महाकाव्य बन जाती है ? अथवा अन्य काव्य रूपों की तुलना में उसमें कोई मौलिक महानता भी होनी चाहिए ? उसकी इस शंका का समाधान पश्चिम के कतिपय समीक्षकों के महाकाव्य सम्बन्धी विचारों के अवलोकन से हो सकता है ।

अरस्तु ने बताया है - "महाकाव्य काव्यानुकृति का वह भेद है, जिसका रूप समाख्यानात्मक हो, जिसमें एक छन्द का प्रयोग किया गया हो, जिसमें उच्चतर कोटि के व्यक्तियों का चरित्र वर्णन हो, जिसकी सीमाएं विस्तृत हों, और जो अनेक घटनाओं के उचित समावेश के कारण भव्यत्व और गरिमा से युक्त हो[1]।

दृश्य काव्य से भिन्न महाकाव्य एक बृहदाकार समाख्यान काव्य है जिसमें उच्चतम चरित्रों का वर्णन रहता है और जिसके कथा प्रवाह में भव्यत्व और गरिमा होती है[2]।

डब्ल्यू॰एम॰ डिक्सन लिखते हैं - "महाकाव्य एक ऐसे नायक का चित्रण करता है जो किसी देश अथवा किसी आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है, और जो उसकी विजय के साथ विजयी होता है। वह कोई महान अथवा महत्वपूर्ण व्यापार हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और उसी प्रकार उसके पात्र भी महान अथवा महत्वपूर्ण होते हैं[3]।"

इसी प्रकार सी एम गेले लिखते हैं - महाकाव्य किसी ऐसे महिमा मंडित कथानक के गरिमापूर्ण कथा प्रबन्ध की वह तात्त्विक अभिव्यक्ति है जो किन्हीं वीर पात्रों और अति प्राकृत शक्तियों द्वारा सर्वाधिष्ठात्री नियति के नियंत्रण में घटित होता है। महाकाव्य के कथानक में किसी राष्ट्र अथवा समस्त मानवता की राजनैतिक अथवा धार्मिक भावनाओं का सन्निवेश होता है। वह आकुल मानवता। विनाशकारिणी परिस्थितियों में से निकालते हुए उसकी अशांति को दूर करता, उसे ऊंचा उठाता और शांति प्रदान करता है[4]।

---

1. अरस्तु का काव्य शास्त्र - डॉ॰ नगेन्द्र [पृ॰सं॰] 127
2. ristotles theory of poetry and fine art - Translated by S.H. Butcher (I Edn.) p.23 Lyall Book Dept, Bhopal.
3. डब्ल्यू एम डिक्सन - इंग्लिश एपिक ऐंड हीरोइक पोयट्री, लंदन [1912] पृ॰2
4. सी॰एम॰ गेले - प्रिंसिपुल्स आफ पोयट्री - पृ॰94,95

उच्च चरित्र का चित्रण, विस्मयनीय किन्तु महान और आश्चर्यकारी घटनाओं का वर्णन, सत्य के शाश्वत रूप का उद्घाटन और कथानक का व्यवस्थित एवं सुसंगठित विकास महाकाव्य केलिए आवश्यक है[1]।

उपर्युक्त विचारकों के अभिमतों के आधार पर डॉ॰ शान्तिस्वरूपगुप्त ने पश्चिम के महाकाव्य संबन्धी लक्षणों का इस प्रकार संग्रह किया है -

1· महाकाव्य कल्पना मंडित अतीत से संबंध रखता है, जो स्वप्निल और आलोक पूर्ण होता है, जिसमें रहस्य, भयानकता और दिव्यता होती है।

2· उसका कथानक महिमा मंडित तथा संघर्षपूर्ण होता है जिसमें नायक की तथा उसके साथ उसके देश अथवा आदर्शों की विजय दिखाई जाती है।

3· उसमें जीवन की एक विस्तृत भूमिका ग्रहणकी जाती है।

4· उसका व्यापार भी महान अथवा महत्वपूर्ण होता है। घटना बाहुल्य तथा वर्णन प्रचुरता के कारण उसकी गति मंद होती है और वस्तु संकलन शिथिल होता है।

5· उसका नायक महान होता है और किसी देश-उसकी भावनाओं अथवा किसी आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। उसके अन्य पात्र भी महान अथवा महत्वपूर्ण होते हैं।

6· उसकी शैली गरिमापूर्ण किन्तु नाटिक होती है।

7· उसका समस्त प्रबन्ध व्यवस्थित और गरिमापूर्ण होता है और

---

1. Arene, T. Myers - A study i n Epic Development, p.9-11

8· उसका लक्ष्य मानवता को अशक्ति से शक्ति, अशांति से शांति और नीचे से उठाकर ऊँचे की ओर ले जाना होता है[1]।

निष्कर्ष

इससे महाकाव्य का मानव जीवन के साथ क्या संबन्ध है, उसकी अभ्युन्नति के साथ उसका क्या सम्बन्ध है इत्यादि बातें सुस्पष्ट हो जाती है। गेटे के अनुसार महाकाव्य मानवता को ऊँचा उठाता है, उसे शांति प्रदान करता है। सत्य के शाश्वत रूप का उद्घाटन महाकाव्य का प्रयोजन है। आकार प्रकार की विपुलता की अपेक्षा महाकाव्य की उपादेयता इस बात में है। उसका बाह्य स्वरूप सचमुच गौण है। मानवता के विकास में उसका योगदान ही प्रमुख है। कोई भी आधुनिक सहृदय महाकाव्य की इस महान शक्ति का इनकार नहीं कर सकता। इसलिए यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि महाकाव्य आज भी उतना ही उपादेय है जितना वह पुराने जमाने में था।

गीति काव्य - एक विवेचन

जैसा कि हमने प्रारंभ में प्रतिपादित किया, सूरसागर प्रबन्धात्मक होता हुआ भी गेय है, उसकी जन प्रियता का एक कारण गेयता भी है। संगीत सम्मिश्रित होने पर कविता किस प्रकार आह्लादकारिणी होती है, इसका प्रमाण है सूरसागर। कृष्णगाथा की भी महानता का रहस्य यही है। आज भी ये दोनों काव्य संगीत के साथ जुड़कर ही जनमानस को आंदोलित करते हैं। संगीत का सम्पर्क पाकर काव्य कितना हृदयग्राही हो सकता है इसके उदाहरण के रूप में सूर सागर और कृष्णगाथा दोनों को उद्धृत किया जा सकता है।

1· माताप्रसाद गुप्त - तुलसीदास [तृतीय संस्करण] - 1953 - पृ·367,368

प्रगीत विषयीगत कविता का एक अंग है । भारतीय साहित्य परंपरा में या संस्कृत काव्य शास्त्र में 'प्रगीत' या 'गीति काव्य' नाम से काव्य का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया, लेकिन गीत और गान शब्द आये हैं ।[1] इसका कारण यह नहीं कि संगीत अथवा गेय काव्य का प्राचीन भारत में यथोचित विकास नहीं हुआ था । हमारे देश में संगीत एक स्वतंत्र अध्ययन का विषय है जो अपने में संपूर्ण है । काव्य नाटक आदि उसकी सहायता ग्रहण करते रहे हैं । लेकिन उसका एक अपना अलग शास्त्र है और अध्ययन की अलग प्रणाली है । संभवतः इसी कारण साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने गीतकों को अपने अध्ययन का विषय नहीं बनाया ।

ग्रीक आचार्यों ने संगीत से समन्वित काव्य को लिरिक कहा है और उसका सबसे उत्तम नमूना सामूहिक संबोधन गीत में देखा है । वह आकार में छोटा होता है और कवि के किसी विचार या भाव का संवाहक होता है ।[2]

प्रगीत वह कविता है जो अपने मौलिक रूप में वाद्य यन्त्र पर गाये जाते थे ।[3] लेकिन वाद्य यन्त्रों के अभाव में भी प्रगीत में संगीतात्मकता अब भी बनी रहती है ।[4]

---

1. प्रो. विनयकुमार - तुलसी का प्रगीत काव्य - पृ.3
2. When speak of a 'Lyric' we mean a short Poem conveying some thought or sentiment of the poets own - Oxford Junior Encyclopaedia Vol. XII - The arts, p.247,248
3. Lyric poetry in the original meaning of the term was poetry composed to be sung to the accompaniment of Lyre or Harp - W.H. Hudson - The Study of literature (II Edn.) p.96
4. The Lyric that is no longer sung nor accompanied has not lost its music, the music is wrought into the poem in rhythm and rhyme and melodious sound pattern.
   Hudson - The Study of literature, p.98.

भावों की स्वतः स्फूर्त धारा ही प्रगीत का मुख्य गुण है[1]। जर्मन के महान दार्शनिक हीगल ने व्यक्तित्व की आत्माभिव्यंजना के साथ प्रगीत काव्य केलिए गीतात्मकता का होना भी आवश्यक बताया है। उनके अनुसार प्रगीत आन्तरिक भावों, आशा निराशा तथा उल्लास का संगीतमय चित्रण है। वह मानव जीवन के अन्तर की आशा निराशा, प्रसन्नता और दुख की कलात्मक अभिव्यक्ति है[2]।

प्रगीत तत्व

प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक ए.आर. एन्टविसल ने निम्न लिखित तत्वों को प्रगीत केलिए अनिवार्य रूप से आवश्यक माना है -

1. संगीतात्मकता
2. आत्मप्रधानता
3. उसमें एक ही भाव की अभिव्यक्ति होती है। उसकी भावात्मक अन्विति का रहस्य यही है।
4. वह स्वयं प्रसूत और पूर्व योजना रहित होती है।
5. आपेक्षिक दृष्टि से आकार में लघु।
6. अपने रूपों में अनन्त विभिन्नता वाली।
7. कलात्मक अभिव्यक्ति में भावों की सम्पूर्ति और
8. प्रायः उसमें पाठक को हठात् आकर्षित करनेवाली शोभा होती है[3]।

---

1. प्रो. विनयकुमार - तुलसी का प्रगीत काव्य - पृ.5

2. The Lyric has the function of revealing in terms of pure art the secrets of the inner life, its hopes, its fantastic joys, its sorrow, its delirium.

   Encyclopaedia Britanica (14 th Edn.) Vol.X.., p.532

3. 1. It is musical, metrically or verbally or both. 2. It is subjective in character. (3) It is expression of a single mood emotion and so acheve unity. (4) It is spontaneous, unpremeditated or rather appears so. (5 Compared with other t of poetry it is short. (6) It enjoys an endless variety of forms. (7) It is embellished with consummate (through conceale art. (8) There is often a wistful or haunting love liness which eludes all tastes. A.R. Entwistel - A study of poetry (1933) P.45,46

तत्वों के स्पष्टीकरण में एन्टविसल कुछ अधिक स्पष्ट रहे हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक गुलाबराय ने निम्न लिखित तत्व निर्धारित किये हैं -

1. निजी दृष्टिकोण
2. निजीपन में रागात्मकता
3. आत्म निवेदन के रूप में उसका प्रकटीकरण
4. तीव्रता के लिए छोटापन
5. संक्षिप्तता
6. भावों की अन्विति
7. विविधता और
8. कोमल कान्त पदावली।[1]

निजी दृष्टिकोण और उसमें रागात्मकता का समन्वय तो हडसन भी स्वीकार करता है। जहाँ तक गुलाबराय के संगीतात्मकता विषयक विचारों का प्रश्न है, वे प्रारंभ में ही 'प्रगीत गेय मुक्तक हैं' कहकर संगीत को एक आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं।

श्री रामखेलावन पाण्डेय ने कुछ अधिक स्पष्टता से गीति काव्य का विवेचन करने के उपरान्त उसके तत्वों की ओर ध्यान दिलाया है।[2]

प्रारंभिक रूप में गीत गेये थे।[3] यही आगे चलकर परिष्कृत प्रगीत के जन्म का कारण बना।

---

1. गुलाबराय - काव्य के रूप - पृ.107
2. रामखेलावन पाण्डेय - गीति काव्य - पृ.36
3. In the earliest times it may be said that all poetry was of its essence Lyrical.
   Encyclopaedia Britannica (14th Edn.) Vol.XIV, p.532

गीति काव्य अनुभूति प्रधान काव्य है । इसमें सामान्य वर्णन किसी घटना, तथ्य या भाव का न होकर कवि की अनुभूति के माध्यम से प्रकट होता है । अतः उसका तीव्र प्रभाव पड़ता है । इसके अन्तर्गत कवि की आत्मा और भावनायें झाँकती है । अतः स्वानुभूति गीति काव्य का प्रधान तथ्य है[1] । अनुभूति की तीव्रता में कवि के उद्गार सहज प्रवाहित हो उठते हैं ।

गीति काव्य की विशेषतायें

गीति काव्य की विशेषतायें हैं[2] -

1. गीति काव्य गाये जाने योग्य होना चाहिए ।
2. इसमें स्वानुभूति का प्रकाशन होना चाहिए ।
3. इसमें सुकुमार भावों की घनीभूत तीव्र अभिव्यक्ति होनी चाहिए ।
4. एक पद में एक ही भाव की विवृत्ति होनी चाहिए ।

संगीत की स्वरलहरियों के आरोह अवरोह पर जब कविता के कमनीय चरण नृत्य करने लगते है, कवि की भावानुभूतियों की सौन्दर्य भागीरथी में जब संगीत की मधुर कालिन्दी आ मिलती है, तब गीत का जन्म होता है । संक्षेप में गीत का वैभव है उसकी आकारगत लघुता, तीव्र भावसंकुलता, आत्माभिव्यंजना, संगीतात्मकता निर्बन्धता एवं प्रभावगत एकरूपता ।

ऊपर बताये गये काव्य लक्षणों के आधार पर कृष्णगाथा और सूरसागर की परीक्षा करना आवश्यक है ।

---

1. डॉ॰ भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र (द्वितीय संस्करण) - पृ॰69
2. डॉ॰ वही - पृ॰69,70

कृष्णगाथा एक महाकाव्य

भारतीय साहित्याचार्यों द्वारा प्रबन्ध काव्य केलिए निर्धारित सभी लक्षण कृष्णगाथा में मिलते हैं । केवल दो एक का अभाव है । जैसे, प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर आने वाले सर्ग की कथा की सूचना नहीं है । छन्द परिवर्तन भी उसमें नहीं मिलता । किन्तु यह कोई प्रमुख अंतर नहीं है । वृत्त वैविध्य केलिए यह आग्रह महाकाव्यों में अपेक्षाकृत बाद में विकसित हुआ[1] ।

कृष्णगाथा में 47 अध्याय हैं, जो वस्तुतः सर्ग ही हैं । कथावस्तु पौराणिक है और काफी प्रसिद्ध भी । काव्य का नायक विष्णु का पूर्ण अवतार श्री कृष्ण है । मुख्य रस गाथा में शृंगार है । वात्सल्य, हास्य आदि अंगभूत हैं । इनका विस्तृत विवेचन अन्यत्र हुआ है । प्रकृति चित्रण प्रचुर मात्रा में है । काव्य का नामकरण नायक के नाम के आधार पर किया है । स्पष्ट है कि भारतीय लक्षणों के आधार पर कृष्णगाथा महाकाव्य की कोटि में आती है ।

पश्चिम के लक्षणों के अनुसार कृष्णगाथा

अब पश्चिम के साहित्याचार्यों के लक्षणों के अनुसार कृष्णगाथा की परीक्षा करेंगे ।

1. कृष्णगाथा का देशकाल एक कल्पनामण्डित अतीत से सम्बद्ध है । विष्णु का पूर्ण अवतार कृष्ण ने "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां" धरती में जिस युग में अवतार लिया था उस युग को कृष्णगाथाकार ने अपना काव्य काल चुन लिया है । चेरुश्शेरी से सहस्रों वर्ष पूर्व इस अतीत के अधिकांश का निर्माण हो चुका था, कदाचित् व्यास को भी बहुत कुछ निर्मित ही मिला होगा ।

---

1. माताप्रसाद गुप्त - तुलसीदास [तृतीय सं.] 1953 - पृ.366

पीछे अवतारवाद ने इस चित्र को और भी पूर्ण कर दिया । कृष्णायन का यह अतीत जितना रहस्यपूर्ण है, उतना ही भव्य भी है । कृष्ण के मुरलीवादन का जो वर्णन कवि ने किया है, वही इस अतीत की भव्यता केलिए पर्याप्त प्रमाण है, यद्यपि संपूर्ण काव्य में इस भव्यता के प्रमाण मिलते हैं ।

2· कृष्णायन के कथानक के महिमा मंडित होने के संबन्ध में कोई संदेह नहीं, क्योंकि उसमें स्वयं कृष्ण की कथा है । सारा भूतल जिस समय राक्षसों और असुरों से आक्रांत हो रहा था, अधर्म की वृद्धि हो रही थी, उनका दमन करके "धर्म संस्थापन" केलिए कृष्ण का अवतार होता है और सारी कथा इस महान घटना को लेकर लिखी गई है । इसमें संघर्ष स्वभावतः आया है और नायक कृष्ण अपने आदर्शों के साथ इस संघर्ष में विजयी हो जाते हैं । अति प्राकृत शक्तियाँ और सर्वाधिष्ठात्री नियति इसमें भाग लेती है और वे नायक की सहायता भी करती है ।

3· कृष्णायन में जीवन की एक अत्यन्त विस्तृत भूमिका ली जाती है इतनी विस्तृत भूमिका कम ही महाकाव्यों में मिलेगी । यही कारण है कि कृष्णायन जीवन की एक व्यापक और गंभीर आलोचना प्रस्तुत करती है, और अपनी इस विशेषता में संसार के किसी भी महाकाव्य से टक्कर ले सकती है ।

4· कृष्णायन का व्यापार - पूतना, कालीय, कंस जैसे क्रूरों का दमन - महत्वपूर्ण है, क्योंकि समस्त भूतल पूतना, कालीय और कंस की नृशंसता और उनके अत्याचारों से त्रस्त रह गया है और उनके दमन से लाभ होता है ही, वर्णन प्रचुरता भी स्थान स्थान पर मिलती है । प्रासंगिक कथायें भी बीच बीच में आई है फिर भी वस्तुगत संगठन शिथिल नहीं हुआ है ।

5· कृष्णायन का नायक अपनी महानता में कदाचित संसार के समस्त महाकाव्यों के नायकों से अधिक महान माना जा सकता है । वह भारत जैसे महान देश ही नहीं उसके महान आदर्शों का भी प्रतिनिधित्व करता है । ये आदर्श हैं व्यवस्था, नैतिकता, धार्मिकता, आस्तिकता, त्याग और उदारता ।

नायक की विजय के साथ इन आदर्शों की भी विजय होती है ।

6· कृष्णगाथा की शैली उसके कथानक के अनुरूप ही गरिमापूर्ण है और वह अपने सात्विक आदर्शों के अनुरूप ही ऋजु, सुबोध, सरस, रमणीय और ललित भी है - भाषा शैली प्रकरण में इसका विस्तृत विवेचन होगा ।

7· कृष्णगाथा के प्रबन्धत्व के सम्बन्ध में हम ऊपर देख ही चुके हैं कि वह सुगठित और सुव्यवस्थित है । उसके गरिमापूर्ण और सात्विक होने के सम्बन्ध में कोई संदेह ही नहीं ।

8· कृष्णगाथा का लक्ष्य भी उच्च है । मानवता को अकिंचन से संचित, अशान्ति से शान्ति और नीचे से ऊपर की ओर ले जाना ही उसका लक्ष्य है ।

पाश्चात्य तथा भारतीय दोनों सिद्धान्तों के आधार पर यह प्रमाणित हो जाता है कि कृष्णगाथा अत्यन्त सशक्त, सफल तथा सरस प्रबन्ध काव्य है ।

<u>कृष्णगाथा में गेयत्व</u>

कृष्ण का चरित्र गीति काव्य केलिए अत्यन्त उपयुक्त है और निस्संदेह भारतीय साहित्य का उत्कृष्टतम गीति काव्य कृष्ण के चरित्र को लेकर ही प्रणीत हुआ है । गाथाकार चेरुशेरी प्रबन्धात्मक पद्धति के साथ गीति शैली का सम्मिश्रण प्रयोग करते हैं । विषय अपने में मधुर है । उसे स्वर देने वाला कवि भी संगीत शास्त्र के पारंगत प्रतीत होते हैं । कृष्णगाथा की अभूतपूर्व सफलता का यही रहस्य है ।

1· टी· भास्करन - कृष्णगाथा पठनङ्ङल [कृष्णगाथा एक अध्ययन] - पृ·96

भाव प्रवणता और संगीतात्मकता उत्कृष्ट गीति काव्य केलिए आवश्यक है[1]। कृष्णगाथा के पदों में ये दोनों विशेषतायें प्राप्त हैं। विविध भावों की हृदयहारी व्यंजना गाथा के समस्त पदों में पाई जाती है। गीतकार के रूप में चेरुश्शेरी को विशेष सफलता मिली है[2]।

गीतिकार को शब्द प्रयोग में संगीतिक लय ताल निर्वाह का ध्यान तो रखना ही चाहिए, नहीं तो वह सफल गीतिकार हो ही नहीं सकता। चेरुश्शेरी में ताल लय का अपूर्व सामंजस्य मिलता है। शब्दयोजना का निर्वाह उसके अनुरूप ही गाथा में हुआ है। कवि ने गीतों को कुशलतापूर्वक तालबद्ध किया है। पदों की स्वरलहरी सरलता के साथ प्रवाहित की जाती है। वास्तव में चेरुश्शेरी की काव्यकौमुदी संगीत की सुषमा में जगमगा उठी है।

संक्षेप में, कृष्णगाथा की अपूर्व विशेषता यह है कि उसमें प्रबन्धत्व के साथ गेयत्व भी सुरक्षित रहता है। केरल के परिवारों में सन्ध्या वन्दन के अवसर पर गाथा के चुने हुए पदों का भक्ति पूर्वक गायन होता है। अतः कृष्णगाथा सफल महाकाव्य तो है ही, वह अत्यन्त सफल गेय काव्य भी है।

सूरसागर एक गीति काव्य

यह सुविदित है कि शिल्प की दृष्टि से सूरसागर गीति काव्य है। यह कहना असंगत न होगा कि सूरदास ने विद्यापति के माधुर्य भाव का विस्तार कर शुद्ध प्रगीत काव्य की रचना की है।

---

1. A.K. Enristel - A study of poetry (1933) - p.46
2. टी. भास्करन - कृष्णगाथा एक अध्ययन - पृ.97

प्रगीत काव्य की मुख्य विशेषता माधुर्य है - यह हमने पहले देख लिया। सूरसागर में मधुर भाषा का पूर्ण निर्वाह मिलता है। उसकी भाषा - ब्रज भाषा - स्वयं मधुरिमा केलिए प्रसिद्ध है और वह सूर के व्यक्तित्व का माधुर्य पाकर अधिकाधिक मधुर हुई है। संगीत की अन्तर्निहित धारा उसे अधिक सुकुमार बना देती है। सूर के पदों को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि "हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मन्दाकिनी की हिलती लहरों का स्वर्गानुभव कर रहे हैं[1]।" सूरदास तो स्वयं गानाचार्य थे। उन्होंने जितने पद लिखे हैं, उनमें संगीत की ध्वनि इतनी सुकुमार रीति से समाई है कि वे पद संगीत के जीते जागते अवतार हो गए हैं। कोमलता ने प्रत्येक शब्द में वास कर लिया है[2]।

सूर के गीतों में संगीत का शास्त्रीय विधान सुरक्षित है। पं. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सूरसागर में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी। इससे वह संगीत प्रेमियों केलिए बड़ा भारी खजाना है[3]।

सूरसागर के पदों में भाव सारल्य के साथ भाषा की सरलता एवं शब्द योजना के साथ स्वर, ताल, लय और राग के सुन्दर समन्वय की शक्ति है। जिस काव्य में ये सब विशेषतायें हैं वह काव्य उत्तम ही है।

सर्व सम्मत रूप से गीति काव्य की मुख्यतम आवश्यकता भावुकता अथवा भावातिरेकता है[4]। जीवन के किसी क्षण की भावुकतापूर्ण अनुभूति और अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य का निर्माण करती है[5]। उसके और भी उपादान हैं। इनमें संगीतात्मकता का स्थान महत्वपूर्ण है[6]। संगीतात्मकता की दृष्टि से सूरसागर मे

---

1. डॉ. रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ. 537
2. वही - पृ. 538
3. पं. रामचन्द्र शुक्ल - सूरदास [तृतीय सं.] - पृ. 200
4. डॉ. भगीरथ मिश्र - काव्यशास्त्र [द्वि. सं.] - पृ. 69
5. वही - पृ. 69
6. माताप्रसाद गुप्त - तुलसीदास [तृतीय सं.] - पृ. 37।

पद अनुपम है । संगीत विषयक इस ज्ञान की कसौटी पर जब सूर कसे जाते हैं, तब वे सर्वश्रेष्ठ निकलते हैं । वास्तव में यदि काव्य और संगीत का सच्चा समन्वय कोई कर सका है तो वह सूर ही है[1] ।

आचार्य वल्लभ के मुख्य गायक होने के कारण, स्वयं दृष्टि शक्ति से रहित रहने के कारण, सूर को गीत की अनन्य माधुरी में मग्न होने का अवसर सहज ही मिल गया । स्वयं वे तो उच्चकोटि के भक्त और कवि भी थे ।

सूरसागर में प्रबन्धत्व

सूर का काव्य यद्यपि अधिकतर गीतिबद्ध है, पर साथ ही छोटे छोटे कथा प्रसंग और घटनायें भी गीतों के भीतर वर्णित हैं । यदि हम सूरसागर के दशम स्कन्ध को ही लें तो उसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर बाल्य और किशोर वय की विविध लीलाओं तथा मथुरा गमन कंस वध आदि मुख्य घटनाओं का वर्णन पायेंगे ।

साधारण मुक्तक गीतों में प्रसंगों को परस्पर जोड़नेवाला कोई क्रमबद्ध सूत्र नहीं मिलता । लेकिन सूर सागर में यह अवश्य मिलता है । यह सूरसागर की अपनी विशेषता है ।

गीति शैली की पाँचों विशेषतायें - भावात्मकता, वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता एवं भाषा की कोमलता - हमने ऊपर प्रतिपादित की है सूर काव्य में ये सब पूर्ण रूप से मिलती हैं[2] ।

1· श्री शिखरचन्द्र जैन - सूर एक अध्ययन - पृ·37

2· डॉ· गणपति चन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ·299

सूरसारावली और साहित्य लहरी की अपेक्षा सूरसागर के गीतों की शैली में अधिक एकरूपता मिलती है । मधुरता, सालित्य तथा प्रवाह भी सूरसागर में पूर्णरूप से विद्यमान हैं ।

सूरसागर की कथा बारह स्कन्धों में व्याप्त है । प्रबन्ध काव्य के सर्गों से स्कन्धों की तुलना की जा सकती है। । कथावस्तु पौराणिक है जो प्रबन्ध काव्य के अनुरूप है । सूरसागर का नायक कृष्ण विष्णु का पूर्ण अवतार है और धीरोदात्त भी है । सूरसागर का अंगी रस शृंगार है । वात्सल्य, हास्य, वीर, करुण आदि रस भी बीच बीच में आते हैं । धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की प्राप्ति इसके लक्ष्य हैं । वस्तुवर्णन, प्रकृति चित्रण आदि जितनी बातें महाकाव्य केलिए आवश्यक हैं वे सब सूर सागर में मिलते हैं । अतः प्रबन्ध काव्य के पाश्चात्य और भारतीय सभी लक्षण सूरसागर में विद्यमान हैं । इसलिए सूर सागर को प्रबन्ध काव्य मानने में कोई अनौचित्य नहीं । फिर भी इतना अवश्य मानना चाहिए कि वह साधारण कोटि का प्रबन्ध काव्य नहीं । रचना इसकी मुक्तक गीतों के रूप में ही हुई है, भले ही कथा का सूत्र अवश्य रूप से अव्याहत रहता है । प्रबन्धत्व और गेयत्व की यह समवाय स्थिति अन्यत्र दुर्लभ है ।

ऊपर बताये गये प्रबन्ध काव्य और गीतिकाव्य के लक्षणों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सूरसागर और कृष्णगाथा में प्रबन्ध काव्य और गीतिकाव्य दोनों के लक्षण साथ साथ वर्तमान है ।

---

1. प्रबन्ध काव्य की विशेषतायें पहले बताया गया है ।

भाषा शैली

भाषा —

भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृत्तन्त्री की झंकार है, जिसमें वह अभिव्यक्ति पाता है। विश्व की सभ्यता के विकास के साथ वाणी का भी विकास होता रहता है[1]। कवि की रचना समुचित भाषा से समन्वित हो अधिक सौन्दर्यमयी और प्रभावोत्पादक हो जाती है। भाषा कवि के भावों को गतिशील और संवेदनशील बनाती है। काव्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है भाषा[2]। भाषा के बिना काव्य की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती।

प्रतिभा संपन्न कवि के प्रत्येक शब्द में भावानुदर्शन की आश्चर्यजनक शक्ति होती है। उसका उस शब्दावली पर इतना अधिकार होता है कि उसका संकेत पाकर एक ही शब्द अनेक अर्थों का वहन करता है।

कवि की भाषा में यह समर्थता होनी चाहिए कि उसके द्वारा संप्रेषित शब्द चित्र पाठकों के हृदयपट पर अंकित हो जाय[3]। काव्य का श्रोता उसके प्रवाह में बह जाय। भाषा के इन गुणों से काव्य में गति, वेग, लय आदि की प्रतिष्ठा होती है और उसमें माधुर्य ओज तथा प्रसाद गुणों का समावेश होता है। नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है[4]।

काव्य भाषा और सामान्य भाषा

काव्य भाषा और सामान्य भाषा दोनों में अंतर है। "काव्य भाषा में भाषा शिल्प का प्रयोग होता है, उसमें ललित कल्पना की क्रीडा होती है

---

1. सुमित्रानन्दन पंत - पल्लव - पृ.19
2. अरिस्टोटल्स थियरी आफ पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट्स - एस.एच.बूचर - पृ.
3. रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि पहला भाग [1907] - पृ.140
4. वही - पृ.144

जो श्रोता के मन का अनुरंजन करती है।[1]" लेकिन सामान्य भाषा में यह विशेषता नहीं होती। भाव की झंकार काव्य भाषा से प्राप्त होती है। उसमें शब्द विन्यास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। युग विशेष के अनुरूप भावना के क्षेत्र में क्रान्ति का आगमन होता है तो भाषा भी तदनुरूप बदल जाती है। भाषा को भावना के साथ में ढलना पड़ता है। भाषा को रूप देते समय कवि सतर्क रहते हैं।

शैली —

शैली की सुन्दरता और महत्ता उसके अलावा - भाषा की समृद्धि पर निर्भर है[2]। भाषा की समृद्धि की पहचान शब्द भण्डार और शब्दार्थ बहुलता से की जा सकती है। अतः भाषा शैली के विवेचन में कवि के शब्द भण्डार और उसके विविध प्रयोगों पर विचार करना भी आवश्यक है। कवि के शब्द प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी व्यापक संग्राहक शक्ति।

शैली शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के शील [शील] से मानी जाती है[3]। "शील" के अनेक अर्थ हैं - स्वभाव, लक्षण, झुकाव, आदत, चरित्र आदि[4]। शील का सम्बन्ध व्यक्ति की विभिन्न वैयक्तिक विशेषताओं से है।

शब्दकोष के अनुसार शैली के अर्थ हैं - चाल, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा, वाक्य रचना का विशिष्ट प्रकार आदि[5]।

---

1. अरस्तु का काव्यशास्त्र - डॉ. नगेन्द्र - पृ.142
2. द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूर निर्णय [तृतीय संस्करण] पृ.269
3. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी काव्यालंकार - सुकवि कृत भूमिका - पृ.54
4. द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी - संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ
5. श्रीरामचन्द्रवर्मा - प्रामाणिक हिन्दी शब्द कोष

आधुनिक युग में शैली शब्द का प्रयोग अँग्रेज़ी के "स्टाइल" शब्द के समानार्थक हो रहा है । स्टाइल की व्याख्या अनेक प्रकार से की जाती है । शैली भाषा की वह विशेषता है जिसके सहारे लेखक भावों और विचारों का यथार्थ प्रेषण करने में समर्थ हो सके[1] । इस प्रकार शैली में उपयुक्त प्रेषण विधान आवश्यक गुण है । शापनहावर ने बताया है - शैली आत्मा की मुखाकृति शास्त्र {सामुद्रिक} है[2] ।

श्री हॉलिंगवर्थ ने बताया है "जो शैली उद्देश्य के अनुयोज्य है वह अच्छी शैली है[3] ।" वे फिर लिखते हैं - अच्छी शैली अन्तर और सादृश्य का उत्कृष्ट उपयोग करते हैं[4] ।

अरस्तु ने शैली के महत्व को असंदिग्ध शब्दों में स्वीकार किया है - केवल वर्ण्य विषय पर अधिकार होना पर्याप्त नहीं, किन्तु यह आवश्यक है कि हम उसको उचित रीति से प्रस्तुत करें, और इससे वाणी में वैशिष्ट्य {चमत्कार} का समावेश होता है[5] ।

अरस्तु के अनुसार शैली के दो मूल गुण हैं - स्पष्टता {प्रसाद} और औचित्य[6] । शैली काव्य के बाह्य रूप को अलंकृत करने के अतिरिक्त उसके भावगत रूप को भी विकसित करती है[7] ।

---

1. Style is a quality of language which communicatés precisely emotions or thoughts peculiar to the author - - The Problism of style - p.34
2. Style is the Physiognomy of the soul - Shopenhewr - From Encyclopedia of Britanica - Vol.21 p.408
3. A good style is one that is suitable for its purpose - Holling worth - A primer of literagy Criticism (II Edn.) 1937 p.8
4. Good style is in the main a matter of the perfect use of contrast and similarity - Holling worth - A primer of literary criticism, p.10
5. अरस्तु का काव्य शास्त्र - डॉ॰ नगेन्द्र - पृ॰147
6. वही - पृ॰148
7. डॉ॰ गोविन्द त्रिगुणायत - पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धान्त - भाग-1, पृ॰97

किसी भी कवि का व्यक्तित्व उसकी भाषा शैली के द्वारा प्रकट होता है । गेटे ने बताया है - किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है[1]। काव्य से कवि को समझ सकते हैं । हडसन ने इस बात को इस प्रकार लिखा है - शैलीगत, बौद्धिक, भावात्मक और सौन्दर्यात्मक सभी विशेषतायें लेखक की प्रतिभा और चरित्र सम्बन्धी विशेषताओं से प्रच्छन्न रूप से संयुक्त रहती हैं । अतः शैली का वैज्ञानिक अध्ययन लेखक के व्यक्तित्व के अध्ययन में भी सहायक होता है[2]।

कवि को ऐसी भाषा शैली स्वीकार करनी चाहिए जिसे सब कोई सहज ही समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सके । काव्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाए तो विशेष आनन्द प्राप्त होता है ।

सूर और वेलोरी की भाषा

सूर और वेलोरी दोनों ने अपनी अपनी काव्यभाषा के प्रयोग में बड़ी सावधानी से काम लिया है । दोनों की भाषायें चिरकाल से जन हृदय पर प्रतिष्ठित थीं । भावाभिव्यक्ति के लिए उनसे अधिक उपयुक्त भाषा स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता था । भाषा की नैसर्गिक शक्ति के सम्बन्ध में दोनों का ज्ञान गहरा था । सूर तथा वेलोरी ने भाषा को इस रूप में परिमार्जित किया कि उनकी शैली ही अन्य कवियों से अलग हो गई ।

अतः हम दोनों की भाषा तथा शैली पर विचार करेंगे ।

---

1. An authors style is a faithful copy of his mind - T. Edwards - The new Dictionary of thought.

2. For us the intellectual, emotional and aesthetic qualities of any mans writings will relate themselves at bottom to all the personal qualities of his genius and character and thus the technical study of his style become an aid of the individuality embodied in his work.
Hudson - An Introduction to the study of Literature - p.114

ब्रजभाषा

सूर साहित्य की भाषा ब्रज है और वह साधारण बोलचाल की भाषा से भिन्न है - इसमें कोई संदेह नहीं[1]। पं० कृष्ण बिहारी मिश्र ने ब्रज भाषा के सम्बन्ध में लिखा है - "ब्रज भाषा में मौलिक वर्ण बहुत कम व्यवहृत होते हैं उसी प्रकार उस भाषा में दीर्घान्त शब्दों का प्रयोग भी अधिक नहीं है[2]।" रौद्र वीर आदि रसों के प्रकरण में कर्णकटु "ट" वर्ग का प्रयोग ब्रज में होता है, लेकिन अन्य रसों के प्रकरण में उसको बचाया गया है। यह इस भाषा की बड़ी भारी विशेषता है। इस कारण ब्रजभाषा भाषा शास्त्र के स्वाभाविक नियमानुसार बड़ी ही श्रुति मधुर भाषा है। स्पष्ट है ब्रज भाषा में जो स्वाभाविक माधुर्य, ओज और कमनीयता है वह अन्य भाषाओं में नहीं। इसी माधुर्य के कारण केवल भक्ति काल के कृष्ण भक्त कवियों ने ही नहीं, रीति काल के संपूर्ण कवियों ने और यहाँ तक कि आधुनिक काल के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र शुक्ल, वियोगी हरि, बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर जैसे कवियों ने भी ब्रज भाषा में काव्य रचना की है।

इस प्रकार सूर के हृदय सरोवर से प्रवाहित होनेवाली ब्रज-काव्य-भागीरथी क्रमश: अधिक गतिशील और प्रशस्त होकर लगभग दो शताब्दी तक हिन्दी काव्य साहित्य को परिप्लावित करती रही और आज के खड़ीबोली के युग में भी यह हिन्दी काव्य रसिकों के आकर्षण का विषय बनी हुई है। इसका प्रधान कारण उसका स्वाभाविक माधुर्य और अमिट प्रभाव ही है।

ब्रज काव्य की भाषा बहुत प्राचीन काल में बन चुकी थी। यह हिन्दी की काव्य भाषा का पूर्ण रूप है। ढाँचा पश्चिमी होने पर भी यह काव्य सामान्य भाषा थी जिसका प्रचार सारे उत्तरापथ में था[3]। सन् 1200 से 1850 ई० तक के सुदीर्घ काल में ब्रजभाषा अधिकांश उत्तरीभारत, मध्यभारत तथा राजस्थान

1• रामचन्द्रशुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ•162
   कृष्णलाल हंस - सूरदर्शन - पृ•268
2• कृष्ण बिहारी मिश्र - देव और बिहारी - पृ• 167
3• रामचन्द्रशुक्ल - बुद्ध चरित - भूमिका - पृ•3

और कुछ हद तक पंजाब की भी सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बनी रही[1]।

इस प्रकार जिस भाषा में सूर काव्य की रचना हुई है, उसका जन्म सूरदास से 500 वर्ष पूर्व हुआ था[2]। उसमें साहित्य रचना भी कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व से हो रही थी, तथापि उसे व्यवस्थित भाषा का रूप सूरदास की रचनाओं से ही प्राप्त हुआ है[3]।

संदेश रासक, पृथ्वीराजरासो, कीर्तिलता आदि में ब्रज भाषा का वैसा व्यवस्थित रूप नहीं मिलता जैसा सूर और उनके सहयोगी कवियों की रचनाओं में है। धीरेन्द्रवर्मा ने स्पष्ट कहा है कि पृथ्वीराजरासो की भाषा मध्यकालीन ब्रजभाषा है, राजस्थानी नहीं[4]। डॉ॰ ग्रियर्सन भी चन्दबरदाई को ब्रजभाषा का प्रथम कवि मानते हैं[5]। इन रचनाओं से यह स्पष्ट है कि सूरदास से पहले ही राजस्थान से अवध तक और दिल्ली से ग्वालियर तक के विस्तृत भूभाग में ब्रजभाषा प्रचलित थी और उसमें काव्य रचना होती थी।

सूर की भाषा

सूर ही साहित्यिक ब्रज भाषा के प्रथम प्रयोक्ता हैं। उन्होंने सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है। उनके पूर्व भी ब्रज भाषा का साहित्यिक रूप दृष्टिपथ में आता है[6]। फिर भी परिनिष्ठित साहित्यिक ब्रज

1· डॉ॰सुनीति कुमार चैटर्जी - भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी [1954] पृ॰195

2· डॉ॰ मुरारिलाल शर्मा सुरस - हिन्दी कृष्ण काव्य परंपरा का स्वरूप और विकास [1977] पृ॰305

3· हरिवंशदास पारीख तथा प्रभुदयाल मीतल - सूर निर्णय [तृतीय सं॰] पृ॰270

4· डॉ॰ धीरेन्द्रवर्मा - ब्रजभाषा [1954] - पृ॰21

5· Linguistic survey of India Vol.IX Part - I, p.71-73

6· रामचन्द्रशुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰162

सूर की रचनाओं में ही प्रधानत: मिलता है । सूरसागर की भाषा का महत्त्व इसलिए है कि "चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित है[1] ।"

सूर की पदावली कोमल है । वह प्रवाहमयी और सजीव है । वह भावों के अनुरूप बदलती है । दृष्टकूटों की क्लिष्टतामयी भाषा को सूर की भाषा का मापदण्ड नहीं कहा जा सकता । उनकी भाषा स्वभावत: आडंबरविहीन व्यावहारिक और प्रवाहसरल का चित्रण करनेवाली है ।

ब्रज की चलती बोली में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग करके सूर ने ब्रज भाषा को उत्तर भारत में अभिव्याप्त कर दिया । दक्षिण पूर्व और पश्चिम में भी उसके प्रसार को सूर ने ही सुगम बनाया[2] । वैष्णव धर्म की संदेशवाहिनी बन कर वह एक ओर तो बंग, गुजरात एवं महाराष्ट्र में समादृत हुई और दूसरी ओर अपनी कोमलता के कारण वह अवध, बिहार, पंजाब तथा दक्षिणापथ के कवियों का कंठहार बनी । इस देश में लगभग चार सौ वर्षों तक उसने कवियों की जिह्वा पर शासन किया । उसमें पद्य तथा गद्य दोनों ही प्रचुर मात्रा में लिखे गये हैं ।

सूरदास ब्रजभाषा के वेदव्यास हैं । उनके अगाध भावनाओं से उद्वेलित सूरसागर से हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी उपबोलियों के शताधिक कवियों और साहित्यकारों ने उपजीव्य प्रसाद पाया है[3] ।

सूरसागर में तत्सम, अर्द्ध तत्सम, तद्भव तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग मिलता है ।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰160
2. डॉ॰ मुंशीरामशर्मा - सूर सौरभ [चतुर्थ संस्करण] - पृ॰175
3. बालमुकुन्द चतुर्वेदी - सप्त तरङ्गात्मक सूरसागर - भूमिका - पृ॰9

तत्सम शब्द

रूप-चित्रण, मुरलीवादन, नृत्य वर्णन आदि प्रसंगों में तत्सम शब्दों की प्रचुरता है । जहाँ जहाँ कवि कल्पना की ऊँची उड़ान प्रदर्शित करता है, वहाँ उसकी शब्दावली तत्सम प्रधान हो जाती है । भावों के चित्रण में भी जहाँ परंपरागत कल्पना के सहारे भावोन्मेष और भावोत्कर्ष दिखाया गया है वहाँ तत्समता की प्रधानता हो गई है । ये प्रयोग काव्य को साहित्यिक परंपरा के अनुरूप उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करने में सहायक हैं । उदाहरण -

गिरिधर, ब्रज धर, माधव मुरली धर,
धरनी धर, पीताम्बर धर ।
संख चक्र धर गदा पद्मधर, सीस मुकुट
धर, अधर सुधा धर ।
कंबु कंठधर, कौस्तुभ मनिधर, बनमाला धर,
मुक्त मालाधर ।
सूरदास प्रभु गोप वेषधर, कालीफन पर
चरन कमल धर ।

अर्द्ध तत्सम शब्द

सूरदास ने शब्दों के प्रयोग में वर्ण्यविषय का सदैव ध्यान रखा है । विषयों के अनुरूप ही शब्दावली चुन ली है । अर्द्ध तत्सम शब्द अधिकतर लीला प्रेम के प्रसंगों में आते हैं । सूर के अर्द्ध तत्सम शब्दों की मधुरिमा अनुकरणीय है ।

1• सूरसागर - 1190

यह शब्दावली और शैली कवि के उच्च धार्मिक और शिष्ट साहित्यिक व्यक्तित्व का अविदग्ध प्रमाण उपस्थित करती है।[1]

तद्भव शब्द

भाषा में स्वभावतया तद्भव शब्दों की संख्या अधिक है। सूरकाव्य में तद्भव शब्दों की बहुलता है। उसमें व्यावहारिक भाषा की स्वाभाविकता के साथ एक प्रकार की सहज आडंबरहीन सरसता भी मिलती है। बोलचाल की भाषा में मार्मिक, व्यंग्यपूर्ण, गंभीर और सूक्ष्म भावों का व्यक्तीकरण कवि की अनुपम विशेषता है। सूर के पदों में ब्रज भाषा का सहज सौन्दर्य निखर आया है।

तद्भव शब्दों के प्रयोग में सूर विशेष सफल हैं। समस्त पदों के निर्माण में कवि ने अत्यन्त स्वतंत्रता का परिचय दिया है। पर यह स्वतंत्रता भावव्यंजना में कहीं भी बाधक नहीं बनी है।

अजगरी, अटारी, अनखाते, अनभावत, काठ, कापरा, पायस, परसना, सियार, सिकहर आदि सूरसागर में प्रयुक्त तद्भव शब्द के कुछ उदाहरण हैं।

विदेशी भाषाओं के शब्द

सूर ने अरबी फारसी जैसे विदेशी भाषाओं के प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता पूर्वक प्रयोग किया है। परन्तु उनकी विदेशी ध्वनियों को देशी भाषा की ध्वनियों के अनुकूल बदल दिया है। वह समय मुस्लिम शासन का था। इसलिए स्वाभाविक है कि उनकी रचना में शासन प्रबंध और राजदरबार संबन्धी शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। कुछ उदाहरण अमल, अमीन, अरज, इखलास, इलम, तगीरी, तमकीर, मस मदका आदि फारसी के शब्द हैं।

---

1. ब्रजेश्वरवर्मा - सूरदास [तृतीय संस्करण] - पृ.563

प्रान्तीय भाषाओं के शब्द

सूर ने अवधी, पंजाबी, बुंदेलखंडी आदि प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों को भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । अवधी के मोर, तोर, केरो, तेरी, मेरो, जिमि आदि शब्दों का प्रयोग तो अनेक स्थानों में मिलता है ।

पात्रोचित भाषा

सूर ने शब्दों के प्रयोग में पात्र और परिस्थिति का सर्वत्र ध्यान रखा है । उन्होंने केवल चमत्कार को ध्यान में रखकर कहीं शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । उनका ध्यान शब्दों के अर्थ पर निरंतर रहा है । अपने काव्य में कभी कभी अभीष्ट अर्थ निकालने अथवा लय और तुक मिलाने के लिए शब्दों के रूप बदलने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया । इस दृष्टि से भाषा के साथ अत्यधिक स्वतंत्रता लेकर कहीं कहीं उसे कुरूप और दुर्गम भी बना दिया है । परन्तु विभिन्न उद्गमों के शब्दों का प्रयोग, नवीन शब्दों की रचना तथा अर्थ को व्यापक करके उन्होंने भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

संपन्न शब्द भंडार

सूरदास का शब्द भंडार अत्यन्त विपुल, शब्दचयन सर्वथा स्वाभाविक और विषयानुरूप है । शब्द प्रयोग बहुत ही व्यंजक और अर्थ गांभीर्यपूर्ण है । उसमें भावानुभव को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है[1] ।

---

1. व्रजेश्वरशर्मा - सूरदास [तृतीय संस्करण] - पृ.56।

प्रवाह

सूर की भाषा प्रवाहमयी है । उनके शब्द अपने आप आते हैं, वर्णन में वेग और प्रवाह भर देते हैं । उदाहरणार्थ -

भहरात झहरात दावानल आयो ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन,
धरनि आकास चहुँ पास छायो ।
बरत बन बाँस, थरहरत कुस काँस, जरि
उड़त है भाँस अति प्रबल धायो ।
झपटि झपटत लपट, फूल फल चट चटकि
फटत लट लटकि द्रुम द्रुम नवायो[1] ।।

इस पद में भाव प्रांजल रूप में प्रकट हुआ है । भाषा द्रुत गति के साथ बिना किसी अवरोध के आगे बढ़ती जाती है ।

ध्वन्यात्मकता

किसी भाषा को सजीव बनाने के लिए उसमें ध्वन्यात्मक शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता है । सूरसागर में ये विशेषतायें पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं ।

जब सूर की भाषा पर ध्यान देते हैं तो हमें आश्चर्य होता है । सूर ब्रजभाषा के प्रथम कवि माने जाते हैं । पर उनकी भाषा इतनी मंजी हुई, शक्तिशाली और साफ सुथरी है कि आलोचकों को यह कहना पड़ा कि सूर का काव्य बहुत दिनों से चली आती हुई किसी काव्य परंपरा का विकास है[2] ।

---

1. सूरसागर - 1214
2. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.160

सूर के कारण ब्रजभारती इतनी समृद्ध एवं आकर्षक हो गई कि वह भक्तिकाल की ही भाषा न रहकर रीतिकाल की भी सर्वादृत भाषा हो गई । यही नहीं द्विवेदी युग तक काव्य की एकमात्र भाषा वही बनी रही । आधुनिक युग में भी वह सहृदयतानुमोदन का पात्र बनी रहती है । वह केवल ब्रज क्षेत्र की भाषा न रहकर समस्त हिन्दी भाषी भारत की भाषा बन गई ।

सूर की शैली

गीतिशैली सूर को जयदेव गोवर्धनाचार्य, विद्यापति और कबीर से धरोहर के रूप में प्राप्त हुई थी[1] । गीति की शैली आत्माभिव्यंजना के लिए अत्यन्त समर्थ है । सूरसागर की भाषा शैली की सबसे प्रमुख विशेषता है उसकी विविधता और विचित्रता[2] ।

सूर की काव्य कौमुदी संगीत से सम्मिश्रित होकर जगमगा उठी है । सूर गायनकला में निपुण थे । आचार्य वल्लभ से दीक्षित होने के पश्चात् तो मानों साक्षात् वीणापाणि सरस्वती ही उनकी जिह्वा पर आकर बैठ गई । उस समय गीतों की जो अजस्र धारा प्रवाहित हुई उससे सूर का सागर लबालब भर गया । सूर के इस संगीत ने ब्रज भूमि को वंदनीय और ब्रजभाषा को वरेण्य बना दिया है ।

सूरदास की प्रकृति अत्यंत सरल, स्पष्ट, निष्कपट, निर्मल एवं ग्रामीण है । वह उनकी सरल स्वाभाविक, अनलंकृत और प्रवाहपूर्ण भाषा में प्रकट हुई है । उनकी अभिव्यंजना प्रणाली ऋजु, अव्यवहित और आडंबरहीन है । कभी कभी ग्राम्य एवं अश्लील शैली भी सूर में दृष्टिगत होती है । पर प्राय: सर्वत्र तत्सम शब्दावली की ही प्रचुरता है । उनकी आकर्षक शैली उनके उच्च संस्कार, सौन्दर्य प्रियता, संवेदनशीलता कल्पनाशक्ति और काव्यप्रतिभा का परिचय देती है ।

---

1. डॉ॰ मुंशीराम शर्मा - सूर सौरभ [चतुर्थ संस्करण] - पृ॰165
2. ब्रजेश्वरवर्मा - सूरदास [तृतीय संस्करण] - पृ॰543

भाषा के स्वाभाविक तद्भवप्रधान रूप के साथ तत्सम रूप का समन्वय करके कवि ने ब्रज का उच्च साहित्यिक रूप भी उपस्थित किया है । कवि के संपूर्ण श्रेष्ठ गुण - संयम, विनय, दीनता, दृढ़ता, धैर्य, गांभीर्य, भावुकता, कोमलता, चैतन्य और चातुर्य - भी उनकी भाषा एवं शैली में व्यक्त हुए हैं ।

सूरदास की रचनाओं में जिस ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है, वह समस्त साहित्यिक गुणों से युक्त एक समर्थ काव्य भाषा है । उन्होंने एक ही बात को अनेक प्रकारों और अनेक ढंगों से कहा है, फिर भी उनके कथन में पुनरुक्ति का आभास नहीं होने पाता है । सूर के कथन की यह विशिष्ट शैली और उसकी सफलता उनकी भाषा समृद्धि पर ही आधारित है । सूर जैसे शब्दों के धनी ही इस प्रकार की काव्य रचना कर सकते थे ।

सूरदास की कविता के अधिकांश विषय श्रृंगार एवं वात्सल्य से संबंधित है । अतः उनके काव्य में ओज की अपेक्षा प्रसाद एवं माधुर्य गुण ही अधिक परिमाण में है । इन गुणों के कारण कोमल कांत पदावली का बाहुल्य उनकी भाषा की पहली विशेषता है । उनकी भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें भावों के अनुरूप उपयुक्त शब्दों का संगठन है, जिसके कारण उनका कथन चित्र के समान पाठकों को आनन्दित करता है । उनकी भाषा की तीसरी विशेषता उनकी सार्थक शब्द योजना है, जिसका सफलतापूर्वक निर्वाह उनके अनेक पदों में आरंभ से अन्त तक किया गया है । उनकी चौथी विशेषता भाषा का धारावाही प्रवाह है जो संगीत के ताल स्वरों के कारण और भी आनन्ददायक हो गया है । उनकी भाषा की पांचवीं विशेषता यह है कि वह अत्यन्त चलती और सजीव है । भावों के अनुरूप विशिष्ट शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को बल एवं सजीवता प्राप्त प्राप्त होती है । ये बातें सूर की भाषा में प्रचुरता से मिलती हैं ।

चेल्लोरी की भाषा

मलयालम भाषा का विकास

भारत के दक्षिणांचल में सह्याद्रि और अरबसागर के मध्य कन्याकुमारी से गोकर्ण तक फैला हुआ भूखण्ड है केरल । भाषावार प्रान्तों के पुनर्गठन के परिणाम स्वरूप कन्याकुमारी जिला केरल से अलग करके तमिलनाडु से मिला दिया गया है । पूर्वीघाट की पर्वतमाला और वनस्थली की गोदी में सागर लहरों से परिप्लावित रहनेवाली इस भूमि की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ने इसके जनजीवन, इतिहास तथा संस्कृति को एक परिनिष्ठित व्यक्तित्व प्रदान किया है ।

केरल की भाषा का नाम "मलयालम" आपेक्षिक दृष्टि से अर्वाचीन शब्द है । प्रारंभ में यह देश वाचक शब्द था[1] । "मला" का अर्थ है पहाड़ । "अलम" का देश अथवा स्थान । मलयालम (पहाड़ी प्रदेश) धीरे धीरे मलयालम हो गया होगा[2] ।" "अलम" देशवाचक अन्यत्र भी देखा जाता है जैसे बंगाल नेपाल आदि ।

भाषा वैज्ञानिक मलयालम को द्राविड परिवार के अंतर्गत रखते हैं । कुछ विद्वानों के अनुसार मलयालम तमिल की एक शाखा है । कुछ लोग दोनों को एक ही मूल द्राविड भाषा से जनित मानते हैं[3] । कुछ विद्वानों ने मलयालम की उत्पत्ति संस्कृत से मानी है[4] । पर अधिकतर आधुनिक विद्वान इसे द्राविड परिवार के अंदर रखने के पक्ष में हैं ।

---

1. उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रम् - भाग-1, पृ.38
2. डॉ. रामचन्द्र देव - मलयालम साहित्य - पृ.17
3. द्वितीय अध्याय में "मलयालम का वैष्णव साहित्य" प्रकरण में मलयालम की काव्य भाषा के विकास का दिग्दर्शन कराया है ।
4. "संस्कृत हिमगिरि गलिता, द्राविडवाणी कालिंदजा मिलिता" -

   - इलंकुलं कुंजन पिल्ले-मीमांसिलकं - चौथा संस्करण - पृ.24

केरल के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता, भाषा विद् इलंकुल कुंजनपिल्ले लिखते हैं - मलयालम एक स्वतंत्र भाषा है और उसका जितना सम्बन्ध तमिल से है उतना या उससे अधिक सम्बन्ध संस्कृत से है । यदि वह अपने जन्म केलिए किसी की ऋणी है तो संस्कृत की[1] ।

केरल पुराने तमिलकम का एक अंश था । यहाँ की प्राचीन भाषा व्यापक अर्थ में तमिल थी । स्वभावतया यहाँ साहित्यिक रचनायें तमिल में ही आविर्भूत हुई । तमिल, संस्कृत तथा प्राकृत के संकलन से स्वतंत्र केरलीय भाषा का प्रारूप विकसित हुआ, लगभग नवम दशम शती में । प्राचीनतम साहित्यिक नमूने लोकगीतों, देवस्तोत्रों और वीरगीतों में सुरक्षित है ।

प्रस्तुत युग में केरल की प्रतिभा की अभिव्यक्ति तमिल के माध्यम से ही हुई । केरल में रचित तमिल ग्रन्थों में प्रसिद्ध है - मणि मेखला, अकनानूर, पुरनानूर आदि । प्रसिद्ध तमिल महाकाव्य "चिलप्पतिकारम् के रचयिता इलंकोवडिकल [दूसरी शती] केरल के युवराज थे[2] । सुप्रसिद्ध वैष्णव भक्त कवि कुलशेखर आलवार [आठवीं शती] स्वयं केरल के शासक थे[3] ।

संस्कृत में काव्य रचना करनेवाले प्रतिभा संपन्न कवि भी केरल में हुए हैं[4] संस्कृत काव्यों का अनुवाद भी निरंतर चलता रहा । इस प्रकार मलयालम मूल द्राविड भाषा से जन्म लेकर, प्रथमत: तमिल से तत्पश्चात् संस्कृत से परिमार्जित होकर शताब्दियों का संतरण करते हुए आधुनिक प्रौढ अवस्था को पहुँच चुकी है । प्रादेशिक प्रभेद मलयालम में भी है । पर उसका साहित्यिक स्वरूप सर्वत्र समान ही रहता है ।

1· लीलातिलकं [चतुर्थ संस्करण] भूमिका - पृ·26

2· ए· श्रीधर मेनवन - केरल चरित्रं - पृ·35

3· वही - पृ·30

4· डॉ· के·के· राजा - दि कान्ट्रिब्यूशन आफ केरला टु संस्कृट लिटरेचर - पृ·43

शुद्ध मलयालम की प्रथम रचना

शुद्ध मलयालम भाषा में प्रणीत प्रथम महाकाव्य है कृष्णगाथा । शुद्ध काव्य भाषा से तात्पर्य ऐसी भाषा से है जो संस्कृत के अतिप्रभाव से मुक्त तथा तमिल के दबाव से स्वतंत्र हो । वह अत्यन्त सरल, सुगम, सुबोध और जनजीवन के अधिक निकट रहती है । कृष्णगाथा की भाषा में संस्कृत के शब्दों का सर्वथा अभाव नहीं है । द्राविड शब्द भी उसमें हैं । लेकिन ये शब्द मलयालम की प्रकृति के अनुकूल ही प्रयुक्त हुए हैं ।

परवर्ती मलयालम कविता के करीब छः सौ वर्षों के विकास के बाद भी कृष्णगाथा कनिष्ठिकाधिष्ठित ही रहती है[1] । बृहदाकार इस ग्रन्थ के अंतिम सर्ग स्वर्गारोहण को छोड़कर शेष सभी भाग शुद्ध मलयालम में लिखा गया है । संस्कृत के ललित शब्दों का ही प्रयोग गाथाकार ने अपने काव्य में किया है ।

कृष्णगाथा के पूर्व रचित काव्यों में संस्कृत के विभक्त्यंत शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग मिलता है[2] । तमिल के विभक्त्यंत शब्दों का भी प्रयोग है[3] । गाथाकार ने संस्कृत विभक्त्यंत रूपों को बिलकुल छोड़ दिया है । शुद्ध मलयालम शब्दों का प्रथम बार प्रयोग कृष्णगाथा में ही मिलता है । उसमें शब्दों की शक्ति, सारस्य और सौन्दर्य सबकुछ सुरक्षित है । इस दृष्टि से कृष्णगाथा का महत्व अद्वितीय है । मलयालम का लक्षणयुक्त प्रथम महाकाव्य है कृष्णगाथा[4] ।

---

1. डॉ. के.एम. जार्ज - साहित्य चरित्रं प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ.347
2. बारहवीं शती में चीराम कवि द्वारा रचित रामचरित का प्रथम पद
3. रामचरित का प्राय: सभी पद
4. एन. कृष्णपिल्लै - कैरलियुटे कथा - पृ.151

मणिप्रवालम और पाट्टु

चेरुशेरी के समय तक मलयालम काव्य में दो मुख्य धारायें दिखाई पड़ती हैं - मणिप्रवालम और पाट्टु[1]। मणिप्रवालम काव्य भाषा का वह रूप है जिसमें मलयालम के शब्दों के साथ साथ विभक्ति सहित संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग होता है[2] जैसे माणिक्य तथा विद्रुम जोड़कर सुन्दर माला बनायी जाती है वैसे ही संस्कृत शब्द रूपी मणियों के साथ देशी शब्द रूपी प्रवाल जोड़कर मलयालम में मणिप्रवाल शैली चलायी गई।

पाट्टु का मतलब है गीत। इसमें शुद्ध तमिल शब्दों की प्रचुरता है। संस्कृत शब्दों का सर्वथा बहिष्कार नहीं होता। संस्कृत के शब्द इतने परिवर्तित होते हैं कि वे तमिल ही प्रतीत होने लगते हैं। लीला तिलककार ने ठीक ही लिखा है - "पाण्ड्य भाषा सारूप्यं प्राचुर्येन पाट्टिल [गीत में] केरल भाषायां भवति"[3]। लीला तिलक में पाट्टु का लक्षण भी बताया है[4]।

इस प्रकार संस्कृत मिश्रित मलयालम काव्य को मणिप्रवालम् और उसके तमिल मिश्रित रूप को पाट्टु कहते थे। ये दोनों शैलियाँ मलयालम की अपनी नहीं हैं। एक में अगर संस्कृत की प्रचुरता है तो दूसरी में तमिल की। स्मरण रहे कि मलयालम संस्कृत और तमिल दोनों से भिन्न भाषा है। दोनों का उसपर प्रभाव है, प्रचुर मात्रा में। परन्तु मलयालम की अपनी सत्ता है, वह स्वतंत्र है।

---

1. उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रं - भाग-1, पृ.79
   पाताशाला अच्युतमेनोन - कृष्णगाथा की भाषा-साहित्य लोकम त्रैमासिका भाग - 3, जुलाई - सितंबर 1977
2. "भाषा संस्कृत योगो मणिप्रवालम्" - लीलातिलकम् [मलयालम का प्रथम व्याकरण ग्रन्थ - 1-1 व्याख्याता इलंकुलं कुंजन पिल्ले - पृ.30
3. लीलातिलकं - व्याख्याता इलंकुलं कुंजनपिल्ले - पृ.75
4. "द्राविड संघाताक्षर निबद्ध "एतुकमोन वृत्त विशेष युक्तं पाट्टु - लीलातिलकं - 1-1, व्याख्याता इलंकुलं - पृ.73

चेरुश्शेरी ने एक स्वतंत्र शैली अपनाई । यह मलयालम भाषा और साहित्य केलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण वरदान सिद्ध हुई । इसलिए कहा गया है - आधुनिक मलयालम के पिता और नवीन युग के शुक्र नक्षत्र के रूप में चेरुश्शेरी का साहित्य जगत में आगमन हुआ[1] । संस्कृत के ज्ञाता होते हुए भी चेरुश्शेरी ने मणिप्रवालम का परित्याग किया । कवि का स्वतंत्र दृष्टिकोण यहाँ प्रकट होता है ।
ਖ

चेरुश्शेरी ने आधुनिक मलयालम साहित्य के आरंभ का शंखनाद किया[2]। यद्यपि चेरुश्शेरी की शैली अलग है तथापि यह कहना गलत होगा कि उन्होंने मणिप्रवाल से अपने काव्य को अलग रखा । मणिप्रवाल के अच्छे उदाहरण कृष्णगाथा में यत्र तत्र मिलते हैं । यथा -

"बुध जन मानस मधु पकुनामां
मधुजन पूरित जलरुहमेन्नु[3]"
निर्विधागम वचसामपि पोरुलागिन कावान्
निधुवैसरनु पगान्य च मधुसूदन सविधे[4] ।

गाथा में सरल देशज शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है[5]। इस कारण काव्य की भाषा में प्रसाद एवं ओज गुण के साथ सौकुमार्य भी पर्याप्त मात्रा में आ गया है ।

---

1. सी॰पी॰ श्रीधर - आज के साहित्यकार - पृ॰44
2. डॉ॰ के॰ए॰ नीलकंठ शास्त्री - दक्षिण भारत का इतिहास - अनुवादक - वीरेन्द्रवर्मा - पृ॰429
3. कृष्णगाथा - स्वर्गारोहण सर्ग - पृ॰616 [एम॰बी॰एस॰ संस्करण]
4. वही - पृ॰618
5. उल्लूर एस॰ परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रं - भाग-2, पृ॰185

कृष्णगाथा की भाषा में ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि काव्यगुणों के अनुरूप ही शब्दों का चयन हुआ है। शब्द अधिकतर तत्सम् है और भाषा [मलयालम] के शब्दों के साथ उनकी संयुक्तता विशेष हृदयहारी हुई है।[1] कृष्णगाथा की सी ललित-मधुर पदयोजना मलयालम में अन्यत्र नहीं मिलती। पीयूष वर्षिणी भाषा, कृष्ण भक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति तथा सरस कोमल कान्त पदावली कृष्णगाथा की विशेषतायें है।[2]" कवि का यह भी विश्वास था कि उनकी कविता तत्कालीन जनसमाज तथा साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करेगी।[3] यह विश्वास आगे चलकर सार्थक सिद्ध हुआ।[4]

चेरुश्शेरी की शैली

चेरुश्शेरी की शैली का वैशिष्ट्य उसकी सरलता तथा सुबोधता में निहित वह अत्यंत ललित और प्रवाहमय है। कवि उसे किसी ऐसी वस्तु से सजाने का प्रयास नहीं करता जो पाठक के ध्यान को काव्य की वस्तु से हटा सके। शब्द बिना किसी रोक-टोक के अपने आप आते हुए से प्रतीत होते हैं। उसमें एक अद्भुत प्रवाह है। उसके विचारों की शृंखला में कहीं व्याघात नहीं पड़ता। पूर्वापर क्रम से पाठक के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती उसकी वाक्य रचना इतनी सीधी है कि पाठक उससे अप्रभावित नहीं रह सकता। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है। शब्द छोटे हैं और समास बहुलता का कहीं भी मोह नहीं। ध्वनि विन्यास इतना मधुर है कि श्रोता के कानों में उसका अनुरंजन चलता ही रहता है।

---

1. उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्रम - भाग-2, पृ.145
2. डॉ. एन. जार्ज - भक्ति आन्दोलन और साहित्य [1978] - पृ.419
3. डॉ. एन. जार्ज - केरल की भक्ति साधना-अध्याय - 5 - पृ.217
4. मातृभूमि - कुंचन वर्ष [1962] - पृ.183-184

सूर और पेरुमोरी की शैली में समानताएं काफी हैं। सरलता दोनों की शैली की मौलिक विशेषता है। सरलता और सुबोधता की दृष्टि से भी दोनों की शैली में समानता है। अलंकार प्रियता दोनों में है, पर दोनों का ध्यान अलंकारिक सौन्दर्य तत्व पर आधारित है। ऐसा प्रतीत होता है कि शैली की ये विशेषताएं उनके जीवन का एक प्रतिरूप उपस्थित करती हैं। ये वास्तव में किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा दोनों के सुलझे हुए मस्तिष्क को, उनके सादे जीवन और उच्च विचार को, अपने विषय में उनकी पूर्ण आत्मविस्मृति और तल्लीनता को अधिक व्यक्त करती हैं।

भले ही कृष्णगाथा जनसाधारण के बीच व्यापक प्रचार पा चुकी है तथापि इस दृष्टि से वह सूरसागर की समानता कर सकती हो, इसमें सन्देह है। सूरसागर के अधिकतर गीत एक दिव्य अनुभूति प्रदान करने में समर्थ हैं। दिव्य अनुभूति से मतलब अनुभूति की ऐसी तीव्रता से है जिसका विवरण संभव नहीं। इसको "पोयटिक एक्स्टसी" कहा जाता है। उसका कारण यह हो सकता है कि सूरदास की मनोदशा तक पहुंचने में पेरुमोरी असमर्थ रहे हैं। वह राजाश्रित कवि थे जबकि सूरदास केवल भगवान की अनुकम्पा पर आश्रित। इसलिए ऐसे कवि के वचनों में जो हृदय ग्राही प्रतीकरण - समर्थता रहती है वह लौकिक कवियों के काव्य में नहीं मिल सकती। यह सूर और पेरुमोरी के काव्यों में मौलिक अन्तर है।

केवल विचारों और आदर्शों के औदात्य के बल पर कोई भी कविता पाठक को एक्स्टसी तक ले जाने में समर्थ नहीं हो सकती। इसलिए तदनुरूप शब्दावली शैली की आवश्यकता है। यह असाधारण सिद्धि सूर को प्राप्त है। यही सूर और पेरुमोरी की कविताओं का सबसे बड़ा अन्तर है।

****

अध्याय - सात

उपसंहार

सूरसागर और कृष्णगाथा का तुलनात्मक अध्ययन भारत के दो प्रमुख प्रदेशों की जन-संस्कृति के अंतरंग परिचय का हमें अवसर प्रदान करता है। जलवायु, भाषा एवं आचार-अनुष्ठानों की दृष्टि से दोनों प्रदेशों में पर्याप्त अन्तर है। राजनैतिक, समाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों में भी भिन्नता दृष्टिगत होती है। साम्प्रदायिक आचार, कर्मकाण्ड आदि में भी पर्याप्त भिन्नता है। परन्तु दोनों प्रदेशों को एक सूत्र में बांधनेवाली कड़ियाँ अत्यंत सबल हैं। इन कड़ियों का आधार हमारा सामान्य भक्ति साहित्य है। विभिन्न भक्त कवियों ने मानव के लिए जिन जीवन मूल्यों की खोज की उनमें मौलिक एकता है[1]। यह एकता विस्तृत मानवतावाद पर आधारित है जो देशकाल की सीमा का उल्लंघन करके विराजमान है[2]। इसके आधार पर प्रस्तुत व्यक्तिगत एवं सामाजिक मर्यादाओं में कोई मौलिक अन्तर नहीं दिखाई देता[3]। यह इस बात का प्रमाण है कि दोनों प्रदेशों पर ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक विकास की प्रणालियों का जो प्रभाव पड़ा उसमें पर्याप्त समानता है।

---

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल - {बारहवां सं.} - पृ.70
2. डॉ. राधा कृष्णन - इण्डियन फिलोसफी - भाग-1, पृ.42
3. डॉ. ब्रजेश्वरवर्मा - भक्तिकाल - हिन्दी साहित्य कोश - भाग-2, पृ.572-73

कवियों की विचारधारा में एकता

हिन्दी प्रदेश तथा केरल के ही नहीं समस्त भारत के दार्शनिक कवियों की विचारधाराओं में जो समानता दृष्टिगत होती है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है । ब्रह्म की एकता एवं अद्वैतता पर वे सब विश्वास रखते थे । व्यक्तिगत ईश्वर की कल्पना, उसके साकार या निराकार स्वरूप के प्रति अनुराग, वात्सल्य, दास्य या कांता भाव की प्रीति आदि सभी भक्त कवियों में समान रूप से वर्तमान है ।

भावात्मक एकता में सहायता

भक्त कवि देश की भावात्मक एकता के पक्के समर्थक थे । उनका जीवन "बहुजन हित और बहुजन सुख" केलिए समर्पित था । सूरसागर और कृष्णगाथा में उपलब्ध भावनात्मक - वैचारिक समानता अद्भुत जनक है । वास्तव में ये दोनों काव्य मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आन्दोलन के दो महान स्तम्भ हैं ।

मध्ययुगीन साहित्य

मध्य युग के दो महान काव्यों के दार्शनिक तथा साहित्यिक सौष्ठव के विवेचन की चेष्टा हमने पिछले पृष्ठों में की है । इन में से एक के सात्विक प्रभाव से समस्त उत्तरापथ आज भी प्रभावित है, और दूसरे के आलोक से समस्त नहीं तो दक्षिणापथ का एक प्रमुख प्रदेश । दोनों के सांस्कृतिक प्रभाव से समस्त भारत वर्ष अनुरंजित है । ईसा की आठवीं नवीं शताब्दी से जो सांस्कृतिक नवोत्थान भारत वर्ष के दक्षिणी कोने से शुरू हुआ था, न जाने उसने इस देश के किन किन क्षेत्रों को प्रभावित नहीं किया । देश का कोई कोना ऐसा नहीं जो इस सांस्कृतिक आन्दोलन से एकदम अप्रभावित रहा हो । प्रत्येक प्रादेशिक भाषा का "साहित्यिक स्वर्णयुग" इन्हीं मध्य शताब्दियों को ही कहा जा सकता है । भारतीय संस्कृति की पूर्ण

प्रफुल्लता इस युग की विशेषता है । अनेक सुन्दर काव्यों से हमारे साहित्य भंडार इस युग में परिपूर्ण हुए हैं । हिन्दी, बंगला, मलयालम, तमिल, कन्नड आदि सभी भारतीय भाषायें इस प्रवाह से समृद्ध हुई हैं ।

भक्ति काव्य की निजी विशेषता

इस प्रबन्ध में सूरसागर और कृष्णगाथा दोनों के सामाजिक साहित्यिक महत्व का मूल्यांकन किया गया है । पाशविकता की पराजय तथा मानवीयता की विजय में विश्वास भक्ति कविता की निजी विशेषता है । विश्वास विघटन के इस युग में मानव महत्व का इतना तीव्र उद्घोष वस्तुतः अंधकार में दीपयष्टि का काम करती है ।

कृष्णकथा का आलम्बन लेकर वेदव्यास ने अपनी रस सिद्ध लेखनी का चमत्कार दर्शाया है । सूरसागर और कृष्णगाथा दोनों में कृष्णकथा की अमृत वर्षा प्रवाहित हुई है ।

वैष्णव भक्ति का विकास
----

14 वीं 15 वीं शताब्दियों की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों ने दक्षिण के वैष्णव भक्ति आन्दोलन को हिन्दी प्रदेश में पनपने का अभीप्सित वातावरण प्रदान किया । भक्तिमय वातावरण ने ही भारतीय भाषाओं में साहित्य के निर्माण की आधार भूमि तैयार की । उसका आलंबन लेकर ही हमारी भाषाएं विकसित हुईं । परिणामतः प्रादेशिक भाषाओं में विपुल मात्रा में वैष्णव साहित्य का सृजन हुआ । मध्ययुगीन भारतीय साहित्य में जो भावात्मक एकता परिलक्षित होती है, उसका प्रमुख माध्यम वैष्णव भक्ति आन्दोलन ही है ।

वैष्णव भक्ति साहित्य ने भारतीय जनजीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया । हमारे सामाजिक - धार्मिक जीवन पर भी उसका प्रभाव कम नहीं है । उसीने भक्ति के माध्यम से सामाजिक धरातल पर समानता स्थापित की। धार्मिक उदारता और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा में भी उसका योगदान कम नहीं । भक्ति साहित्य ने भारतीय संस्कृति के आदर्शपूर्ण रूप को दर्शाया है । उसने विभिन्न प्रदेशों के साहित्य में प्रतिबिंबित सांस्कृतिक एकता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया ।

<u>सांस्कृतिक एकता का स्रोत-भक्ति</u>

इस देश की सांस्कृतिक एकता का सबसे प्रमुख स्रोत है भक्ति । भक्ति देश की एकता की ही नहीं, विश्व की एकता की भी विधात्री है ।

<u>सूर और येल्लोरी में भाव ऐक्य</u>

सूर और येल्लोरी परस्पर अनभिज्ञ थे । एक ने दूसरे की कविता नहीं सुनी थी । फिर भी दोनों में भावसंबन्धी ऐक्य काफी मात्रा में विद्यमान है । कारण, भक्ति विश्व चेतना से संबद्ध है । सूर और येल्लोरी एक ही अविच्छिन्न धारा के अंग हैं । दोनों के अनुभव एक दूसरे से विशिष्ट होते हुए भी एकोन्मुख है । दोनों का आध्यात्मिक बोध कालातिशायी है । वह ईश्वरोन्मुख होते हुए भी लोक-संगीत, लोक-भाषा और लोक-जीवन-संस्पर्श से प्राणवान है । सूर और येल्लोरी का काव्य नैतिकता की सृष्टि करता है । अज्ञात रीति से वह लोक जीवन का नियमन करता है । वह भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की निरन्तरता और एकता का प्रतिष्ठापन करता है ।

मेरी धारणा है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उत्तर और दक्षिण की अखंड सांस्कृतिक धारा के अध्ययन व अनुशीलन में अवश्य सहायक सिद्ध होगा । सौंदर्यानुभूति के साथ वह मूल्यबोध का समन्वय करेगा ।

दो स्वतन्त्र काव्य

यद्यपि सूर और घेल्लोरी ने श्रीमद् भागवत् का आधार ग्रहण किया है - कथा विस्तार, चरित्र सृष्टि, रस योजना, वर्णन प्रणाली और सम्प्रेषण विधि में भागवतकार का आदर्श अपने समक्ष रखा है, फिर भी उनकी रचनाओं को किसी कवि अथवा परम्परा का अनुसरण मानना असंगत होगा ।

सूरसागर और कृष्णगाथा दोनों अपने अपने सर्जकों के व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता का उद्घोष स्वयं करते हैं । सूरसागर और कृष्णगाथा दो स्वतंत्र सौन्दर्य सृष्टियाँ हैं ।

सूरसागर और कृष्णगाथा के सौन्दर्य विधान और रचना प्रक्रिया की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनों के रचयिताओं की दृष्टि सौन्दर्य के स्थूल तत्वों की अपेक्षा सूक्ष्म रागात्मक तत्वों पर अधिक रमती है । विषयगत एकता के बावजूद प्रणेताओं के दृष्टिकोण में स्पष्ट भिन्नता है । दोनों के सौन्दर्य विधान में भी अन्तर है । सूर और घेल्लोरी ने प्राचीनों का आधार स्वीकार किया है, व्यास के प्रति वे विशेष रूप से श्रद्धावनत हैं । फिर भी उनकी रचना प्रणाली व्यास से बहुत भिन्न है । सूरसागर और कृष्णगाथा स्पष्टतः श्रीमद् भागवत् से भिन्न स्वतंत्र रचना है । सुदीर्घ काल से ये दोनों काव्य लोक जीवन में उदात्त भावनाओं का प्रसार करते रहे हैं, आगे करते भी रहेंगे । युग बदलते हैं, और युग मूल्य भी किन्तु सूर और घेल्लोरी का काव्यगत मूल्य अविचल ही रहता है ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सूर और घेल्लोरी दोनों ने कृष्ण को अखण्ड सत्य मानकर उसमें एकाकार होने की आकांक्षा प्रकट की ।

दोनों के काव्यों में आध्यात्मिक सत्य ही तत्वतः अभिव्यक्त हुआ है। दोनों की अभिव्यंजना प्रणाली में भक्ति के माध्यम से सामरस्य में एकत्व स्थापित करने की तत्परता सर्वत्र दिखाई देती है। अतएव सूरसागर और कृष्णगाथा भारतीय साहित्य के दो अमूल्य काव्य रत्न के रूप में विराजमान हैं।

ශශශශශශශශශශශශශ

BIBLIOGRAPHY

English books

1. A History of Indian Philosophy - Vol.1,2,3 and 4 - S.N. Das Gupta - Motilal Banarsai Das, Delhi,1975,March
2. A History of Tamil Literature - J.M. Somasundraram (1968 Edn.)
3. A Primer of Hinduism - J.N. Farquhar - TheChrishtian Literature Society for India, 1912
4. A Primer of Literary Criticism - Hollingworth (2nd Edn.)
5. A Study of Epic Development - Irene - T. Myers
6. A Study of poetry - A.M. Erwistel
7. A Study of Indian History - B.N. Puri (1971)
8. An Introduction to the Study of Literature - W.H. Hudson George,G Harrap and Co.Ltd.,London, 1954, Edn.
9. An Outline of Religious Literature of India - J.N. Farquhar Humphrey Milford - Oxford University Press, 1920.
10. Alwars of South India - C. Varadachari - Bhavans Book University, I Edn.
11. Aspects of Early Vishnuism - J. Gonda (I Edn.)
12. Bhagavata and Indian Culture - Vol. 48, Trivedi Krishnaji Vedanta Kesari.
13. Comparative Grammar - Dr. Caldwell
14. Comparative Literature - Anna Balkan
15. Cultural Heritage of India - Vol. 2,5 - Sri.Ramakrishna Centrenary Memorial, Calcutta.
16. Early History of Vaishnavism in South India - Krishna Swami Iyengar
17. Early History of Vaishnavism - Rai Choudary
18. Early Tamil religious literature in Indian History - Vol.18 V.R. Ramchandra Dikshit.

19. Encyclopaedia of Religion and Ethics - Vol.10

20. English Epic and Heroic Poetry - W.M. Dixtion

21. Ezhuthachan and his Age - Dr. C.L. Menon

22. Hinduism through the Ages - (4 Edn.) Bharatiya Vidyabhavan, Bombay - D.S. Sharma

23. Hindu World - Vol.1,2 - Benjamin Walker - An Encyclopaedic Survey of Hinduism

24. History of Medieval India - Vol.3 - C.V. Vaidya

25. History of South India (II Edn.) - Neelakanta Shastri

26. History of Sanskrit Poetics - P.V. Kane

27. History of Tirupathi - Dr.S. Krishna Swami Iyengar

28. Indian History and Culture - Prof. A. Sreedhara Menon

29. Indian Philosophy - Vol.I and 2 - Dr. R.Radhakrishnan,1951

30. Life of pope - Dr. Johnson

31. Oxford Junior Encyclopaedia Vol.xii

32. Principles of Poetry - C.M. Gele

33. Progress of Cochin - T.K. Krishna Menon, Cochin Government Press, 1932

34. Some Contributions of South India to Indian Culture - - Dr. S. Krishnan Swami Iyengar

35. Srimad Bhagavata - The Scripture of cult of Devotion - Dr. Chandra Sekhar Ayer

36. Some Concepts of the Alankara Sastra - Dr. Raghavan The Adayar Library Series No.33, 1942

37. Selections from Hindi Literature - Lala Seetha Ram

38. Tamil Studies - M. Sreenivasa Iyengar

39. The Contribution of Kerala to Sanskrit Literature - Dr.K.K.

42. The Life and Teachings of Ramanujacharya - C.R. Srinivasa Ayangar.

43. The Mystics of Northern India during the Middle Ages - Kshiti Mohan Shastri.

44. The New Dictionary of Thought - T.Edwards

45. The Number of Rasas - Dr.Raghavan, The Adayar Library, 1940

46. The Philosophy of Srimad Bhagavata - Dr. Siddheswara Bhattachariya Visva Bharata Publications - Calcutta.

47. The Philosophy of Visist Advaita - Sreenivasa Chariya

48. The Religious Quest of India - J.N. Farquhar and H.D.Griswold.

49. The Travancore State Manual - Vol.I - T.K. Vellupillai

50. The Travancore State Manual - Vol.II - V.Nagam Aiya Travancore Govt. Press, 1906

51. Vaishnavism, Saivism and Other minor Religions - Dr. Bhandarkar

52. Winter Tale - William Shakespeare - Spring Books, London

JOURNALS

53. Annamalai University Journal, Vol.XII - 1934

54. Journal of Royal Asiatic Society of Bengal, 1920

55. Linguistic Survey of India - Vol.I.

56. Ninth AllIndia Oriental Conference - Trivandrum Report

57. Proceedings and Transactions of the All India Oriental Conference 19th Session - University of Delhi, 1957

58.

हिन्दी पुस्तक

1. अभिनव देवल शास्त्र – डॉ॰ आर॰एन॰ दण्डेकर [प्र॰सं॰]
2. अरस्तु का काव्य शास्त्र – डॉ॰ नगेन्द्र
3. अशोक के फूल – हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1978
4. अष्टछाप – संपादक – धीरेन्द्रवर्मा – रामनारायणलाल, प्रयाग – 1929 ई॰
5. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय – भाग – 1 और 2, डॉ॰दीनदयालु गुप्त हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय सं॰ सन् 1970
6. असमिया साहित्य – प्रो॰ हेम बरुआ – नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1966
7. आज के साहित्यकार – सी॰पी॰ श्रीधर
8. आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य – डॉ॰ एन॰ई॰ विश्वनाथय्यर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1970 सन्
9. उत्तर भारत की संत परंपरा – परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन, प्राइवेट लिमिटेड, सन् 1957
10. उदयपुर का इतिहास – गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
11. कन्नड साहित्य का नवीन इतिहास – डॉ॰ सिद्धगोपाल, आशा प्रकाशन गृह, दिल्ली, सन् 1964
12. कन्नड साहित्य का सुबोध इतिहास – काशीनाथ एम॰हल्लीर हेडे, शिक्षा मन्दिर, बैंगलूर, सन् 1973
13. कबीर ग्रन्थावली – पदावली भाग – प्रो॰ पुष्पपाल सिंह, अशोक प्रकाशन, दिल्ली ।
14. काव्य के रूप – डॉ॰ गुलाबराय – आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।
15. काव्य दर्पण – राम दहिन मिश्र – ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, 1960
16. काव्य प्रदीप – राम बहोरी शुक्ल – हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1964
17. काव्यानुशासन – आचार्य हेमचन्द्र
18. केरल की भक्ति साधना – डॉ॰ एम॰जॉर्ज

19· गीति काव्य – राम खेलावन पाण्डेय

20· गुजराती और ब्रज भाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ॰जगदीश गुप्त

21· गोस्वामी तुलसीदास – रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं॰2019

22· चिन्तामणि – भाग– 1 तथा 2 – रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग – 1967

23· चैतन्य संप्रदाय – डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक

24· चौरासी वैष्णवन की वार्ता – लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, सं॰1985

25· तुलसी का प्रगीत काव्य – प्रो॰ विनय कुमार, ओरियण्टल बुक डिपो, दिल्ली, 1962

26· तुलसीदास – माताप्रसाद गुप्त – प्रयाग विश्व विद्यालय हिन्दी परिषद, 1953

27· त्रिवेणी – रामचन्द्र शुक्ल, संपादक कृष्णानंद, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं॰2019

28· दक्षिण भारत का इतिहास – ए नील कंठ शास्त्री, अनुवादक वीरेन्द्र वर्मा

29· दक्षिण के संप्रदाय – बलदेव उपाध्याय

30· देव और बिहारी – कृष्ण बिहारी मिश्र, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, 1965

31· नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट – 1906 – 1919 तक

32· निजवार्ता – श्री गोकुलनाथ जी

33· पद्मावत – मलिक मुहम्मद जायसी, साहित्य सदन, चिरगाँव, सं॰2018

34· पल्लव – सुमित्रानन्दन पन्त, राजकमल, 1963

35· पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धान्त – डॉ॰ गोविन्द त्रिगुणायत, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1970

36· बंगला और उसका साहित्य – हंस कुमार तिवारी

37· बुद्ध चरित – रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं॰2014

38· भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास – नलिनी मोहन सन्याल

39. भक्ति आन्दोलन और साहित्य - डॉ॰ एम॰जॉर्ज, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1978

40. भक्ति का विकास - डॉ॰ मुंशीराम शर्मा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सं॰2015

41. भागवत् दर्शन - हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ, सं॰2020

42. भागवत सम्प्रदाय - बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, सं॰2026

43. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डॉ॰ सुनीति कुमार चेटर्जी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1957

44. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ॰ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1963

45. भारतीय दर्शन - बलदेव उपाध्याय

46. भारतीय वाङ्मय में राधा - बलदेव उपाध्याय

47. भारतीय साहित्य शास्त्र कोश - डॉ॰ राजवंश सहाय हीरा

48. भ्रमरगीत सार - रामचन्द्र शुक्ल, रामदास गौड़वाल एण्ड सन्स, 1963

49. मध्य कालीन कृष्ण काव्य - कृष्णदेव झारी, हिन्दी साहित्य संसार, सन् 1970

50. मध्यकालीन धर्मसाधना - हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन, प्रा॰लि॰ इलाहाबाद, सन् 1962

51. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद - डॉ॰ कपिलदेव पाण्डेय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सं॰2020

52. मराठी और हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ॰ र॰श॰केलकर, अक्षर प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, सन् 1966

53. मराठी का भक्ति साहित्य - प्रो॰ भी॰गो॰ देशपाण्डे

54. मलयालम साहित्य एक सर्वेक्षण - डॉ॰ रामचन्द्र देव, आशा प्रकाशन गृह, सन् 1969

55. महाकवि सूर दास - नन्द दुलारे वाजपेई, राजकमल प्रकाशन, सन् 1976

56. मीराबाई की पदावली - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

57. मीराबाई पदावली - डॉ॰ कृष्णदेव शर्मा - रीगल बुक डिपो, दिल्ली, सन् 1974

58· रस कलश - अयोध्या सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, सं·2021

59· रस चर्चा - जयशंकर प्रसाद

60· रस मीमांसा - रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं·2017

61· रस सिद्धान्त - डॉ· नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1964

62· रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण - आनन्द प्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, सन् 1960

63· राधावल्लभ संप्रदाय - सिद्धान्त और साहित्य - डॉ· विजयेन्द्र स्नातक

64· रामचरित मानस - तुलसीदास, कविराज संस्करण, 1962

65· रामानन्द की हिन्दी रचनायें - प्रधान संपादक हजारी प्रसाद द्विवेदी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं·2012

66· रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव - डॉ·बदरी नारायण श्रीवास्तव - हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व विद्यालय, सन् 1957

67· ब्रजभाषा - डॉ· धीरेन्द्रवर्मा

68· ब्रजभाषा कृष्ण भक्ति काव्य - डॉ· जगदीश गुप्त

69· ब्रज भाषा व्याकरण - डॉ· धीरेन्द्र वर्मा, रामनारायण लाल बेनी माधव - इलाहाबाद-2 (प्र·सं·)

70· ब्रज भाषा सूर कोश - डॉ· प्रेमनारायण टंडन, लखनऊ विश्वविद्यालय (प्र·सं·)

71· वैष्णव धर्म का इतिहास - दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, सन् 1939

72· वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन - डॉ· मलिक मुहम्मद, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, सन् 1971

73· वैष्णव साधना और सिद्धान्त - हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव - डॉ· भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, सन् 1973

74· शिवसिंह सरोज - श्री· शिवसिंह सेंगर

75· श्री निंबार्क वेदान्त - आचार्य ललित कृष्ण गोस्वामी, श्री निम्बार्क पीठ, इलाहाबाद (प्र·सं·)

76· श्रृंगार और साहित्य - डॉ· रामशंकर तिवारी

77• संप्रदाय प्रदीप – गदाधर
78• संस्कृत साहित्य का इतिहास – पं०वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, सं०2017
79• संस्कृति के चार अध्याय – रामधारीसिंह दिनकर (द्वितीय सं० आर्यकुमार रोड, पाटना, 1962
80• सन्त काव्य संग्रह – परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, तृतीय संस्करण
81• सप्त तरङ्गात्मक सूर सागर – बालकृष्ण चतुर्वेदी, श्री गोपाल पुस्तकालय, मथुरा, सं०2027
82• साहित्य और सौन्दर्य – डॉ० फतेह सिंह
83• साहित्य की शैली – डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, सन् 1963
84• साहित्य लहरी – सूरदास, सं०प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा, प्र०सं०
85• साहित्य शास्त्र – रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 196
86• सिद्धान्त और अध्ययन – डॉ० गुलाबराय, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली सं०2017
87• सूर एक अध्ययन – शिखरचन्द्रजैन
88• सूर का शृंगार दर्शन – डॉ० रामशंकर तिवारी, अनुसन्धान प्रकाशन, 1966
89• सूर की भाषा – प्रेमनारायण टंडन, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, सन् 1957
90• सूरदास – डॉ० जनार्दन मिश्र
90• सूरदास – रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, सं०2026
92• सूरदास – ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, तीसरा संस्करण, सन् 1959
93• सूरदास और भागवत् भक्ति – डॉ० मुंशीराम शर्मा, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, सन् 1958
94• सूरदास की वार्ता – सं०गोस्वामी हरिराय
95• सूरदास की वार्ता – सं०प्रेमनारायण टंडन, नन्दन प्रकाशन, सन् 1968
96• सूर दर्शन – कृष्ण लाल हंस, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1958

97· सूर निर्णय - द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल - साहित्य संस्थान, मथुरा, सं·2018

98· सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य - डॉ· शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, सन् 1964

99· सूरप्रभा - दीनदयालु गुप्त, सन् 1966

100· सूरसागर - सूरदास - काशी नागरीप्रचारिणी सभा

101· सूरसागर की भूमिका - राधा कृष्ण दास

102· सूरसारावली - सूरदास, संपादक प्रेमनारायण टंडन, हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ

103· सूर साहित्य - हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1973

104· सूर सौरभ - डॉ· मुंशीराम शर्मा, आचार्य शुक्ल, साधना सदन, सं·2013

105· हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन - नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, सन् 1968

106· हिन्दी और कन्नड भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ·हिरण्मय विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1959

107· हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य - डॉ· रामनाथन् के·, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1968

108· हिन्दी और मलयालम भक्ति काव्य में वात्सल्य रस - डॉ· रामन नायर, रामनारायण लाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद, 1976

109· हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति काव्य - डॉ· के·भास्करन नायर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् 1960

110· हिन्दी कविता में हास्य रस - सरोज खन्ना, लोकभारती प्रकाशन, 1969

111· हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय - डॉ· पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

112· हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास - डॉ· भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय सं·2022

113· हिन्दी काव्यालंकार - डॉ· नगेन्द्र

114· हिन्दी कृष्ण काव्य परंपरा का स्वरूप और विकास - डॉ·मुरारिलाल शर्मा सुरस

115. हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव - विश्वनाथ शुक्ल
116. हिन्दी भाषा और साहित्य - श्याम सुन्दर दास, सं.1974
117. हिन्दी भाषा का इतिहास - श्याम सुन्दरदास
118. हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं.2020
120. हिन्दी साहित्य - श्याम सुन्दर दास, इण्डियन प्रेस, पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद
121. हिन्दी साहित्य - हजारी प्रसाद द्विवेदी
122. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1961
123. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - रामकुमार वर्मा - रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद [पंचम संस्करण]
124. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी, सं.2022
125. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास - अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त
126. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - पंचम भाग, नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी, [प्रथम संस्करण]
127. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
128. हिन्दी साहित्य की भूमिका - हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर
लिमिटेड, बंबई, [सातवां संस्करण]
129. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव - लेफ्टीनेण्ट डॉ.सरनाम सिंह अरुण, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1952
130. हिन्दी साहित्य में अष्टछापी और राधा वल्लभीय काव्य - डॉ.रामशरण
शर्मा, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1978
131. हिन्दी साहित्य में कृष्ण - डॉ. सरोजनी कुलश्रेष्ठ
132. हिन्दी साहित्य में हास्य रस - बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली [द्वितीय संस्करण]
133. अनुशीलन - 1971, हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय, [illegible]

134. नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं.2022 वि. वर्ष 70 अंक - 4
135. परिशोध - सूरदास विशेषांक, अठाईसवाँ अंक, मार्च 1979
136. सम्मेलन पत्रिका भाग-63, संख्या-4, शक 1899
137. हिन्दी अनुशीलन - धीरेन्द्रवर्मा विशेषांक
138. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक - सूर विशेषांक, सन् 1978

संस्कृत पुस्तक

1. अग्नि पुराणम् - चौखम्बा प्रकाशन, 1966
2. अमर कोश - चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी, 1957
3. ऋग्वेद - सं.पं. राम शर्मा आचार्य - संस्कृति संस्थान, [चतुर्थ सं.] 1967
4. काव्यादर्श - दण्डी
5. काव्यालंकार - रूद्रट
6. तैत्तिरीय संहिता
7. दशरूपक - धनंजय
8. ध्वन्यालोक - आनन्द वर्धन, मोतीलाल बनारसीदास, 1963
9. नारद भक्ति सूत्र
10. पद्मपुराण - मनसुखराय मोर - कलकत्ता, सं.2015
11. पाद्मतंत्र
12. ब्रह्मपुराण
13. ब्रह्म वैवर्त पुराण
14. ब्रह्माण्ड पुराण
15. भागवद् गीता - गीता प्रेस, गोरखपुर
16. भरत का नाट्य शास्त्र - रघुवंश [1964 सं.] मोतीलाल बनारसीदास
17. मत्स्य पुराण - नन्दलाल मोर, कलकत्ता 1954
18. महाभारत - गीता प्रेस [गोरखपुर] - पू. सं.]

19. लीलातिलकं - व्याख्याता इलंकुलं कुंजनपिल्लै, चौथा संस्करण ।
20. वायु पुराण - संस्कृति, बरेली, 1967
21. विष्णु पुराण
22. शतपथ ब्राह्मण
23. शाण्डिल्य भक्ति सूत्र - भक्ति चन्द्रिका, सं० गोपीनाथ कविराज
24. श्रीमद् भागवत पुराण - गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण
25. शृंगार प्रकाश - भोजराज
26. संस्कृत मणिमाला - श्रीनाथ भट्ट
27. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ - द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी
28. साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सं०2020
29. हरि भक्ति रसामृत सिन्धु
30. हरिवंश पुराण

MALAYALAM BOOKS

1. Adhyatma Ramayana - Ezhuthachan, Sahitya Pravarthaka Co-operative Society Ltd.
2. Bharatha Gatha
3. Bharatha Samgraham - Rama Varma
4. Cherussery Bharatam - Introduction - T.Balakrishnan Nair, Kamalalaya Book Depot - Trivandrum,1938
5. History of Malayalam Language - Part-I, (Kujan Vagai) - Mahaseery Madhava Warrior, Manorama Publishing House, 1962
6. History of Malayalam Poetry - Dr. M. Leelavathi, Kerala Sahitya Academy, Trichur, 1980
7. Gyanappana - Poonthanam Namboothiri
8. Kairaliyude Katha - Prof. N. Krishna Pillai, SahityaPravarthaka Co-operative Society Ltd. 1980
9. Kannasa Bharatha - Rama Panikkar, Manuscript Book No.273 A Manuscript Library, Trivandrum
10. Kerala Bhasha Charithram -Part I - K. Narayana Panikker
11. Kerala Charithram - A. Sreedhara Menon, Sahitya Pravarthaka Co-operative Society Ltd. 1967
12. Kerala History - Kerala History Association
13. Kerala Paniniyam - Prof. Raj Raja Varma
14. Kerala Sahitya Charithram - Vol.I,II and III, Ulloor S.Parameswara Aiyer, Kerala University Publications, 1970
15. Krishna Gatha - Cherussery, N.B.S. Edition 1965
16. Krishna Gatha - Padangal - Dr. T. Bhaskaran, N.B.S. Kottayam,1980
17. Krishna Gatha - Praveshika - Vadakkumkoor, Raj Raj Varma, 1957
18. Krishna Stuthi Kootham - Manuscript Book No.138 A, Manuscript Library, Trivandrum.

19. Kalapathikal - Thaiyattu Sankaran, K.R. Brothers, Calicut, 1954

20. Malayala Bhasha Charithram - P.Govinda Pillai, Sahitya Pravarthaka Co-operative Society Ltd., Kottayam, 1960

21. Mangala Mala Part II - Appan Thampuran

22. Mahabharatham - Ezhuthachan - Sahitya Pravarthaka Co-operative Society Ltd. 1967

23. Pradikshanam - Chelanattu Achyuta Menon

24. Ramacharitam - Cheeram Poets

25. Ramakatha pattu - Iyappilla Ashan, National Book Stall, Kottayam, 1970

26. Ramayana Champu - Punam Namboothiri, Kerala Sahitya Academy Edn. 1967

27. Sahitya Charithram Prasthanangaliloode - (History of Malayalam Literature) - Dr. K.M. George - Sahitya Pravarthaka Co-operative Society Ltd. Kottayam, 1958

28. Sahitya Lokam - Quarterly Vol.III July, Sept. 1977

29. Santana Gopalam - Puthanam Namboodhiri

30. Sree Krishna Karnamritam - Puthanam Namboodiri

31. Sree Maha Bhagavata - Ezhuthachan.